श्रीसूक्त-दीपक



लेखक - प्रो. डो. हरनारायणभाई उ. पण्ड्या



श्रीसूक्त-दीपक

(वसुमतीवृत्ति सहित)

ग्रन्थकार

प्रा. डॉ. हरनारायणभाई उमाशंकरभाई पण्ड्या

M.A. [स्वर्णपदकभूषितः]; Ph. D.; साहित्यशास्त्री [सर्वप्रथम];
काव्यतीर्थ । याज्ञिकशिरोमणि-याज्ञिकचूडामणीति मानदपदवीद्वयविभूषितः,
निवृत्त व्याख्याता, आर्ट्स कालेज; कलोल ।
अध्यक्ष, श्रीगुर्जरविद्वत्परिषद् ।
Phone : (02764) 321578; 220097
Fax : 079-26613640
E-mail : pandit_hu@yahoo.co.in

प्रकाशक

स्वामी श्री जयकिशनपुरिजी

बिहारीपुरीमठ, D/7-40, विश्वनाथ गली,
वाराणसी; (यु.पी.)
दूरध्वनि : (0542) 2360052

श्रीसूक्त दीपक

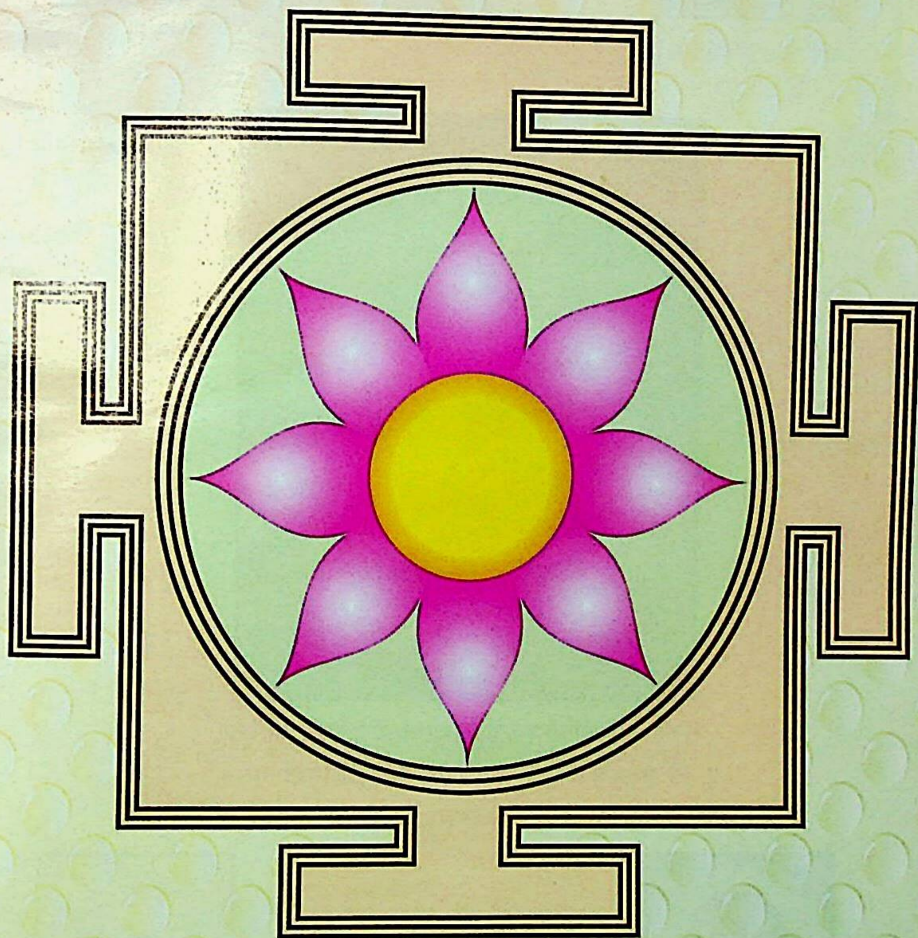
प्रथम संस्करण : इ.स. 2007

प्राप्तिस्थान (1) : बिहारीपुरिमठ; वाराणसी ।

(2) गुजरात में : श्री भागवत विद्यापीठ,
कृष्णधाम, सोला । अहमदाबाद–380 060
(गांधीनगर-सरखेज हाइवे)
दूरध्वनि : (079) 27473839
Fax : (079) 27438101
E-mail : srijibawa@yahoo.com
bhagvats@yahoo.com
Web site : www.bhagwat.org

मुद्रक : प्रिन्ट विज़न प्रा. लि.
प्रिन्ट विज़न हाउस,
सेन्ट्रल बेंक ऑफ इण्डिया के सामने,
आंबावाड़ी, अहमदाबाद–380 006
दूरध्वनि : (079) 26405200, 26403320

श्रीसूक्तयंत्रम्

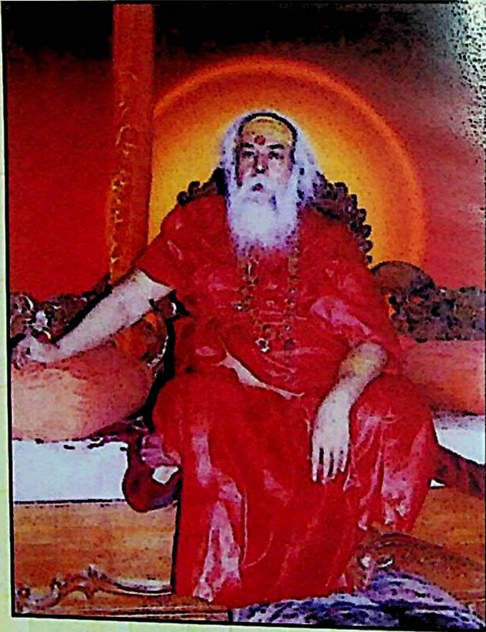




चंद्रमौलीश्वर महादेव



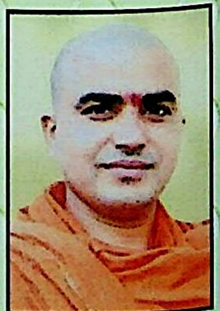
ती (कपिलेश्वर महा.)



अनन्त श्रीविभूषित ज्योतिःशारदोभयपीठाधीश्वर-जगद्गुरु
पू. श्री शंकराचार्य स्वामि-श्री-स्वरूपानन्द सरस्वती गुरुजी।



स्वामिश्रीभागवतानंदगिरिजी महाराज
ी कपिलेश्वर महादेव, कलोल



पू. स्वामिश्रीपूर्णानन्दगिरिजी महार
वर्तमान महंतश्री, कपिलेश्वर महादे

दाता परिवार



ब्र. . रणछोडलाल ठाकर
(श्वशुर)



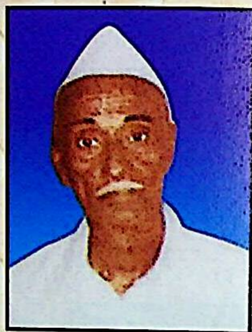
ब्र.ली. श्री वासुदेव शुक्ल
महाराज (पिताश्री)

कर्मवीर और धर्मवीर ऐसे पितृओं द्वारा प्राप्त संस्कार और संस्कृति के स्त्रोत में से उत्पन्न [illegible] परिवार इस अमूल्य श्रीसूक्त ग्रन्थ को उनके श्रीचरणों में सादर समर्पित कर रहा है।

डो. कनैयालाल वी. शुक्ल	सौ. भानुमती के. शुक्ल
जयेशकुमार के. शुक्ल	सौ. दीपल जे. शुक्ल
डो. राजेश के. शुक्ल	सौ. डो. स्वाति आर. शुक्ल
कल्पेशकुमार आर. याज्ञिक	चि. अल्पा के. याज्ञिक

[वसु. -- दोनों विभाग के दाता अपना नामनिर्देश करना नहीं चाहते थे, परंतु अन्य दाताओं को भी ऐसे निष्काम पुण्यकार्य में दान करने की प्रेरणा मिले, इसी कारण से यहां दाता-परिवारों का नामनिर्देश किया गया है। इन निष्काम दाताओं के परिवारों को ईश्वरकृपा एवं सुख-शान्ति मिले ऐसी अभ्यर्थना।]

द्वितीय दाता परिवार



पू. उमाशंकरजी दादा



वसुमतीबहन हरनारायणभाई पंड्या, चे.ट्रस्ट
हरनारायणभाई उमाशंकरभाई पंड्या
चु. डांगरवा, अभी कलोल।



सरलाबहन दिनेशचंद्र व्यास
दिनेशचंद्र बाबुलाल व्यास
गोझारिया, अभी कलोल।

पूज्य माताश्री गौरीबा और पिताश्री उमाशंकरजी के श्रीचरणों में यह ग्रन्थपुष्प आपका परिवार सादर समर्पित करता है-

प्रो. डो. हरनारायणभाई उ. पंड्या
वसुमतीबहन हरनारायणभाई पंड्या
चंद्रशंकरभाई उ. पंड्या
डो. दिनेशचंद्र ह. पंड्या
सौ. वर्षा डी. पंड्या
चि. प्रियंका डी. पंड्या
चि. विनायक डी. पंड्या

विषयानुक्रमणिका

[कोष्ठक में दिये गए अंक पृष्ठांक हैं।]

श्रीसूक्तयंत्रम्।

दाता परिवार ।

संकेत सहित संदर्भ सूचि - (७-१२); काशीविश्वनाथ चित्र - (१२)।

प्रकाशक की और से - (१३)।

अस्मदीयम् - (१४-१७)।

पू. जगद्गुरुजी का आशीर्वाद - (१८-१९)।

पण्डितों की दृष्टि में श्रीसूक्त दीपक - (२०-३४)।

* * *

श्रीसूक्तम् - सोलह ऋचाएँ, स्वरचिह्न और पाठभेद- (1-2)।

यंत्रम् - (3-4)। न्यास पूजादि सहित प्रयोग - (4-7)।

भूमिका- (8-80)

अखण्ड ब्रह्म- (8)। षाड्गुण्य- (8)। चतुर्व्यूह; त्रिविधा सृष्टि-(9)। ब्रह्म के विभाग-(10)।

नारायण - (10-17)

शक्तिमान नारायण का पररूप, व्यूहरूप, विभवरूप- (10-12)।

विशाखयूप - व्यूहान्तर देव-देवियाँ, विभवान्तर तत्त्व - (12-13)।

नारायण के अवतार - अनिरुद्ध, शक्तीश; सिन्धुशायी; श्रीपति; पारिजातजित्; मीनधर; त्रिविक्रम; अनन्तशयन - (13-15)।

नारायण-नारायणी के पृथक् अवतार - वराह; धर्म; दत्तात्रेय; वामन; परशुराम; रामचन्द्र; बलभद्रादि; बुद्ध - (15-16)।

केवलनारायण - (16)।

भवद्भावात्मक अवतार, - (16)। इन अवतारों में नारायणी की विशेषताएँ - (17)।

नारायणी - (17-80)

शुद्धमार्ग - विशुद्धमार्ग; शुद्धसृष्टि में वासुदेवादि चारदेव और इन में से संकर्षणादि तीन देवों के कार्य एवं अभेद; नारायणी की शान्तादि अवस्थाएँ - (17-18)।

षट्कोशा नारायणी - शक्ति, माया, प्रसूति, प्रकृति, ब्रह्माण्ड, जीवदेह - (19-20)

अशुद्धमार्ग - अशुद्धसृष्टि, शुद्धअशुद्ध मार्ग, चतुर्भुजा महालक्ष्मी; उस महालक्ष्मी के विविध नाम - (21-23)।

त्रिगुणा महालक्ष्मी - तीनगुणों का आद्य, मध्य और तृतीयपर्व - (23-25)।

षडध्वरूपा नारायणी (25-43) - षट् अध्वा; आद्यरीति, मध्यमारीति और अन्तिम रीति के परिप्रेक्ष्य में वर्णाध्वा - (26-34); रंग, यम, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय (32); । कलाध्वा (34); । तत्त्वाध्वा (35); । मंत्राध्वा - बीजमंत्र, पिण्डमंत्र, संज्ञामंत्र, पदमंत्र, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ -(35-40)। पदाध्वा और भुवनाध्वा, (40)। अध्वों का क्रम और अध्वशुद्धि (41-42);। मंत्रोपासना से भोग-भोक्ष, लक्ष्मीनारायण ब्रह्म, षडध्वा और षट्कोश - (42-43)।

मंत्ररूपा नारायणी (43-74)-ॐकार-ॐकार की सृष्टि, ॐ का अनुष्ठान (43-46)। ॐ के प्रासाद, संज्ञा, परमात्म और पदमंत्र - (46-48)। न्यूनाक्षर मंत्र में उपांगन्यास, हंस एवं सोहं मंत्र की गुप्त-साधना (48-49)।

ह्रीँ — (49-71) ॐ, ह्रीँ, श्रीँ, ऐँ, क्लीँ, औः, क्ष्म्रौँ - (49)। सांख्य आदि में ह्रीँ। ह्रीँ के विविधनाम; ह्रीँ के स्थूल, सूक्ष्म और पररूप (50-52)। उपासक की प्राथमिक योग्यता - (53)। ह्रीँ का अनुष्ठान-प्रायश्चित्त, अनुष्ठान का स्थान, नियम, अनुष्ठान-पद्धति, मंत्रसिद्धि का लक्षण, समापन, फल - (53-57); प्रारंभ में न्यास आदि - (57-60);। ह्रीँ के विविधप्रयोग-धर्मप्राप्ति, सायुज्यमुक्ति और अक्षयधनप्राप्ति के लिए - (60-64)। जातवेदसमंत्रप्रयोग - (64-70)। सुभगायक्षिणी - (70-71) ॥ श्रीँ, ऐँ, क्लीँ, औँ, औः, (त्रिपुरा), क्ष्म्रौँ - (72-74)।

नारायणी के विविध अवतार (74-80); — चतुर्भुजा महालक्ष्मी; महिषमर्दिनी और शक्रादिस्तुति; महाकाली और रात्रिसूक्त; कौशिकी और नारायणी स्तुति; सुनन्दा, रक्तदन्तिका, शाकंभरी-शताक्षी-दुर्गा, भीमा और भ्रामरी; देवीसूक्त; महालक्ष्मी के अवतार, कर्म और स्तोत्र; महालक्ष्मी और विष्णु; शाकंभरी और भीमा का समय;

सुनन्दादि देवियों की संख्या । जातवेदसे. मंत्रका सायणसंमत अर्थ ।

प्रथम प्रकरण (उपासक के विचार, आचार, योग्यता) - (81-91) —

गुरु; विश्व; जीव और परशिव; आत्मा श्रेष्ठ और जगत् गौण; जप; आत्मज्ञानप्राप्ति, (81-85) । मद्यादि के विकल्प - (85-86) । उपासक की अवस्थाएँ और वीर-अवीर - (86-87) । लक्ष्मीप्रीति-ऐश्वर्यवृद्धि, **हविष्यान्न**-(87-88) । नारायण-नारायणी के विविध रूपों की उपासना का अधिकार एवं उपासक की योग्यता बढ़ाने के उपाय - (89-91) ।

द्वितीय प्रकरण (श्रीसूक्त की ऋचा संख्या) - (92-106) —

पुरुषसूक्त और श्रीसूक्त की उत्पत्ति, 18 उपचार, खिलगत श्रीसूक्त के स्वरचिह्न -(92-93); 15, 16 और 19 ऋचाएँ -(94-98); 28 ऋचाएँ -(98-100); 29 और 30 ऋचाएँ -(100-102); 23 और 27 ऋचाएँ -(102-3); श्रीविद्यारत्नाकर में 27 ऋचाएँ -(103-4); आथवलेजी में 26 ऋचाएँ -(104-5); श्रीसूक्त के बाद पठनीय दो सूक्त -(105-6) । अन्नपूर्णा माताजीका चित्र - (106) ।

तृतीय प्रकरण (श्रीसूक्तम् की ऋचाओं के अर्थ) - (107-152) —

प्रथम ऋचा -(107); द्वितीय ऋचा -(111); तृतीय ऋचा -(112); चतुर्थ ऋचा -(116); पंचमी ऋचा-(120); षष्ठी ऋचा-(125); सातवी ऋचा -(127); अष्टमी ऋचा-(130); नवमी ऋचा-(132); दशमी ऋचा; (शिवसंकल्प)-(135); ग्यारहवी ऋचा-(139); बारहवी ऋचा-(141); 13-14वी ऋचाएँ-(143); पंद्रहवी ऋचा-(149); सोलहवी ऋचा-(150); लक्ष्मी के प्रकार - (151) ।

चतुर्थ प्रकरण - (153-221) —

(1) मंत्र - मूलमंत्र, मूलमंत्र के विकल्प में बीजमंत्र, मूलमंत्र में संयोजन एवं पद्धति; और योजना-(153); ॐ, ह्रीं, श्रीं का संयोजन-(155); पल्लव, संपुट और महामृत्युंजय - (155) । कमल आदि पाँच मुद्राएँ - (157) ।

(2) मंत्रानुष्ठान के अंग-(158) - प्रसिद्ध एवं विशिष्ट अंगक्रम और जप एवं होम-(159); एकाधिक द्रव्याहुतियाँ; नित्यहोम-(160); वैकल्पिक नित्यहोम और तर्पण-(161); मार्जन-(162); ब्रह्मभोजन, सुवासिनीपूजा, दान - (163)।

(3) श्रीसूक्त का विनियोग और न्यास-ऋषि, छन्द, देवता,

न्यासपद्धति- (163); (पाप दहन; द्वादशान्त); शक्ति और बीज - (165); ॐ के अवयव - (166); शक्ति-(166); बीज -(167); ॐकार-दीक्षा - (168) श्रीसूक्त का विनियोग; बीज, शक्ति और कीलक-(169); श्रीसूक्तन्यास का क्रम-(172); श्रीसूक्त के मंत्रन्यास, करादि-हृदयादि और संयोजन-(172)।

(4) लक्ष्मीपूजा - (अ) प्रातःकर्म (174-77)- निद्रात्याग, तांत्रिकस्नान, स्नानांग तांत्रिक तर्पण, वस्त्रधारण, संक्षिप्त तांत्रिकी सन्ध्या, नित्य एवं तांत्रिक तर्पण ।

(आ) लक्ष्मीअर्चन-(177-83)- द्वारपूजा, न्यास, ध्यान, यंत्रलेखन, अन्तर्याग, बहिर्याग में 16 और 15 उपचार - (177-80); 15 उपचारों की तीन परंपराएँ, द्वितीय विशिष्ट परंपरा; आवरणपूजा, होम-बलिदान-(181-83) ।

(5) (क) समग्र श्रीसूक्त के अनुष्ठान-(183-88) यह शुचिः ऋचा; 12000 श्रीसूक्तों का अनुष्ठान, शुक्रवारव्रत, कांसोस्मितां. का अनुष्ठान- (183-86); विद्या.भाष्योक्त अनुष्ठान; सौभाग्यलक्ष्मी.प्रोक्त अनुष्ठान; कमला. आदिसे संपुटित श्रीसूक्त प्रयोग; कमला. आदि एवं पुरुषसूक्त संवलित श्रीसूक्त-प्रयोग; और श्रीसूक्त संवलित पुरुषसूक्त प्रयोग-(186-88); ।

(ख) श्रीसूक्त की प्रत्येक ऋचा के अनुष्ठान- (188-221)-गोंडल प्रकाशित श्रीसूक्तम्; स्वतंत्र ऋचोपासना तालिका-(188-91); होम-तर्पणक्रम, मार्जन, सुवासिनीपूजा - (192-93); प्रथमाऋचा-(193); द्वितीयऋचा-(195) तृतीयऋचा-(196); चतुर्थ ऋचा-(196); पंचमी ऋचा-(197); षष्ठी ऋचा-(199); सप्तमी ऋचा-(202); अष्टमी ऋचा-(205); नवमी ऋचा-(207); दशमी ऋचा-(208); ग्यारहवी ऋचा-(208); बारहवी ऋचा-(209); 13-14 ऋचाएँ- (212-14); चौदहवी ऋचा-(214); पंद्रहवी ऋचा-(215); शान्तिकर्म-(217); 32 श्रीमंत्र-(218); 53 श्रीमंत्र-(220); श्रीविद्या संवलित श्रीसूक्तफल -(221) ।

पंचम प्रकरण (222-238) -

एकाक्षर श्रीमंत्र-(222-28); ऐंश्रींह्रींक्लीं मंत्र -(228); 27 वर्णात्मक कमलामंत्र-(230); कनकधारा स्तोत्र-(233); बालाकवच-(235); राजराजेश्वरी-तर्पण स्तोत्र-(236-38); ।

संकेत सहित संदर्भसूचि

आद्य जगद्गुरुजी = जगद्गुरुजी = आद्यशंकरा. = अनंत श्रीविभूषित प.पू. भगवान् आद्यजगद्गुरु श्रीशंकराचार्य महाराजजी रचित प्रपंचसार तंत्रम्-देखो प्रपंच.

आथ. = शास्त्रीजी पांडुरंग वैजनाथ आठवले रचित **श्रीसूक्तम्** । प्रकाशक- सद्विचार; दर्शन, रामकृपा, 25, पारेख स्ट्रीट, मुंबई-4; जान्यु.1972

आप्टे. = आप्टेशब्दकोश = घी स्टुडन्टस् संस्क्रित-इंग्लिश डिक्षनरी, कर्ता - वामन शिवराम आप्टे । मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन; दिल्ही-वाराणसी-पटना । इ.स.1952

आह्निक = आह्निकसू = श्रीशुक्लयजुर्वेदीय-माध्यन्दिन-वाजसनेय-आह्निक-सूत्रावलिः । कर्ता - वैद्य-नारायणशर्मा । चतुर्थी आवृत्तिः । निर्णयसागर प्रेस - मुंबई । संवत 1952

आंडवल्ली = देखो श्री. वि. ।

उवट-महीधर = उवटभाष्य; महीधर भाष्य-देखो मा.वा. ।

ऋग् = ऋग्खिल = खिल = ऋग्वेदसंहिता, सायणभाष्यसमेता, चतुर्थो भागः। प्रकाशक-वैदिक संशोधन मण्डल, टिलक मेमोरियल, पूना-2; शके 1868

करपात्र = श्रीकरपात्रस्वामीजी = स्वामिश्रीहरिहरानन्दसरस्वती । श्रीविद्यारत्नाकरः के रचयिता । देखो श्रीविद्यारत्नाकर ।

का = काशीकर = चिन्तामणि गणेश काशीकर, संपादक ऋग्वेद का खिलविभाग - देखो ऋग्. ।

गन्धर्वतंत्रम् = संपादक - डो. रामकुमार राय, कृष्णदास अकादमी प्रकाशन, वाराणसी-संवत 2043, द्वितीयावृत्ति, इ.स. 1986

गुज. = गुजराती भाषा ।

गौतमीय महातंत्रम् = संपादक - डो. रामजी मालवीय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत-विश्वविद्यालयः; वाराणसी । प्रथम संस्करण, इ.स. 1992

चिद्विलास = चिद्विलासवृत्ति = देखो श्री. वि. ।

ढुण्ढिराज = पं. श्री ढुण्ढिराजशास्त्री, संपा. श्रीसूक्तम् । ढुण्ढि.रचित टिप्पणी सहितम् । चौखम्बा प्रकाशन; तृतीयावृत्ति–इ.स. 1994

तै.आ. = तैत्तिरीय आरण्यक ।

ढुण्ढि. पुरु. – ढुण्ढिराजपुरु. = पं. श्री ढुण्ढिराज–शास्त्रिणा संशोधितम् पुरुषसूक्तम्॥ [सायणभाष्य - महीधरभाष्य - मंगलभाष्य - निम्बार्कमतभाष्येण सहितम् ।] चौखम्बाप्रकाशन । द्वितीयावृत्तिः - इ.स. 1981

टि. = टिप्पणी ।

दुर्गा. = दुर्गासप्तशती = दुर्गाप्रदीप गुप्तवती चतुर्धरी शान्तनवी नागोजीभट्टी जगच्चन्द्रचन्द्रिका दंशोद्धार इति सप्तटीका संवलिता । संग्राहक- हरिकृष्णशर्मा । चौखम्बा प्रकाशन, पुनर्मुद्रण–इ.स. 1988 [जहाँ गुप्तवती आदि टीकाओंका नामनिर्देश हो वहाँ सप्तटीकावाले इस ग्रंथ के श्लोकांक एवं पृष्ठ समझें, जबकि जहाँ टीकाओं का निर्देश न हो वहाँ गीताप्रेस, गोरखपुर प्रकाशित दुर्गा.=दुर्गा सप्तशती के श्लोकांक समझें ।]

देवी–अथर्वशीर्ष = गीताप्रेस प्रकाशित दुर्गासप्तशती में है ।

नथु. = ब्रह्मनिष्ठ महाराज श्री नथुराम शर्मा ।

नारदपंचरात्रम् = अंग्रेजी अनुवाद सहित मूलपाठ । अनुवादक स्वामी विज्ञानानन्द । परिमल पब्लीकेशन; दिल्ही । पुनर्मुद्रण–इ.स. 2002

पद्म. =पू. श्री पद्मपादाचार्य विरचित विवरण और प्रयोगक्रमदीपिका–देखो प्रपंच.

परशु. = **(1)** परशुरामकल्पसूत्रम्, रामेश्वरवृत्तिसहितम् । एडिटर – ऐ. अेन. जानी । द्वितीयावृत्ति. इ.स. 1949 । एम. एस. युनि. वडोदरा प्रकाशन । **(2)** परशु. हिन्दीभाष्य = परशुराम कल्पसूत्रम्, डो. परमहंस मिश्र विरचित नीरक्षीर विवेक भाषा भाष्य संवलितम् । संपादक- प्रो. विद्यानिवास मिश्र; संपूर्णानन्द विश्व विद्यालय, वाराणसी । प्रथमावृत्ति इ.स. 2000

पा. गृ. = पारस्करगृह्यसूत्रम् - श्री कर्कोपाध्याय–जयरामाचार्य–हरिहराचार्य–गदाधरदीक्षित–विश्वनाथप्रणीत–भाष्यपंचक–भूषितम् । क्षेमराज–श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुंबई (वेंकटेश्वर प्रेस); । संवत 1986

प्रपंच. = प्रपंचसारतंत्रम्, पू. भगवान् श्री आद्यशंकराचार्यमहाराज-विरचितम् । तच्छिष्यपद्मपादाचार्य विरचित-विवरणोपेतम्, प्रयोगक्रमदीपिकाख्य-विवरण-विवृतिसमेतम् । श्रीआर्थरएवेलनेन पर्यवेक्षितम् । संपा. श्री अटलानन्द सरस्वती महाराजजी । मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन । पुनर्मुद्रण-इ.स. 2002

प्रायश्चित्तम. = मयूख. = (भगवन्तभास्करे द्वितीयखण्डे) प्रायश्चित्तमयूख । कर्ता-भट्ट नीलकण्ठ । भूमिका-वेणीमाधव शास्त्री । चौखम्बाप्रकाशन । पुनर्मुद्रण- इ.स. 1985

प्रा. = प्रातिशाख्यम् = शुक्लयजुर्वेद-प्रातिशाख्यम्, उवटभाष्य-अनन्तभट्ट-भाष्यद्वयसहितम् ॥ संपा. डा. वीरेन्द्रकुमार वर्मा, । चौखम्बाप्रकाशन, पुनर्मुद्रण- इ.स. 2001

प्राधा. = प्राधानिकरहस्यम्, दुर्गासप्तशती, गीताप्रेस, गोरखपुर ।

पुरुषसूक्तम् - देखो ढुण्ढिराज पुरु. ।

पृ. = पृष्ठांक ।

पृथ्वी. = पृथ्वीधराचार्यभाष्यम्, देखो श्री.वि. ।

ब्रह्मनित्यकर्म. = शुक्लयजुर्वेदीयमाध्यन्दिनवाजसनेयिनां बृहद् ब्रह्मनित्यकर्म-समुच्चयः । कर्ता - शास्त्रिदुर्गाशंकरः । वालुकेश्वर संस्कृतपाठशाला, बाणगंगा, मुंबई । इ.स. 1969

भ.गी. = श्रीमद्भगवद्गीता ।

मनु. =मनुस्मृति, कुल्लूकभट्टकृत मन्वर्थमुक्तावलीसंवलिता । वासुदेवरामचन्द्रशर्माणौ । [मुखपृष्ठं नष्टम्, अतः प्रकाशनादीनामनुल्लेखः ।]

मं.महो. - मंत्रमहोदधिः । स्वोपज्ञनौकाव्याख्या-सहितः । कर्ता-महीधरः। खेमराज श्रीकृष्णदासप्रकाशन । बम्बई । संस्करण-इ.स. 1983

मा.वा. अथवा **वा.सं.** = वाजसनेयिमाध्यन्दिन-शुक्लयजुर्वेदसंहिता । पदपाठ-उवट- महीधर-भाष्यद्वयसंवलिता । हिन्दीव्याख्या । व्याख्याकारः रामकृष्णशास्त्री । चौखम्बाप्रकाशन । तृतीयसंस्करण-इ.स. 1999

मुहूर्त. = मुहूर्तमार्तण्ड; । खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई । मुखपृष्ठ नहीं होने से आवृत्ति आदि नहीं बताया गया है ।

या. स्मृ. = याज्ञ. स्मृ = याज्ञवल्क्यस्मृतिः । वीरमित्रोदय-मिताक्षरा-टीकाद्वयसहिता । संशोधक - नारायणशास्त्रिखिस्ते और जगन्नाथशास्त्रिहोशिंग । चौखम्बा प्रकाशन । द्वितीयसंस्करण; संवत 2054; इ.स. 1997

या.शि. = याज्ञवल्क्यशिक्षा और **या.व्या.** = याज्ञवल्क्यशिक्षा की व्याख्या = संस्कृत-हिन्दी व्याख्याद्वयोपेता, व्याख्याकारः डों. नरेश झा । चौखम्बा प्रकाशन । प्रथमावृत्ति इ.स. 1999

राघव. = शारदातिलकस्य राघवभट्टकृत-पदार्थादर्शव्याख्या । देखो शा. ।

विष्णु. = विष्णु स्मृतिः, केशववैजयंतीसहिता, संपादक-वि.कृष्णमाचार्य, अड्यार लायब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर-प्रकाशन, चेन्नाई-20, पुनःमुद्रण-इ.स.1996 ।

व्या. = संस्कृत व्याख्या ।

लक्ष्मी. = लक्ष्मीतंत्रम् । संपा. और व्याख्याकार-डा. सुधाकरमालवीय । चौखम्बा प्रकाशन । प्रथम संस्करण-इ.स. 2003 । [**भूमिका में जहाँ ग्रंथसंकेत नहीं दिया है, वहाँ लक्ष्मीतंत्र समझा जाए ।**

वसु. = वसुमतीवृत्ति - कर्ता प्रा. डों. हरनारायणभाई पण्ड्या, कलोल ।

वा.सं. = वाजसनेयिमाध्यन्दिन-शुक्लयजुर्वेदसंहिता । देखो मा.वा. ।

विद्यारण्यजी = विद्यारण्ययतिजी । देखो श्रीविद्या. ।

विद्या. = विद्यारण्यभाष्यम् । देखो श्री.वि. ।

वेदान्तसार = सदानन्द-योगीन्द्रसरस्वतीरचितः वेदान्तसारः । संपा. प्रा.पी.सी. दवे । सरस्वती पुस्तकभंडार - अमदाबाद । इ.स. 1984 । [यहाँ विद्वन्मनोरंजनी व्याख्यासहित वेदान्तसार-भारतीयविद्या - प्रकाशन । पुनर्मुद्रण 2003, का भी उपयोग किया है ।]

शतानन्द = शतानन्दवृत्ति । देखो श्री. वि. ।

शर्मा. = शर्मा गुरुजी = गणपतिशर्मा द्विवेदीजी । कर्ता श्री. वि. । देखो श्री.वि. ।

शा. = शारदा. = शारदातिलकम् । रचयिता - श्रीलक्ष्मणदेशिकेन्द्र । राघवभट्ट-कृत पदार्थादर्शव्याख्यासहितम् । संपा. श्रीमुकुन्द झा बख्शी । चौखम्बाप्रकाशन। तृतीयसंस्करण । संवत 2039

श्रीकण्ठ. = श्रीकण्ठभाष्यम् । देखो श्री. वि. ।

श्रीतत्त्व. = देखो श्री. वि. ।

श्रीयंत्रसार = यह ग्रंथ श्रीविद्यार्णवतंत्र में उद्धृत किया गया है। देखो श्रीविद्या. ।

श्रीविद्या. = श्रीविद्यारण्ययतिविरचितं श्रीविद्यार्णवतंत्रम् (पूर्वार्द्धम्), प्रथमावृत्तिः इ.स. 1986 ॥ उत्तरार्द्ध भाग-1; प्रथमावृत्तिः इ.स. 1987; ॥ उत्तरार्द्ध भाग-2; प्रथमावृत्तिः इ.स. 2000; संपा. रामचन्द्र काक और हरभट्टशास्त्री; तीनों वर्तमान आवृत्तियाँ-रामकुमारराय, प्राच्यप्रकाशन, वाराणसी । [पू. आद्यशंकराचार्य महाराजश्री के शिष्य विष्णुशर्मा, उनके शिष्य प्रगल्भाचार्य, उनके शिष्य विद्यारण्ययतिजीमहाराज हैं। इनका समय ग्यारहवी शती का उत्तरार्द्ध बताया गया है - श्रीविद्या. की भूमिका पृ.-7]

श्रीविद्यामहार्णव = कर्ता-श्रीज्ञानानन्देन्द्र सरस्वतीयति । प्रकाशन- श्रीविद्या-विमर्शन-पीठम् । हनुमान घाट, वारणसी । प्रथमावृत्ति- 1998, भाग-1 से 3

श्रीविद्यारत्नाकरः- श्रीकरपात्रस्वामि [स्वामिश्री हरिहरानन्दसरस्वतीजी] विरचितः । संपा. श्रीसीताराम-कविराजः । श्रीविद्या-साधनापीठ प्रकाशन। वाराणसी । द्वितीयसंस्करण, संवत 2043 ॥

श्री.वि. = श्रीसूक्तविधानोक्त-लक्ष्मीसपर्याविधिः । इस पुस्तिका के 23 पृष्ठ हैं। इसमें पंद्रह ऋचाओं में विद्यारण्यभाष्य और पृथ्वीधराचार्य भाष्य हैं। तदुपरान्त जहाँ जहाँ आवश्यकता हुई, वहाँ वहाँ भिन्न भिन्न ग्रंथों के भाष्य या वृत्तियाँ वहाँ उद्धृत की गई हैं, जैसे कि श्रीकण्ठभाष्यम्; शतानन्दवृत्तिः; मंत्रकल्पार्णव, चिद्विलासवृत्तिः, सूक्तार्थरत्नाकर, भागधेयशृ(भू)षणम्, सारस्वतसिद्धिः, सौभाग्य-संजीवनम्, स्कान्दे सनत्कुमारसंहितायां बिल्वमाहात्म्यम्; आंडवल्ली; श्रीरत्नकोश, लक्ष्मीयामल; वैखानसविद्या, सूक्तार्थसंग्रह; श्रीतत्त्व; ॥ ऋचा 16 में निरुक्तकारोक्तफलस्तुति है । परिशिष्ट में -(1) विद्यारण्योक्त बीजसंपुटित

श्रीसूक्तम् और (2) ऋग्वेदीय सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद् हैं । लेखक-पू. श्री गणपतिशंकरशर्मा द्विवेदीजी [मेरे परमगुरुजी], वर्तमान संपादक और प्रकाशक-हरमणिशंकर; इ.स. 1932

यही पुस्तिका पं. ढुण्ढिराज शास्त्रीने भी संपादित की है। देखो ढुण्ढिराज। दोनों में कहीं कहीं पाठभेद मिले हैं, इस के आधार पर ऐसा अनुमान हो सकता है कि, दोनों के दृष्टिसमक्ष मूलपाठ भिन्न होंगे । ऋग्वेद खिल विभाग में काशीकरजीने विद्यारण्य-भाष्य उद्धृत किया है, जो अधिक प्रामाणिक होने के कारण हमने उस ऋग्. वाले विद्यारण्यभाष्य का ही इस ग्रंथ में उपयोग किया है ।

श्री.वि.स. = श्रीसूक्तविधानोक्ता लक्ष्मीसपर्यापद्धतिः, कर्ता-पू. श्री स्व. द्विवेदी श्री गणपतिशंकर शर्मा (परमगुरुजी); उन्होनें 17 पृष्ठों में लक्ष्मीसपर्याप्रयोग लिखा है, जो ढुण्ढिराज. में नहीं है । देखो श्री.वि. ।

सनत्कुमार संहिता - देखो श्री.वि. ।

सं.भा. - शुक्लयजुर्वेदीय-संस्कारभास्करः । कर्ता - ऋषि-भट्ट । संशोधक-शिवदत्त मिश्र । मास्टर खेलाडीलाल एण्ड सन्स, संस्कृत बूक डीपो; बनारस । ऋषिभट्ट का समय - शक 1621=(इ.स.1699) है ।

सारस्वत. = सारस्वतसिद्धि । देखो श्री.वि. ।

सूक्तार्थ. = सूक्तार्थसंग्रह । देखो श्री.वि. ।

सोभाग्यलक्ष्मी. = ऋग्वेदीय-सौभाग्य लक्ष्म्युपनिषत् । देखो श्री.वि.पृ. 21



श्री काशीविश्वनाथ

प्रकाशक की ओर से

श्रीसूक्त ऋग्वेद में प्रमाणभूत है। इसका महत्त्व पुरुषसूक्त की तरह विश्रुत है। पुरुषसूक्त में परब्रह्म परमात्मा का निरूपण है, जबकि श्रीसूक्त में तच्छक्तिरूपा परमेश्वरी का हृदयहारी निरूपण है। वस्तुतः नारायण और श्रीमाता में अभेद ही है। परमपुरुष की स्त्रीत्वविवक्षा में **श्री** संज्ञा है, जो तथ्य 'तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्ये' से व्यक्त है। **श्री** की उपासना अनादि काल से चली आ रही है। उपासना की सांगोपांगता का प्रतिपादन आगम ग्रंथों में विस्तार से हुआ है, जो मूलभूत वेदों के समाश्रयण से ही विस्तृत है। श्रीसूक्त के उपासकों के लिए इसके बृहत् संस्करण के प्रकाशन की आवश्यकता तत्त्वजिज्ञासुओं के लिए थी। श्री बिहारीपुरि मठ इसका प्रकाशन करना चाहता था, जो सत्कार्य **याज्ञिक शिरोमणि-याज्ञिक चूडामाणीति**-मानदपदवीद्वय-विभूषित पण्डितप्रवर डॉ. हरनारायणभाई उमाशंकरभाई पण्ड्या महोदयने निःस्वार्थ भाव से **'श्रीसूक्त दीपक'** लिखकर पूरा किया। यह मठ और श्रीतत्त्वजिज्ञासु समुदाय उनके इस कठोर परिश्रम का सर्वदा ऋणी रहेगा।

विद्वान लेखक ने प्रकृत ग्रंथ में श्रीसूक्त के पाठों पर भी गहन विचार किया है। इसका भाष्य (**वसुमतीवृत्ति**) भी प्रामाणिक आधारों पर किया है। प्रणवोपासनारहस्य का दिग्दर्शन कराते हुए **'श्री'** की सांगोपांग उपासना का प्रतिपादन भी बड़ी ही निपुणता से किया है। तात्पर्य यही है कि, अपेक्षित सकल तत्त्वों का समावेश इस ग्रंथ में है। कार्य से कारण का अनुमान होता है, इस नियमानुसार प्रा. डॉ. पण्ड्या महोदय के इस भगीरथ कार्य से उनके महावैदुष्य का अनुमान सहज ही हो जाता है।

इस महाग्रंथ का प्रकाशन करते हुए मुझे अपार आमोद-कल्लोलिनी में अवगाहन करने की अनुभूति हो रही है। इससे जिज्ञासुओं, समुपासकों, अन्तर्मुखीजनों का भूयान् उपकार होगा, यह भी अपार हर्ष का विषय है। इसके लिए प्रा. डॉ. पण्ड्याजी को कोटिशः धन्यवाद है। वे हमारे अनन्य हैं। इस सत्कार्य के लिए हम उनके आभारी हैं। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है, कि विद्वत्समुदाय इस ग्रंथ को पूर्णरूप से समादृत करता हुआ प्रा. डॉ. पण्ड्याजी और हमारे इस प्रकाशन को गौरवान्वित करेगा।

अहमदाबाद के प्रिन्ट विज़न प्रेस के मालिक श्री यज्ञेशभाई पण्ड्या और प्रेस के कर्मचारी प्रणवभाई एवं सुष्माबहन आदि सभी ने अत्यंत सावधानीपूर्वक सन्निष्ठ मुद्रण-कार्य किया है, इस लिए उनको हमारी शुभकामनाएँ।

प्रबन्धक, बिहारीपुरि मठ एवं काशी विश्वनाथ वैदिक कर्मकाण्ड संस्कृत महाविद्यालय;
डी, 7-40, विश्वनाथ गली, वाराणसी (यू.पी.)।
फोन : (0542) 2390052

अस्मदीयम्

गत सात-आठ वर्षों से वाराणसी में रुद्र, विष्णु एवं अन्नपूर्णा माता के यज्ञ-हेतु और श्रीकाशीविश्वनाथ भगवान के उपर दुग्धाभिषेक के लिए देवदीपावलि महोत्सव पर्व में काशी में आने का लाभ मिलता रहा है। विश्वनाथगलीस्थ बिहारीपुरिमठ के प्रबन्धक स्वामी श्री जयकिशनपुरी महाराजजी श्रीसूक्त का प्रकाशन करना चाहते थे। निरंजनी अखाड़ा (शिवाला) में यज्ञकाल समय में वे.शा.सं. पण्डितप्रवर श्रीविश्वेश्वर शास्त्रीजी और उनके लघुभ्राता वे. शा. सं. पं. श्री गणेश्वर शास्त्रीजी के साथ ग्रंथ की विषयविचारणा हुई। तब पं. प्र. श्री गणेश्वर शास्त्रीजी ने लक्ष्मीतंत्र को भी देख लेने का बहुमूल्य सुझाव दिया, इतना ही नहीं, उन्होंने लक्ष्मीतंत्र ही भेज दिया। यदि उन्हों का सूचन नहीं मिला होता, तो यह ग्रन्थ निश्चय ही निर्बल रहता। मैं उनका ऋणी हूँ।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय (काशी) के मीमांसाविभागीय अध्यक्ष, वे.शा.सं. पण्डितप्रवर प्रो. डॉ. श्री कमलाकान्त त्रिपाठीजी के साथ बार बार मूल्यवान विचार-विमर्श हुआ। इनका मैं अति ऋणी हूँ। इनके अलावा वे.शा.सं. महामहोपाध्याय विद्यावाचस्पति, वे.शा.सं. आचार्य श्री पं. वायुनन्दन पाण्डेयजी, वे.शा.सं. पं. प्रो. श्री शिवजी उपाध्यायजी, डॉ. पं. सदानन्दशुक्लजी (उपाचार्य, ज्योतिष विभाग; सं.सं.वि.वि; काशी); वैद्यशिरोमणि पं. रामसुख त्रिपाठीजी (उपाध्यक्ष, भा. आर्यमर्यादा-विज्ञान-समिति, काशी); वेदपुरुष पं. गोडशे गजानन शास्त्रीजी आदि काशी के विद्वद्गणमान्य पण्डितों के अलावा गुजरात के पण्डित-प्रवर प्रो. डॉ नारायणभाई कंसारा (राष्ट्रपति सम्मानित, अमदाबाद) के साथ बहुमूल्य विषयविचारणा हुई है।

ज्योतिःशारदोभयपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य पू. स्वामिश्री स्वरूपानन्दसरस्वती महाराज गुरुवर्य के आशीर्वाद प्राप्त करके मैं धन्य हो गया हूँ। तदुपरान्त गुरुवर्यश्री के दो शिष्यरत्न, पू. स्वामिश्री-सदानन्दसरस्वतीगुरुजी एवं पू. स्वामि-श्रीअविमुक्तेश्वरानन्दगुरुजीके भी शुभाशिष प्राप्त हुए हैं। वाराणसी में पू. श्रीअविमुक्तेश्वरानन्दगुरुजी से बहुमूल्य विचारविमर्श भी हुआ है। इन तीनों का मैं ऋणी हूँ।

देवपूजादीपक और **उपासना-दीपक** के बाद इस **श्रीसूक्त-दीपक** के प्रकाशन से मुझे परम सन्तोष हो रहा है। पुण्यश्लोक प्रातःस्मरणीय पूज्यतम

स्व. मेरे मातापिता और मेरे पितृव्य स्व. हरिशंकरशास्त्रीजी के श्रीचरणों में इन तीनों वाक्पुष्पों को मैं सादर समर्पित करता हूँ। आज उनकी महती इच्छा परिपूर्ण हो रही है। मेरे कुलदेवता श्रीशकटाम्बिका, वीरेश्वर महादेव, महोदर गणपति और कालभैरव को [पुष्पादर ग्राम, ता. सिद्धपुर] मैं भक्तिविनम्र होकर पूर्णश्रद्धा से प्रणाम करता हूँ।

निवृत्त जगद्गुरु शंकराचार्य अ. श्री. वि. पू. श्री सत्यमित्रानन्दगुरुजी (समन्वय कुटीर, सप्तसरोवर, हरिद्वार); अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामिश्री वासुदेवाचार्य महाराजश्री 'विद्याभास्कर' (अयोध्या); अनन्त श्रीविभूषित स्वामि-विश्वनाथावधूत महाराजश्री (रामनगर, सूरत) के आशीर्वादों की प्राप्ति मेरा परम सौभाग्य है।

इन महातपस्वी-महर्षि सन्तों के अलावा द्वारकाधीश संस्कृत एकेडेमी, द्वारका के निदेशक महामहोपाध्याय प्रो. डॉ. पं. श्रीजयप्रकाशनारायण द्विवेदी; भागवत विद्यापीठ [सोला, अमदाबाद] के अध्यक्षश्री पं. भागवतऋषिजी; वरतन्तु महावि. के प्राचार्य पं. नरेन्द्रकुमारजी; राष्ट्रपति सम्मानित प्रो. डा. पं. श्री गौतमभाई वी. पटेल - [पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत -साहित्य-अकादमी, गुजरात राज्य-गांधीनगर]; प्रो. डॉ. पं. श्री राजनाथ त्रिपाठीजी - [उपाचार्य, आगमविभाग, सं.सं. विश्व.-काशी]; प्रो. डॉ. पं. श्री वाचस्पति मिश्रजी - [प्राचार्य, स्वामिनारायण सं. महाविद्यालय-जेतलपुर, गुजरात]; आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित प्रो. पं. धनशंकरजी राजवैद्य [अमदाबाद]; भागवत-प्रवक्ताशिरोमणि श्री प्रद्युम्नभाई शास्त्रीजी - [गोल्डमेडलिस्ट, वडोदरा, गुजरात]; कर्मकाण्ड प्रवीण डॉ. घनश्यामभाई शास्त्री [नडियाद, गुजरात] आदि गणमान्य पण्डितों ने समयाभाव में भी इस ग्रन्थ का सूक्ष्मदृष्टि से अवलोकन करके, स्वअभिप्रायों से उसे विभूषित किया है। इन पण्डितों ने 'सतां संगतं साप्तपदीनमुच्यते' सूक्ति को चरितार्थ किया है। लक्ष्मीतंत्र की जटिल गुत्थियों को सुलझाने में पं. श्री बंसीधरजी सोनी (कलोल) से सहायता मिली है। स्वामिश्री जयकिशनपुरि महाराजजी (बिहारीपुरिमठ, काशी)ने इस पुण्यकार्य की व्यवस्था के लिए सोत्साह परिश्रम किया है। उनका सात्त्विक प्रेम अविस्मरणीय रहेगा। इन सभी का मैं ऋणी हूँ।

मेरे जीवन में सात्त्विकता का सिंचन करनेवाले पुण्यश्लोक प्रातःस्मरणीय (1) ध्यानमार्ग के गुरुवर्य पू. श्रीमधुसूदनदासजी [बंधवड एवं अमदाबाद]; (2) मेरे परमगुरुवर्य संतशिरोमणि महापण्डित पू. श्री करपात्र स्वामिमहाराजश्री

(केदारघाट, काशी) के प्रियशिष्य सिद्धयोगी दण्डिस्वामी पू. श्रीहंसानन्दसरस्वतीश्रीगुरुजी [संतकुटीर नं.-2, ऋषीकेश], जिन्होंने मुझे वेदान्तमार्ग में दीक्षित किया; (3) श्रीषोडशीमहाविद्या के दीक्षागुरुवर्य पू. श्री प्रतापराय (यज्ञानन्दनाथ) गुरुदेव (अमदाबाद); (4) अतिवृद्धावस्था में भी प्रातः 4 से रात्रि के सात-आठ बजे तक भगवती की अनन्य आराधना करने वाले सिद्धयोगी महामण्डलेश्वर ब्र. ली. पू. स्वामिश्री राजेश्वरानन्द भारती महाराजजी [हरिगिरि आश्रम, कनखल, चम्बा और आंबेश्वर] (5) अहोनिश शिवभाव में रममाण परमसिद्ध योगिवर्य पू. श्री ब्र.ली. सावलीवाले महाराजश्री [सावली, जि. वडोदरा]; (6) आजीवन ब्राह्मणहितचिन्तक एवं भागवत-प्रवक्ताशिरोमणि, महापण्डित पू. श्री कृष्णशंकरशास्त्रीजी, जिन्होंने भगीरथ परिश्रम करके श्रीभागवतविद्यापीठ की स्थापना की; (7) आजीवन संशोधक एवं अनेकानेकपदवीविभूषित महापण्डित के. का. शास्त्रीजी (अमदाबाद), जिन्होंने मुझे पितातुल्य प्रेम दिया। (8) ब्र.ली. पू. देवशंकरबापा (अरवडेश्वर, सिद्धपुर, गुजरात), जिन्होंने मेरे पर आशीर्वादों की वर्षा की; (9) आजीवन भगवती के निरंतर अनन्य आराधक ब्र.ली. पू. स्वामि श्री भागवतानन्दगिरि महाराजश्री, एवं उनके शिष्यरत्न परमतपस्वी पू. स्वामिश्री पूर्णानन्दगिरि महाराजश्री [वर्तमान महंत श्री कपिलेश्वर महादेव-कलोल, गुजरात], (10) श्रीविद्यारहस्य के पारगामी पू. श्री हंसानन्दसरस्वतीजी [मद्रासी महाराजश्री, सिद्धपुर, गुजरात]; (11) परमवैष्णव नाडीवैद्य, रसवैद्य पू. श्री धनशंकरजी राजवैद्यश्री (अमदाबाद); (12) निष्काम कर्म एवं संशोधन के पथप्रदर्शक पू. श्री पं. स्व. सुखलालजी, पू. पं. स्व. श्री दलसुखभाई मालवणियाजी, पू. स्व. श्री पुण्यविजयजी महाराजश्री, पू. पं. स्व. श्री रतिलालभाई देसाईजी आदि महानुभावों को मैं श्रद्धावनत होकर सादर प्रणाम करता हूँ।

बिन्दु, बीज, नाद, शक्ति आदि कठिनतम गुत्थियाँ इष्टदेवी महालक्ष्मीमाता, सरस्वतीमाता, सिद्धपुरुषों एवं गुरुजनों की कृपा से ही सुलझी हैं। इस ग्रन्थ का जो हिस्सा विद्वद्समुदाय को सन्तुष्ट करेगा, उसका श्रेय इन दिव्यतत्त्वों को दिया जाए। अवशिष्ट भाग में मेरी असावधानी समझी जाए। विद्वद्गण से मेरी प्रार्थना है कि, इस ग्रन्थ की क्षतियाँ पत्रद्वारा मुझे भेजने की कृपा करें।

मेरी अर्धांगिनी सौ. वसुमती ने यदि मेरे गार्हस्थ्य का भार वहन न किया होता, तो मैं ऐसे संशोधनात्मक लेखनकार्य कैसे कर सकता ? इस बात को

ध्यान में रख कर मेरी वृत्ति का नाम **वसुमतीवृत्ति** रखा है। हस्तप्रत की झेरोक्स कापियाँ कराने आदि सेवाएँ मेरे छात्र चि. मंगलसेन, विक्रम, मलय, महेश, भौतिक, कृणाल आदि ने की हैं। अमदाबाद की सेवाएँ चि. राजेश व्यास और सचिन ने की है। प्रूफ लाने-ले जाने की सेवा मेरे भ्रातृव्य चि. किरीट और उसके सुपुत्र विशाल ने की है। यंत्र की डिझाइन मेरे सुपुत्र चि. डो. दिनेश (होस्पि. सुप्रि.; गवर्न. आयुर्वेद होस्पि.; गांधीनगर) और पौत्र विनायक ने की है। मेरे इस कठिन कार्य में सहयोग देनेवाले सभी पर भगवती की कृपादृष्टि एवं कृपावृष्टि होती रहे, ऐसी अभ्यर्थना।

मेरी दो पुस्तिकाओं का विमोचन पू. श्री अविमुक्तेश्वरानन्दगुरुजी के वरद हस्तों से काशी में हुआ है। इस ग्रन्थ का भी विमोचन उन्हों के करकमलों द्वारा काशी में होगा। इस ग्रन्थ के प्रथम दाताविभाग में डो. कनुभाई शुक्लजी (कलोल) है। और द्वितीय दाताविभाग में सरलाबहन दिनेशचन्द्र व्यास एवं वसुबेन हरनारायणभाई पण्डया चेरिटेबल ट्रस्ट (कलोल) हैं। उच्चस्तरीय पंडितों को यह ग्रन्थ विनामूल्य दिया जाएगा और शेषलाभ संतों एवं संस्कृतछात्रों के भोजन आदि में खर्च किया जाएगा, जिससे दाता परिवारों के पूर्वजों को शान्ति-तृप्ति मिलेगी।

अमदाबाद के प्रिन्ट विझन प्रेस के मालिक श्री यज्ञेशभाई पण्ड्या एवं प्रेस के कर्मचारी सुष्माबहन, प्रणवभाई, युवराजभाई, कल्पेशभाई आदिने अत्यंत सावधानी एवं निष्ठापूर्वक मुद्रणकार्य किया है। फिर भी कहीं गलतियाँ रह गई होंगी ही, जिनको सुज्ञ पाठक मुझे अवश्य सूचित करें।

यह ग्रन्थ मैंने निष्काम भाव से ईश्वरप्रीतये विश्वकल्याणार्थ लिखा है, अतः इस ग्रन्थ के उपार्जन में मेरा एवं मेरे वंशधरों का कोई अधिकार नहीं है। केवल इस ग्रन्थ के सर्वाधिकार मेरे पास रखे हैं।

सभी की प्रीति मिले ऐसी प्रार्थना के साथ -

आपका

15, आम्रकुंज सो.। डो. मुकुंदजानी-दवाखाना के सामने।
कलोल, जि. गांधीनगर (उत्तरगुजरात); पीन-382 721,
दूरभाष - (02764) 321578; 220097; (M) 93746 88596

अनन्तश्रीविभूषितज्योतिःशारदोभयपीठाधीश्वर

जगद्गुरुशङ्कराचार्य-स्वामिश्रीस्वरूपानन्दसरस्वती महाराजश्री शुभाशंसनम्

श्रुत्या यथा श्रेयवस्तु निर्दिश्यते तथैव प्रेयोऽपि वर्ण्यते । श्रियि यथा धर्मार्थकामप्रदातृत्वमवगम्यते तथैव मोक्षप्रदातृत्वमपि आम्नायमुखेनाकर्ण्यते । नह्यनित्यभूतया श्रिया नित्यभूतं परमात्मतत्त्वं शक्यतेऽवगन्तुम् । तस्माच्छ्रियः पारमार्थिकत्वमेव बोद्धव्यम् । पारमार्थिकत्वञ्चास्याः सर्वचराचरजगदुत्पत्ति-स्थितिप्रलयसम्पादकत्वेन सम्भाव्यते । कामार्थिनामियं श्रीः हार्दाभीष्टान् पुरस्कृत्य परमात्माभिमुखीकुरुते । अकामानामपि योगविदां स्थितप्रज्ञानां विभूतिमतां नित्यानित्यवस्तुविवेकादिसाधनसम्पत्तिद्वारेण स्वस्वरूपं सच्चिदानन्दाख्यं प्रकटीकुरुते। अत एव ब्रह्मावलोकधीषणापदवाच्या भवति । मनुष्यत्वमवाप्य केनचिद् नाराध्यते एषा, तर्हि वैयर्थ्यमेव जीवनस्य । स्वस्वरूपावाप्त्यर्थमेव मानवशरीरम्। उक्तञ्च श्रीमद्भागवते - ''तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधीषणमुदमाप देवः'' । विवेकचूडामणौ आदावेव आद्यजगद्गुरुणा प्रोच्यते - ''दुर्लभं त्रयमेवैतद् देवानुग्रहहेतुकम् । मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥,'' इत्येतद् वचः स्मारं स्मारं प्रमोदे ।

इदं तावद् ध्येयं यत् संस्कृतान्तःकरणः एव कश्चन श्रेयसि विनियुज्यते । कर्मणां वेदोक्तानां चित्तशुद्ध्यादावेव विनियोगः, तत्पश्चादेव ब्रह्मात्मतत्त्वविषयिणी काचिज्जिज्ञासा जागर्ति । अत एव ब्रह्मजिज्ञासायाः प्राक् धर्मजिज्ञावतारणा । सर्वेषां वेदान्तवाक्यानामखण्डचिदेकरसब्रह्मणि एव समन्वयात् ब्रह्मैव द्रष्टव्यम्, एतेनैव आत्मसाक्षात्कारेण कृतकृत्यो भवति शोकमोहाभिभूतो जनः । नह्येतत् सर्वं विद्यया विना सम्भाव्यते । अथ च अध्यात्मविद्याऽपि श्रीरूपैव ज्ञेया । एवञ्च विनेयभेदादुपासना अवतार्यन्ते । नहि तत्र कस्यचिदुत्कृष्टत्वं न वापकृष्टत्वम् । यथा औषधेः मात्राः स्वास्थ्यकामाय तत्तत्प्रकृत्यनुसारेण विनियुज्यन्ते, तथैवात्रापि उपासनायां ज्ञातव्यम् । सम्यक्प्रयोगो हि साफल्यमेति । प्रयोगसिद्धिश्च गुरुसन्निधानात् तत्कारुण्यादेव दृश्यते, लोके वेदे च । गुरुकुलावाप्तविद्य एव पुमान् लोकाननुगृह्णाति । अत एव श्रीहर्षैः ''मास्मिन् खलः खेलतु'' इत्युक्तम् । गभीरजलराशौ कश्चन् कुशलः एव प्रवाहं तिरस्कृत्य पारं व्रजति । संसारसागरेऽतिदुस्तरे विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौकैव श्रुतिनिर्दिष्टा शरणम् ।

सम्प्रति श्रीसूक्तस्य भावोऽपि अतिनिगूढः, तस्य बुद्धावानयनमतिदुरावापम्। किन्तु लेखकेन विदुषा श्रीसम्पन्नेनास्य भावाः सहजतया निरूपिता, अर्थविस्तारश्चानुष्ठितः इति महान् प्रतोषो मे मनसि। न ह्येतेन अर्थप्रकाश एवापितु श्रीसूक्ताराधनतत्पराणां श्रीरसरसिकानां महान् लाभो भविष्यति। जीवनदशायां भोगैश्वर्यादिकमास्वाद्यन्ते, मुक्तिरपि करस्थितैव श्रीदेव्याः करुणया। श्रीज्योतिष्पीठशारदापीठ-जगद्गुरुशङ्कराचार्यान् शङ्कररूपिणश्च परमगुरून् श्रीविद्यागुरून् नामवक्तुं प्रभवामि, स्मर्यते च श्रीवाचस्पतिमिश्रवचः "रथ्योदकमिव गङ्गाप्रवाहपातः प्रवित्रयिष्यति इति। येषां दर्शनेनैव महाभयनाशो जायते, का कथा सन्निधानस्य।

सर्वो हि लोको दुःखत्रयाभिभूतः सुखं वाञ्छति निसर्गतः। सुखं तु शुभकर्मपरिपाकादेव जायते। शुभकर्मणि प्रवृत्तिरपि भगवदनुग्रहादेव बोद्धव्या। तस्मात् तदनुग्रहार्थं तत्प्रसन्नता अपेक्षते। भजनमाहात्म्यमेवैतादृशं येन नारायणी नारायणो वा प्रसीदति, पश्चात् करुणारसेन भक्तमभिषिञ्चति। भजनप्रक्रियां श्रीमद्भगवद्गीतायां दृश्यते तद्यथा- सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रताः। नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥ इति।

अनेन सूक्तकीर्तनतत्पराः सेवकाः परमात्मतत्त्वमवगच्छन्ति। सर्वे शब्दाः ब्रह्मवाचकाः इति धिया तैस्तैश्शब्दैर्ब्रह्मैवाराध्यते। श्रीसूक्तैरेतैराम्नायिकैः परापराज्ञा सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती आत्मतत्त्वमवबोधयति। यस्याः प्रसन्नतायां सर्वदृश्यवर्गोच्छेदकं अतिदुर्लभं तत्त्वं लभ्यते, तर्हि किमुवक्तव्यं लौकिकवस्तूनां लाभे ?

परमविदुषा श्रीमता **पं. हरिनारायणशास्त्रिणा** सूक्तमेतत् सूक्ष्मदृष्ट्या व्याख्यातम्। एतेन श्रीसूक्तसेवकानां महान् अर्थावगमो भविष्यति, सन्देहश्च व्यपगमिष्यति। ग्रन्थकृद्वैभवोऽयं कीर्तिं प्रीतिञ्चैष्यति। **श्रीसूक्तप्रदीपोऽयं** नानाजनसम्बन्धतां प्रत्येतु इति परमेश्वरं प्रार्थये। कामये च सर्वविधमङ्गलं प्रणेतुः। संस्कृतसंस्कृतिविदुषां प्रसन्नतामधिगच्छेदयमिति कृत्वा लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्त्विति मे विश्वासः। अन्ते लोकमङ्गलाय श्रीविश्वनाथान्नपूर्णे प्रार्थ्येते इति।

फैक्स : 234457
स्वरूपानन्द सरस्वती

दूरभाष : (02892) 234064; 235109
द्वारावती

पण्डितों की दृष्टि में श्रीसूक्तदीपक

श्री द्वारका शारदापीठम्

प्रेषक - सचिव,
पू. पाद-जगद्गुरुशंकराचार्यमहाराजश्री,

स्वस्ति - डॉ. हरनारायण-शर्म-महानुभावाः,

भवत्प्रेषितं **'श्रीसूक्तदीपकसंज्ञकम्'** पुस्तकमवलोक्य ज्ञातमभवद् यद् ऋग्वेदान्तर्गतविद्यमान-श्रीसूक्तस्य सर्वेषां मन्त्राणामत्र समीचीना, सारगर्भिता, शास्त्रसम्मता, सनातन-सिद्धान्तानुरूपा च व्याख्या कृता भवद्भिः ।

श्रीसूक्तमिदं शाकलशाखायाः ऋग्वेदसंहितायाः खिलसूक्तानां द्वितीयाध्याये विद्यते। यस्य मंत्रसंख्या-संदर्भे मतैक्यं नास्ति, किन्तु श्रीसूक्तदीपकेऽत्र षोडशमन्त्राः एव सर्वमान्याः सन्ति। पुनरपि अस्मिन् विषये अन्येषां विदुषां मतानामपि वर्णनं प्रकृत-ग्रन्थस्य निरूपणे द्रष्टुं शक्यते ।

ग्रन्थस्यास्यादौ विलिखिता विशदा, सुविस्तृता, मनोज्ञा, गभीरा च भूमिका ग्रन्थान्तर्गत-वर्णित-विषयानां सम्पूर्ण-ज्ञानप्रदानक्षमा वर्तते ।

पञ्चप्रकरणात्मके प्रकृतग्रन्थे मंत्रप्रयोग-विनियोगानुष्ठानावतारादीनाञ्च विवेचनं यट्टिप्पणी-पूर्वकं कृतं तच्छ्लाघ्यमेव। एतदतिरिक्तं यंत्रतंत्रादीनाञ्च चारुनिरूपणमत्र पूर्णव्यवस्थितमिति वक्तुं शक्यते ।

अतः श्रीसूक्तदीपकस्य शीघ्र-प्रकाशनार्थं भगवन्तं श्रीद्वारकाधीशं भगवन्तं श्रीचन्द्रमौलीश्वरं च ध्यात्वा पूज्यवर्याणां द्विपीठाधीश्वराणां श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्यजीमहाराजानामाज्ञया भगवदाशीर्वचांसि प्रेष्यामः ।

दिनांक : 12-5-06 (दण्डिस्वामि-सदानन्द-सरस्वती)
द्वारका मंत्री, श्रीद्वारकाशारदापीठस्य ।

स्वामी अविमुक्तेश्वरानन्द सरस्वती
शिष्य एवं प्रतिनिधि, पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित
ज्योतिःशारदोभयपीठाधीश्वर शङ्कराचार्यजी महाराज
श्रीविद्यामठ, केदारघाट, वाराणसी-1; दूरभाष : (0542) 2450362, 2450520
E-Mail _ avimuktaswami@hotmail.com

शुभाशंसनम्

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वित्यादिस्तुत्यां त एव सुकृतिनो भवन्ति, ये खलु अविद्यादिदोषरहिताः 'योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये' इति भगवतोक्तवाक्यसारमनुसरन्ति। नहि परमात्मतत्त्वबोधमन्तरा सुकृतित्वं सम्भवति। पुण्यश्लोकाः समदर्शिन अव्दैततत्त्वविद एव सुकृतिनः श्रियि परमानन्दाख्ये भूम्नि प्रतिष्ठन्ते। अत एव भगवद्गीतायां श्रीकृष्णेन उच्यते- ''शुचीनां **श्रीमतां** गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते''। अत्र श्रीमतामित्यस्य विभूतिमतामिति अर्थे सति श्रीविभूत्योः परमार्थतो भेदो नावगन्तव्यः, तत्तद्भेदानामधिकारिभेदादेवोल्लेखः इति समाधिः।

नह्यत्र श्रिया केवलं अर्थाख्यः एव पुरुषार्थो लभ्यते, अपि तु चतुर्विधपुरुषार्थेषु नित्यानुस्यूतमाना अघटितघटनापटीयसी सच्छक्तिः, चिच्छक्तिः आनन्दशक्तिश्चेति लभ्यते। अत एव श्रीमद्भागवते रासपंचाध्याय्यामादौ दृश्यते - ''भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः। वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः''॥ अत्र योगमायेति शब्देन श्रियः एव अर्थलाभः। तस्मादेव कृष्णशब्दात् पूर्वं श्रीशब्दस्य विद्यमानत्वम्। यद्यपि व्याख्यातृभिः मनीषिभिः श्रीश्च श्रीश्च श्रीश्चेति द्वन्द्वसमासे जाते श्रियः, ताभिः श्रीभिः, राधारमागीर्भिः युक्तः कृष्णः श्रीकृष्णः इति अकारणकरुणाया गोपनीयमेव प्रकाश्यते। कि बहुना भक्तेरपि श्रीरूपत्वमेव यत्र तत्र ग्रन्थसन्दर्भेषु प्रतिपाद्यते। अद्वैतदशायामपि सृष्टेः पूर्वं ''तदैक्षत एकोऽहं बहु स्याम प्रजायेय'' इत्यत्र श्रीरूपा योगमाया, (योगः सङ्कल्पः तद्वशवर्तिनी माया योगमायेति निरूपणात्,) श्रूयतेऽवगम्यते। नहि सङ्कल्पमपहाय किञ्चित् कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं वेति शक्यते। एतेन श्रियो माहात्म्यं सर्वचराचरप्रभवत्वञ्च समर्थ्यते। नामरूपात्मकस्य जगतो अत्यन्तविलयार्थं भगवतो नामरूपात्मकमूर्तेरपि समाधिदशायामावश्यकत्वं श्रियो नितरां महत्त्वपदवीं बिभर्ति।

'रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव' इति श्रीपुष्पदन्तवचोभिः यैः फलकामिभिः स्वस्वसंकल्पैः श्रीरेषाराध्यते। प्रसन्ना सती सा श्रीविद्या सर्वप्रदीपा तान् तान् सदभीष्ठान् साधयति, साधयिष्यति चेति

मे मतिः । समग्रैश्वर्यादि सम्पादयित्री चेयं परा, ययाक्षरमधिगम्यते, लोकस्य महते कल्याणाय महर्षिभिरुपन्यस्ता । इदं तावत् श्रीसाधकैः ध्येयं यद् दर्शनानामादिबीजं सूक्तेषु दृश्यते । नह्यत्र सूक्तेषु केवलमुपासनैव निर्दिश्यते साध्यते चापितु ज्ञानकाण्डस्यात्र भूमिकोपलभ्यते । नहि भूमिकां परित्यज्य कश्चन जगन्मङ्गलकरस्तरुरवकल्प्येत । न वा प्रासादोत्कृष्टत्वकल्पना । उपासनायां भगवतीमन्तरा कथाऽपि दुःसाध्या प्रतीयते । उपासनाविधौ श्रीसूक्तं महदुपकरोति लोकान् साधकान् योगिनश्चेति । सूक्तस्यास्य श्रीस्वरूपत्वात् न हि सूक्तेनानेन परमेश्वरी कीर्त्यतेऽपि तु परमेश्वर्यैव साक्षात् कीर्त्यते । उपास्योपासनयोरभेददशायां तत्प्रतिपादकशब्दानामपि अभेद एव बोद्धव्यः । लेखकेभ्यः सम्प्रदायप्रतिपादितरहस्यरसिकेभ्यः, प्रेयांसि श्रेयांसि चाभिकाम्यन्ते । स्ववर्णाश्रमधर्मानुरागिणां विदुषां प्रेक्षावतां सूक्ताराधनेनानेन सर्वविधकल्याणं भूयात् ।

संसारानलसंतप्तानां श्रीशाङ्करी शंकरोतु । ''उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'' इति उपनिषद्वाक्यं स्मारयन् एतैराशीर्वचोभिः लोकस्य मंगलानि कामयेहम् । सूक्ताराधकेभ्यः भवद्भ्यः स्वप्रकाशा श्रीविद्या प्रार्थ्यते यत् सा नारायणी झटिति प्रसन्ना सती भक्तजनमनोमोदाय मनसि निकेतनाजिरे च निवासं कुर्यात् । सूक्तसारप्रकाशनपटुव्याख्यातुः विविधविद्याव्यसनधनिकस्य श्रीमतः **हरनारायणभाई पण्ड्यावर्यस्य** कृतिरियं दिग्दिगन्तयशो विदधातु भारतञ्चास्मदीयं सर्वविधसमृद्धिमेतु इति शम् ।

मार्गशीर्ष कृ. प्रतिपदा,
सं. 2063; श्रीकाशी ।

(स्वामी अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती)

* * *

अग्निहोत्री श्री शुकदेवभाई जी. व्यास

सि. ज्योतिषाचार्य; बी.ए.
नैमिषारण्य, कालेज रोड़ कोर्नर, नडियाद (जि. खेड़ा), (गूजरात) ।

श्रीमद्भिः डो. हरिनारायणभाईशास्त्रिवर्यैर्विरचितोऽयं **श्रीसूक्त-दीपको** ग्रन्थः उपासनापथि दीपक इव पथप्रदर्शको भविष्यतीति दढ़ं मन्ये । भगवत्याः राज-राजेश्वर्याः श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः कृपाप्रसादात् कृतोऽयं सुप्रयासोऽवश्यमेव साफल्यमेष्यतीत्याशासे-

फेक्स : (0268) 2520728
फोन : (0268) 2520711, 5540220





समन्वय सेवा ट्रस्ट
समन्वय कुटीर, सप्त सरोवर, हरिद्वार - 249410 (उत्तरांचल) भारत

संस्थापक :
स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि
निवृत्त जगद्गुरु, शंकराचार्य, ज्योतिर्मठ शाखा

SAMANVAYA SEVA TRUST
Samanvaya Kutir, Sapta Sarowar, Haridwar - 249 410 (Uttaranchal) India
Telephone : Office : 0133-460256, Fax : 0133-460981
Bharat Sadan : 0133-460111, Fax : 0133-460010
E-mail : samanvayst_hwr@sancharnet.in
website : www.bharatmatamandir.com
फोन 01334-260256
फैक्स 01334-260981

1/7/06

प्रियात्मन् डा. हरनारायण भाई उ. पण्ड्या जी।

सप्रेम श्रीनारायणस्मरणम्। भवत्प्रेषितं श्रीसूक्तदीपकपुस्तकं प्राप्तम्। समस्तानां श्रियामधिष्ठात्री (श्रीनारायणी) श्रीः जगतामाधारभूता, अतएवेत्थं स्तूयते भक्तैः "श्रियं वासय मे कुले"। एतस्याः स्मरणेन समस्ता बाह्याभ्यन्तर-विकृतयः, दुर्गतयः, अकालमृत्यवो नश्यन्ति तत एव सद्वाचि ब्रुवन्ति वैदिकाः 'अलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्' इति।

एतादृशीमनन्योपमितां श्रियं यत्सूक्तं स्तौति तद्-विषयकं प्रयोगं यन्त्रन्यासादिपूर्वकं बहुधा विविच्य स्वर-सञ्चारक्रमं च विबोध्य विहितो भवतामयं प्रयासः सन्तोषावहः प्रमोदावहश्च। समस्तं पुस्तकं प्रतिवाक्यं द्रष्टुं यद्यपि नास्त्यवसरस्तथापि यावद् यत्किञ्चिदपि दृग्गोचरीकृतं तत्साधुदृष्टितां पुष्णाति।

पुण्यश्लोका विरला एव जना अस्याः श्रियः कृपापात्रीभूता मोदन्ते मोदयन्त्यपरानपि स्व वाग्वैभवेन धनवैभवेनेति सामोद-मावेदयति हृद्दृग्विलासलीलाताण्डवमण्डितमानस एष परमहंसमार्गाध्वनीनोऽपि जनो यत् पुस्तकमिदं बहूपयोगि नचिरादेव भवितेति — भवदीयः

स्वामि सत्यमित्रानन्दः, ॐ

दिनांक : 1-7-06

दूरभाष : (01334) 260256

फेक्स : 01334-260981

अनन्त-श्रीविभूषित-जगद्गुरु-रामानुजाचार्य-वेदान्त-मार्तण्ड-
यतीन्द्र-स्वामि-रामनारायणाचार्य-कृपाप्राप्त
पू.जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्री स्वामि-**वासुदेवाचार्यजी महाराज** 'विद्या भास्कर',
अध्यक्ष, कोसलेश सदन, धर्मादाय (ट्रस्ट); अयोध्या-224 123 (यू.पी.)।

श्रीः ॥ हरनारायणाख्यानां पण्ड्योपाह्व-द्विजन्मनाम् ।
श्रीसूक्तदीपक-ग्रन्थो लब्धकीर्तिर्भवेद् भुवि ॥1॥

श्रीमन्नारायणाभिन्न-श्रीदेवीसुप्रकाशके ।
श्रीसूक्तदीपके ग्रन्थे पण्ड्याभूतिर्विभासते ॥2॥

श्रीसूक्तदीपकं दिव्यं ग्रन्थरत्नं वितन्वता ।
किन्नाऽकारि महाभाग-पण्ड्योपाह्व-विपश्चिता ॥3॥

एतल्लोकोत्तरं कार्यं वीक्ष्यैवामोद-निर्भराः ।
वयं जाता महाविष्णोर्विभेव लब्धविस्तराः ॥4॥

लक्ष्मीनारायण-प्रीति-प्रोत्फुल्लमनसा मया
हरनारायणो विद्वानाशिषा परिपूर्यते ॥5॥

दूरभाष : (05278) 32043; 32443

* * *

वेद शा.सं. **श्री डाह्याभाई के. शास्त्रीजी,** (व्या. साहि. आचार्य)
मेने. ट्रस्टी, ब्रह्मर्षि संस्कारधाम (सं.पाठशाला); नडियाद, (गुजरात) ।

वेदकालीन भारतीय तत्त्वज्ञान एवं उपासनाकाण्ड ऋषियों की समाधिप्राप्त स्वानुभूति है, जिसके द्वारा भारतीय सांस्कृतिक एवं सामाजिक समुत्कर्ष हो सकता है। जैसे सर्व वृक्षों में कल्पवृक्ष और सभी पशुओं में कामधेनु गाय सर्वश्रेष्ठ है, उसी तरह सर्व सूक्तों में श्रीसूक्तम् सूक्ताधिराज है।

पण्डितप्रवर प्रा.डो. हरिनारायणभाई शास्त्रीजी रचित **श्रीसूक्त-दीपक** हृत्प्रदेशस्थदिव्यवागामृताप्लावित है। वह न केवल विद्वन्मनःप्रतोषकारक, अपितु उपासक का पथप्रदर्शक बन कर महदुपकारी सिद्ध होगा ही। लेखक धन्यवादार्ह है। भगवान सदाशिव उनको शक्ति, भक्ति एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रदान करें, ऐसी अभ्यर्थना के साथ-

भवदीय,

दूरभाष : (का) 2566760
मो. : 98257-13302
निवास : (0268) 2566759

डॉ. कमलाकान्त त्रिपाठीजी, अध्यक्ष, मीमांसा विभाग;
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 002
दूरभाष : (मो) 98389 95772

अनादि-श्रुति-स्मृति-सदाचार-परंपरानुप्राणित-विग्रहाः, समासादित- चतुर्दश-विद्याग्रहा, अहर्निश-शास्त्रतत्त्व-समुद्भासन-विहित-शिष्टजनानुग्रहा, हविर्धानमण्डपे सोमाप्लावितग्रहा इव लोके परमदेवता-प्रियतापादका, लब्धकीर्तयः, प्राप्त-भगवद्रतयः, समुपासितविद्वत्ततयो, वितर्कितहृदय-पुण्डरीक-सन्निवेशित-परमगतयो, भव्यमतयः, श्रीमद् डॉ. हरनारायणभाई उमाशंकरभाई पण्डया महोदया अस्मद्दृष्टौ लब्धाया एव यैरिदं श्रीमद्-नारायणश्रीवत्सलांछितोरःस्थलविभ्राजमान कौस्तुभाख्यलोकोत्तरमणिरिव सकल-विपश्चिद्वृन्दसहृदयहृदयाह्लादकं गहनतमिस्राविदारकं चतुर्दश-भुवनप्राणभूत-परविद्यासमुद्योतकं **श्रीसूक्तदीपकाख्यं** ग्रन्थरत्नं पृष्ठे भुवश्चकासितम् । तदीयरचना-मोदमानमानसेन मयादर - मुकुलितलोचनमिदमेव निगद्यते -

पण्ड्यामहोदयकृतं सुकृतैकपाक-**श्रीसूक्तदीपकमिदं** भुवने चकास्तु ।
यत्र प्रसादगुणभूषित-वाक्य-सम्पत् श्रौतीं विधां कलयतीव मुहुर्विभाति ॥

भूयः परिश्रमफलं विबुधैकगम्यं श्रीसूक्तदीपकमहो महतीमभिख्याम् ।
धत्ते धरातलविभूतिरिव प्रकामं पण्ड्यामहोदययशःधवलं प्रकुर्वत् ॥

निजप्रतिभाप्रकर्ष-प्रयुक्त-लोकहितार्थ-प्रस्फुट-निजकार्यवैभवेन विभ्राजमानास्तेऽनारतमेव श्रीसदाशिवप्रसादेन महनीयकार्यभरं सम्पादयन्तो भूयो भूयो विलसन्त्विति भगवन्तं प्रति मदीयाऽभ्यर्थना -

दिनांक : 15-8-06

* * *

प्रो. डॉ. नागेन्द्र पाण्डेयजी
अध्यक्षश्री, ज्योतिष विज्ञान समिति ।
एस-23/1, डी. ढेलवरिया, चौकाघाट, वाराणसी-1

उत्तम विश्लेषणात्मक यह **श्रीसूक्त-दीपक** साधकों का साधनापथ प्रकाशित करके लेखक को अमर यश प्रदान करेगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। सधन्यवाद-

दूरभाष : (0542) 2210935; 2207605

वे.शा.सं.पं. **श्री भागवतऋषिजी**

कृष्णधाम (सोला), अहमदाबाद–380 060 (भारत) ।

दूरध्वनि : 27473839, Fax : 27438100, E-mail : bhagvatr@yahoo.com

प्रतिश्री,
याज्ञिकशिरोमणयः श्रीमन्तः हरनारायणशास्त्रिचरणाः,
सादरं वन्दनानि मे भवत्पादसरोजे सन्तु ।

भवता प्रकाशितं श्रीसूक्तदीपकाख्यं ग्रन्थपुष्पमिदम् अनुशीलयतः मे मनः प्रसीदति । भवतामियं सरस्वतीसमाराधना चिरकालपर्यन्तं समाजोत्कर्षाय, सर्वोन्नतिप्राप्तये, सर्वकल्याणाय च भवेदिति हार्दिकं मनोरथं भगवान् श्रीरसराजप्रभुः पूरयेदिति भगवत्पादकमलेषु प्रार्थये । तत्र **श्रीसूक्तदीपके** तावद् तत्रभवद्भिः प्रामाणिकसन्दर्भग्रन्थाः यथाप्रदर्शिताः । पाठभेदोल्लेखपूर्वकं प्रत्येकशब्दविवेचनम् आह्निकसूत्रावलि–याज्ञवल्क्यस्मृति–महीधरभाष्यादिशास्त्रग्रन्थैः प्रमाणीकृतं, तत्खलु अभूतपूर्वमिवाभाति । अर्थकरणे रुचिरा शैली मनो हरति जिज्ञासूनामनुष्ठातृणाम् इत्यहो अद्भुतसौरभप्रसारकं ग्रन्थपुष्पमिदमिति दृढं मन्ये । भवतामसौ सरस्वतीसेवाप्रकल्पः विश्वकल्याणाय निरन्तरं प्रचलेदिति भव्यभावनां प्रभुपादकमलेषु संस्थाप्य पुनरपि भवतामभिवादनं कुर्वाणः विरमामि ।

रसराजचरणसरोजकिङ्करस्य
भागवतऋषेः
हरिस्मरणानि

* * *

वे.शा.सं. पण्डितप्रवर **श्री विश्वेश्वरशास्त्रीजी**
वे.शा.सं. पण्डितप्रवर **श्री गणेश्वरशास्त्रीजी**

प्रा.सांगवेद–विद्यालय, काशी ।

पण्डितप्रवराणां श्रीमद्धरिनारायणपण्ड्यामहोदयानां सकलवैदिकविचार–विपाकभूतः **श्रीसूक्तदीपकाख्योऽयं** ग्रन्थः सम्यग्व्यलोकि, यत्र प्रणवादिक्रमेणोपासनाततिभिः साकमेव श्रीसूक्तव्याख्योपव्याख्याप्रभृतयो विशेषतो व्याकृताः सन्ति । नूनमेतद्–ग्रन्थरत्नं विपश्चिद्वृन्दोपकारि भविष्यतीति मम समाश्वासः । पण्डित–प्रकाण्डान् श्रीपण्ड्यामहोदयान् प्रति भूयसी भगवतो मङ्गलकामना–

दिनांक 26-6-06 **पं. विश्वेश्वरशास्त्री**
काशी । **पं. गणेश्वरशास्त्री**

श्री द्वारकाधीश संस्कृत एकेडेमी एण्ड H.H.J.S. शारदापीठाधीश्वर
श्रीअभिनवसच्चिदानन्दतीर्थ
स्वामिजीमहाराज इन्डोलोजीकल रिसर्च इन्स्टिट्यूट के डायरेक्टर
महामहोपाध्याय **डॉ. श्री जयप्रकाशनारायण** द्विवेदीजी, द्वारका ।

शास्त्रों में ज्ञान का उपयोग दो प्रकार से प्रतिपादित है । प्रथम उपयोग कर्मानुष्ठान में और द्वितीय उपयोग आत्मा के संस्कार में होता है । विपरीत ज्ञान, भ्रम, संशय के द्वारा कर्मानुष्ठान प्रभावित होता है, अत: विपश्चिद्गण यथार्थ-ज्ञान की ओर ही अनुधावन करते हैं । श्रीतत्त्व की प्रतिपादित अशेष विधा का अनुशीलन करनेवाले गुर्जर-प्रान्त के वैभवरूप डॉ. पं. हरनारायणभाई उ. पण्डया महोदय ने '**श्रीसूक्त दीपक**' का निर्माण करके तत्त्वजिज्ञासुओं का बहुत उपकार किया है। आप अनन्त-श्रीविभूषित-ज्योतिःशारदोभयपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामि-श्रीस्वरूपानन्द-सरस्वतीजी-महाराजश्री से भी सम्पृक्त हैं। आपकी नैसर्गिकी प्रतिभा निर्मल है । वेदों में अतिगुप्त रहस्यों का विश्लेपण ऋषियों ने अपने स्मरण-ग्रन्थों में किया है । इन सारे आर्ष ग्रन्थों का गहन अनुशीलन करके डॉ. श्री पण्ड्या महोदयने 'श्रीसूक्त दीपक' में श्रीतत्त्व को निश्चय ही दीपित किया है ।

उनके अभ्युदय तथा निःश्रेयस के लिए मैं श्री द्वारिकाधीश से मंगल कामना करता हूँ। इन की उदात्त कृति 'श्रीसूक्त दीपक' लोककल्याण के साथ साथ इनके धवल यश का चतुर्दिक् प्रसार करेगी । इसी आशा के साथ -

दिनांक : 30-8-06
दूरभाष : 234208;
निवास : 234525
Mo. : 94269 08331

जयप्रकाश नारायण द्विवेदी
निदेशक, श्री द्वारिकाधीश संस्कृत अकादमी
द्वारका । (361-335)

पदवाक्यप्रमाणज्ञ विद्यावाचस्पति महामहोपाध्याय
पं. श्री वायुनन्दन-पाण्डेयजी
वाराणसी ।

निगमागमशास्त्रेषु निष्णाताः, पण्डितप्रवराः डॉ. हरनारायणभाई उ. पण्ड्यामहोदया '**श्रीसूक्तस्य**' सांगोपांगोपासनाविधेर्दीप इव प्रकाशनाद् 'दीपकम्' इति अन्वर्थं '**श्रीसूक्त-दीपकम्**' इति ग्रन्थं निर्माय श्रीसूक्तोपासकानां श्री - विद्योपासकानां, किंबहुना शाक्तोपासनारतानां च महोपकारं कृतवन्तोऽतस्ते धन्यधन्याः सम्मान्याः सन्तीत्यत्र नास्ति संशीतिलेशः।

कापि उपासना सांगोपांगैव विधेया, अत एव सा झटिति फलदा भवति, व्यंगोपासना दुर्बलाऽऽशुफलप्रदाने क्षमा न भवति । अपि च 'ज्ञात्वा कर्म समाचरेत्' इति सम्पाद्य कर्मणो ज्ञानमपि नितरामावश्यकम् । तदेतद्विषय - कानवद्यविद्याविद्योतितान्तःकरणैरदूष्यवैदुष्यविशिष्टैरेभिर्विरचितं 'दीपकं' स्फुटं लोकोपकृतये सम्पद्यते, यतोऽत्र सर्वमपि विधेयं सविधि निर्दिष्टम् ।

'देवो भूत्वा देवं यजेत' इति स्मृतेः, आसनशुद्धि-भूतशुद्धि-करन्यासांगन्यासैः पवित्रितान्तःकरणैः कृतं साधनं झटिति फलवद् भवतीत्येतत् सर्वं सुविचार्याचार्यवरैः प्रज्ज्वालितं (दीपमेव) दीपकमिदं सिद्धिसोपानपर्वणां प्रकाशकं भवति-इति दृढं विश्वसिमि ।

तथाहि भूमिकाभागे यंत्रविधानं, प्रयोगविधिः, न्यासविधिः, मानसपूजा, आवरणदेवतापूजनं, षाड्गुण्यं, व्यूहचतुष्टयं, त्रिविधा सृष्टिः, शक्तिमतो नारायणस्य व्यूहरूपं, विश्वरूपं, सशक्तिकस्यावतारः, षडध्वा, षट्कोशादयश्चेति सम्यग् निरूपितम् । रंग-यम-जिह्वामूलीयोपध्मानीयानामुच्चारणविधयोऽतीव सरलतयोपपादिताः, तत्र परा-पश्यन्ती- मध्यमा-वैखर्यादीनां प्रतिपादनम्; ॐकार-ह्रींकारादीनामनुष्ठानविधयः; श्रीविद्यार्णवतंत्रोक्त-प्रयोगाणां सम्यगुपपादनं च हृदयहारिपद्धत्या कृतं विद्वज्जनमनो रञ्जयति । अनन्तरं परशुराम-कल्पसूत्रमनुसृत्योपासकानामवस्था, श्रीसूक्तस्य व्याख्या, अनन्तरपठनीयस्य सूक्तद्वयस्य प्रकाशनं भवतामन्वेषणसामर्थ्यं, प्रतिपादनशैलीं, रुचिरां प्रतिभां च प्रकाशयति । एतदर्थ-रचनाकला-कौशल-विशेषमाधातुं विश्वेशं वन्दमानः प्रार्थये "शिवं विदधातु सदाशिवस्ते" इति शम् —

वाराणसी । वायुनन्दनपाण्डेयः
दि. 20-8-06 वाराणसेयः

डो. राजनाथ त्रिपाठीजी

उपाचार्य, आगम । सांख्ययोगतंत्रागम-विभाग;
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 002

प्रा. डो. पं. हरनारायणभाई उ. पण्ड्या महोदय के द्वारा लिखित '**श्रीसूक्त-दीपक**' ग्रन्थ का मैंने सम्यक् निरीक्षण किया है । विद्वान् लेखक ने प्रकृत ग्रन्थ में भूरि-श्रम किया है । निगम के साथ साथ आगम ग्रन्थों के अनुसन्धान का साक्षात्प्रभाव इस ग्रन्थ में परिलक्षित हुआ है । यह ग्रन्थ अधिकारी उपासकों, तत्त्वजिज्ञासुओं के लिए अतीव उपकारी होगा, इसमें किसी भी प्रकार का सन्देहलेश नहीं है । निश्चय ही इससे लेखक महोदय की कीर्तिपताका अक्षुण्ण रूप से समुल्लसित रहेगी । श्रीसाम्बसदाशिव इन्हें चिरायु रखें । एतदर्थ डो. पण्ड्याजी को भूयः साधुवाद -

राजनाथ त्रिपाठी
संगठनमन्त्री,
श्रीकाशीविद्वत्परिषद,
वाराणसी
दि. 20/8/2006

दूरभाष : (0542)2202762

* * *

पं. डो. वाचस्पति पी. मिश्रजी

प्राचार्य, श्रीस्वामिनारायण-संस्कृत-महाविद्यालय,
जेतलपुर, अहमदाबाद-382724

मान्यमान्याः, अहर्निश-त्रिपुरसुन्दरी-चरणचञ्चरीकाः, विद्यावदातचेताः, महामहिमवन्तो, विद्वद्वरेण्याः, श्रीशास्त्रिपादाः । नैका नतिततयः सन्तु । कुशलं समीहे भावत्कन्तत् ।

भावत्कम्भगवत्याः पराम्बायाः संशोधनात्मकं श्रीसूक्तव्याख्यानं प्रपठ्य स्मारंस्मारञ्च मे मनः मोमुद्यते । अतीव भावपूर्णं सारस्वतं, कोष-व्याकरण-पुराण-तंत्र-वेदादिनिगूढतत्त्वात्मकं भावत्कं व्याख्यानमद्यतनीयानां पण्डितानां कृतेऽतीव साधनीयं भविष्यति । ये च स्वल्पज्ञाः सन्ति, तेषां कृतेऽपि गूढार्थ-रहस्योद्घाटने इदं (व्याख्यानं) साहाय्यकारीति स्फुटं प्रतिभाति । तत् (पुस्तकं) श्रियः कृपया सर्वेषां कल्याणकारि भवतु इति श्रीमातुश्चरणयोः प्रार्थनया सह-

निवासे दूरभाष : (079) 22169438
श्रीस्वामिनारायणमन्दिर, कालुपुर, अहमदाबाद-1
(मो) 98253 47969

पं. डॉ. नरेन्द्रकुमार पण्डयाजी
प्रधानाचार्यः, श्रीवरतन्तुसंस्कृतमहाविद्यालयः
भागवत-विद्यापीठ, (सोला), अहमदाबाद-380 060

प्रतिश्री,

श्रुतिस्मृतिपरिशीलनपरायणान्तःकरणाः प्रणम्यचरणाः श्रीहरनारायणशास्त्रिचरणाः।

सादरं प्रणतिततयो विलसन्तुतराम्। भवता सम्पादितं सङ्कलितं समीक्षितं प्रकाशयिष्यमाणं श्रीसूक्तदीपकाख्यं ग्रन्थं दर्शं दर्शं हृदयमस्मदीयमतितरां मोदमावहति। श्रिया सरस्वत्या च बाह्याभ्यन्तरसुखसम्पत्तिः सम्प्राप्यते। दैवीसम्पदा शश्वत्सुखाय मोदाय श्रेयसे कल्पत इत्यत्र नाऽस्ति सन्देहसम्भावना। भवत्प्रकाशितं **श्रीसूक्तदीपकं** ग्रन्थं दीपमिव समादाय दारिद्र्यादिदोषान्धकारमपाकर्तुं सर्वः शक्ष्यते भगवत्कृपयेति श्रद्दधे। भवतामयम् अप्रतिमः सारस्वतः पुरुषार्थः सर्वेषां सर्वविधां श्रियं सम्पादयेदिति हृदि भगवन्तं करुणावरुणालयं श्रीनाथप्रभुं भावयन्नभिनन्दाम्यभिवादयामि।

भावत्कः
न. मा. पण्डया

दिनांक : 7-10-06
दूरध्वनि : (079) 27458753; Mo.: 98985 40403

* * *

प्रा. डॉ. पं. सदानन्द शुक्लजी, उपाचार्य, ज्योतिष विभाग,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

विद्वद्वरेण्य आचार्यप्रवर, ज्ञानमहिमामण्डित, वेदपुरुष के रूप में अविरल ज्ञानगङ्गा में अवगाहित, विश्वविश्रुत विद्वान् प्रो. डॉ. हरनारायणभाई पण्ड्याजी ने लक्ष्मीसाधना विषयक '**श्रीसूक्तदीपक**' महाग्रन्थ में जो चिन्तनपूर्ण विचार, तथा निगूढ तत्त्वों के सारगर्भित भावों का स्थलविशेष में ग्रन्थिभेदन करते हुए जो महत्त्वपूर्ण चिन्तन एवं उद्‌गार उपस्थित किये हैं, वे बहुत ही उत्कृष्ट एवं साधकोपयोगी हैं। यह महाग्रन्थ 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' की भावना से ओतप्रोत है।

मैं विश्वाराध्य श्रीविश्वनाथ भगवान एवं पराम्बा श्री अन्नपूर्णामाता से प्रार्थना करता हूँ कि, डॉ. हरिनारायणजी को दीर्घायुष्य प्रदान करते हुए लेखन की दिशा में विशिष्ट गति प्राप्त हो, जिससे इस प्रकार के चिन्तनपूर्ण ग्रन्थों को नई दिशा प्राप्त होती रहे। हार्दिक शुभकामनाओं सहित

दिनांक : 11-8-06
निवास : 2207605, (मो) 94501 82501

सदानन्द शुक्ल

श्री. पं. प्रद्युम्नभाई ब. शास्त्रीजी

साहित्याचार्य, वेदान्ताचार्य, भागवतप्रवक्ता, गोल्डमेडलिस्ट ।

"श्रीसूक्तदीपक" अभिवन्दनम्

निगमागम-मन्त्र-वेदान्त-शास्त्र-सर्वतन्त्रस्वतन्त्रै र्विद्वन्मतल्लजैः श्री हरिनारायणशास्त्रिवर्यैः मनोहारिण्या सरण्या श्रीसूक्तविषयकानेकटीकेत्यादिकं-भाष्यव्याख्यायावत्प्राप्यसाहित्यादिकं च समालोच्य पाठभेदादिमतमतान्तरभेदानां निरूपणमवगाहनपूर्णं रहस्यनिरूपणं विधाय, सर्वजनसुबोधाय महता प्रयासेन सम्पादितः **श्रीसूक्तदीपका**भिधोऽयं ग्रन्थः विशदभूमिकाविभूषितः श्रीसूक्तानुष्ठान-पराणां चिन्तकानां विदुषामुपकाराय भविष्यतीति निवेदयतः मोमोत्ति मे चेतः ।

श्रीभगवत्पदारविन्दयोर्विनिवेदयामि, एतादृशाश्चानेके ग्रन्थाः शास्त्रिवराः प्रकाशयेयुरिति नमामि विरमामि च श्रैमत्कः -

प्रद्युम्नशास्त्री

नरसिंहजी पोल, मांडवी रोड, वडोदरा-1;
दूरध्वनि : (0265) 2427895
श्रीमद्भागवतकथा प्रसंगे अधिहरिद्वार, ।

दिनांक : 4-6-06

* * *

पण्डितप्रवर धनशंकरजी गौ. राज्यवैद्यश्री,

आयुर्वेदाचार्य (प्राप्तस्वर्णपदक), आयु. भिषक्, वैद्यमणि, वैद्यालंकार, वेदान्त (शुद्धाद्वैत) विशारद (लब्धरजतपदक) । अमदावाद-1

स्वधर्मपरायणाः वे. शा. सं. स्वनामधन्याः श्रीयुताः प्रा. डो. श्री - हरनारायणजीमहाभागाः ! राजनगरतः (कर्णावती- महानगरतः) धनशंकरस्य सविनयाः सस्नेहिकाः नमस्कृतयः जयश्रीकृष्णाश्च । 'श्रीसूक्त'नामाभिध-वेदादिनवनीत-स्वरूप-संशोधनात्मक-ग्रंथोऽवलोकनार्थं प्राप्तः। अभ्यासात्मक-निरीक्षणेनात्यानन्दः सुसम्प्राप्तः । '**श्रीसूक्तदीपक**'-ग्रन्थः महाश्रमेण प्रकाश-बाहुल्येन विद्वत्समाजे वैदिक-कर्मसु च देदीप्यमानो नितरां भविष्यत्येवेति श्रद्धासमन्वितः प्रभुचरणेषु प्रार्थयामि ।

भवदीय,

पण्डित धनशंकर गौरी-शंकरजी राज्यवैद्यस्य प्रणतयः जयश्रीकृष्णा.

दूरभाष : 22148258
भारद्वाज औषधालय,
बाला हनुमान, अहमदाबाद ।

राष्ट्रपति सम्मानित **प्रा. डॉ. गौतमभाई वा. पटेल**

[स्थापक प्रमुखश्री संस्कृत सेवा समिति । पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत साहित्य अकादमी, -(गुजरात राज्य); संस्कृतयुनि. रचना समिति- गुज.-राज्य; एवं अखिल भारतीय सं. अकादमी महासम्मेलन-नई दिल्ली । सभ्यश्री, आसाम राष्ट्रीय सं. संस्थान- नई दिल्ही; राष्ट्रपति प्रतिनिधि एवं विझीटर्स नोमिनी -आसाम युनि.; कार्यपरिषद, श्री लालबहादुर शास्त्री सं. विद्यापीठ-नई दिल्ली; प्लानिंग कमिटी, सांदीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान-उज्जैन; कार्यकारिणी समिति मुम्बादेवी सं. पाठशाला; भारतीय विद्याभवन-मुंबई । 300 से अधिक लेख एवं 70 से अधिक शोधपत्र के लेखक ।]

आदरणीय पण्डया साहब,

श्रीसूक्त-दीपक देखने के सत्प्रसंग को मैं अपना सद्भाग्य समझता हूँ। यह विद्या ग्रन्थगम्य नहीं है, अपितु गुरुगम्य है । इस ग्रन्थ को देखने पर प्रतीत होता है कि, किसी दिव्य परंपरा द्वारा यह रहस्य आपको प्राप्त हुआ है । विशिष्ट संप्रदाय में दीक्षित ही ऐसे रहस्य समझ सकता है । 'यमेवैष वृणुते' सिद्धान्त आप में चरितार्थ हुआ देखकर मेरा मस्तक सभक्ति प्रणतिविनम्र होता है। आपश्री वरणप्राप्त विशिष्ट विभूति हैं । नारायण-नारायणी के विविध स्वरूप, ॐकार, ह्रींकार और न्यास आदि की प्रमाणभूत विचारणा आपकी पारगामी एवं तलस्पर्शी विद्वत्ता की परिचायक है ।

यह ग्रन्थ हिन्दी में होने से समग्र भारत के साधनारसिक जिज्ञासुओं को नया प्रकाश देकर अद्वितीय पथ-प्रदर्शन करेगा ही, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। यदि आपश्री गुजराती में भाषांतर करेंगे, तो गुजरात के जिज्ञासु साधक अधिक संख्या में लाभान्वित हो सकेंगे ।

ऐसे बहुजन-हिताय निष्कामकर्म आप करते रहें; ईश्वर आपका सर्वांगीण विकास करे; ऐसी मा भगवती से प्रार्थना और यह ग्रन्थ स्वयं दीपक बनकर आपश्री को संस्कृति-दीपक भी बनाए ऐसी मेरी शुभकामनाएँ -

L-111, स्वतंत्र्य सेनानी नगर, नवावाडज,
अहमदाबाद-380 013
(079) 27621610; (मो.) 99250 11901

राष्ट्रपति सम्मानित **प्रा. डॉ. नारायण म. कंसारा**

डिरेक्टर, अक्षरधाम सेन्टर फोर एप्लाइड रिसर्च इन सोश्यल हार्मनी, गांधीनगर।

प्रा. डॉ. हरनारायण पण्ड्या विरचित **'श्रीसूक्त दीपक'** एक अपूर्व एवं अद्‌भुत गन्थ है। श्रीविद्यान्तर्गत श्रीसूक्त का इन्होंने आमूलचूल अवगाहन करके श्रीविद्या के साधकों के लिए एक अनूठे ग्रन्थ का प्रणयन किया है। साधना, मन्त्र और सिद्धि, ये प्रत्यक्ष प्रवृत्ति के विषय हैं, जिनमें बिना गुरु के प्रवेश पाना एवं इष्टसिद्धि को प्राप्त करना असंभव है। गुरु द्वारा मन्त्र कर्णोपकर्ण संक्रान्त होकर ही शक्ति-जागरण-रूप में प्रकट होता है। तथापि साधक के लिए साधना-मार्ग का बौद्धिक ज्ञान होना परम आवश्यक है, जिसके अभाव में साधक लडखड़ा सकता है और श्रद्धा भी दुर्बल होने लगती है। ऐसी परिस्थिति से बचने के लिए यह ग्रन्थ बहुत ही सहायभूत हो सकता है। प्रा. डॉ. पण्डया ने इस ग्रन्थ की रचना करके श्रीविद्या के साधकों पर अभूतपूर्व उपकार किया है।

17/176, विद्यानगर फ्लेट्स,
हिम्मतलाल पार्क के समीप,
आंबावाड़ी, अहमदाबाद-380 015
दूरभाष : (079) 26740587

नारायण कंसारा
२८/०६/२००६

* * *

वेदपुरुष श्री पं गजाननशास्त्री गोडशे, वाराणसी

गुजरात में गांधीनगर मण्डलान्तर्गत कलोल-निवासी पं. विद्वद्वरेण्य प्रा. डॉ. हरनारायणभाई उ. पण्ड्या के द्वारा **'श्रीसूक्त दीपक'** नाम की पुस्तक प्रकाशित हो रही है, जो यहाँ के सभी याज्ञिक विद्वानों के लिए अत्यधिक उपयोगी होगी। अनेकानेक निगमागम ग्रंथों की शास्त्रसंमत जानकारी से पूर्ण आप्लावित यह ग्रन्थ सर्वोत्तम है। मेरा व उनका दस वर्षों का सान्निध्य है, मैं इस अवधिकाल में उनसे अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ। भगवान् भूतभावन श्रीकाशीविश्वनाथ से मेरी प्रार्थना है कि उन्हें दीर्घायु प्राप्त हो।

वाराणसी।

गजाननशास्त्री गोडशे
दि. १३।८।२००६

डॉ. पं. घनश्यामभाई प्रा. गोर,
209, वेलकम प्लाजा, वैशाली सिनेमा समीपे, नडियाद, (जि. खेडा)।

विद्वद्वरेण्यैः प्राच्यपाश्चात्योभयविद्यापारंगतैः निगमागमादिशास्त्रतत्त्वदर्शिभिर्गुर्जर-प्रदेशान्तर्गत-कल्लोल-निवासिभिः प्रा. डॉ. हरनारायणशास्त्रिभिः विरचितोऽयं श्रीसूक्त-दीपकाभिधो महाग्रन्थः साद्यन्तोऽवलोकितो मया। ग्रन्थेऽस्मिन् विषयप्रतिपादने लेखकस्य सूक्ष्मेक्षिकाया अद्वितीयबुद्धिप्रतिभायाश्च दर्शनं बोभूयते। ग्रन्थोऽयं श्रीविद्योपासकानां कृते उपासनार्णवे दीपस्तम्भ इव प्रतिभाति।

उपासना-पद्धतिषु निर्दिष्टाः काश्चन मोक्षदाः काश्चन भोगदाश्च दरिदृश्यन्ते। किन्तु उपसनेयं भोगमोक्षोभयदा चास्ति, अतः इयं विलक्षणोपासना। ग्रन्थेऽस्मिन्निर्दिष्टा विविधाः प्रयोगाः सामान्यजनानां कृतेऽपि प्रकृष्टोपकारकाः प्रथप्रदर्शकाश्च भविष्यन्त्येवेत्यत्र नास्ति संशीतिलेशः। परमभट्टारिकाया महात्रिपुरसुन्दर्या भगवत्याः परमानुग्रहेण तत्रभवद्भिः पण्डितप्रवरैर्विविधा इदृग्विधाः महाग्रन्था विरच्येरन्निति भगवन्तं सम्प्रार्थयति -

दूरभाष : (0268) 2559357 भावत्कः
(मो) 94274 94285 डॉ. घनश्यामराय प्रा. गोर

* * *

श्री विपुलकुमार शास्त्री
प्राध्यापकः, वरतन्तु-संस्कृत-महाविद्यालयः;
भागवत-विद्यापीठ, सोला, अहमदाबाद, (गुजरात)।

पूज्येषु श्री हरनारायणशास्त्रिचरणेषु विलसन्तु मे प्रणामाः। भारतीय-संस्कृति-परम्परायां सनातन-धर्म-व्यवस्थायां देवीमाहात्म्यं समधिकं विद्योतते। यथाप्रयोजनं मानवः ईश्वरं भजते। भगवत्स्मरणं पुष्टिकारकम्। दिव्यानुपमं श्रीसूक्तं महालक्ष्मी-सामीप्य-सायुज्यकारकं दुःखदारिद्र्यहरञ्च। समाजसेवा-परायणैः, पूज्यतम-ऋषिकल्पैः, निरन्तरं संशोधनरतैः तत्रभवद्भिः कृतनवीनप्रयासैः रचितः **श्रीसूक्त-दीपकः** श्रीविद्योपासकानां कृते पथप्रदर्शकः प्रकाशप्रदश्च। पूज्यवरैः आधुनिकर्षिभिः तत्रभवद्भिः उत्तरे वयसि ग्रथितः मंत्रतन्त्रात्मकोऽयं ग्रन्थः ज्ञानमयः प्रदीपः भविष्यत्येवेति नास्ति शंकालेशः। ईदृग्विधानि भगीरथकार्याणि भगवदाशिषा सम्पादयन्तु भवन्त इति प्रार्थयति - भवतां वशंवदः -

Mo : 98791-60719
दि. 26-6-06
विपुलकुमार शास्त्री

श्रीसूक्त-दीपक

श्रीसूक्त-दीपक

卐 श्रीसूक्तम् 卐

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥1॥

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥2॥

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥3॥

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥4॥

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्र पद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥5॥

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥6॥

उपैतु मां दैवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतो सुराष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥7॥

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥8॥

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥9॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥10॥

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सं भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥11॥

आर्प: स्रजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥12॥

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥13॥

आर्द्रां यःकरिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥14॥

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ॥15॥

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पंचदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥16॥

स्वरचिह्न – (अ) यहाँ दिये गए स्वरचिह्न संस्कार-भास्कर (पृ.179-80) अनुसार हैं। (आ) जिन जगहों में संस्कार भा. के पाठ नहीं लिये गए हैं, वहाँ के पदों के स्वर (क) श्री.वि. अनुसारी दिये हैं, उन पदों की सूचि - (2) मनपगामिनीम् ; (3) अश्वपूर्वां; देवी जुषताम्; (5) पद्मिनीमीं; वृणे; (7) मृद्धिं; (8) पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं; (11) सं भव; (12) नि च; (13) और (14) दोनों पूरी ऋचाएँ; (15) मनपगामिनीम्; प्रभूतं (16) 'सूक्तं' पाठ खिलसूक्तानुसारी है, इसके अलावा यह पूरी ऋचा और उन के स्वर श्री.वि. के अनुसारी हैं। (ख) (10) (रूप-) **'मन्नस्य'** पद के स्वर मा.वा. सं.-39-4 अनुसारी है।

[**वसु.** – अमुक जगहों पर स्वरचिह्न शंकास्पद हैं, इस लिए पूरे श्रीसूक्त के स्वरों की पुनर्विचारणा के लिए एक स्वतंत्र शोधपत्र आवश्यक है।]

पाठभेद – यह श्रीसूक्त प्रायः विद्यारण्यभाष्यानुसारी है। यहाँ के जो पाठ विद्यारण्य. से अलग पडते हैं, उनकी सूचि –

विद्यारण्य. के पाठ – (1) म आ वह; (3) प्रबोधिनीम्; (5) प्रपद्येलक्ष्मीर्मे; (7) पादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रे; (16) श्रियः ('सूक्तं' की जगह)।

[**वसु.** – श्री.वि. गत विद्यारण्यभाष्य और खिलसूक्तगत विद्यारण्यभाष्य में काफी भिन्नता है। हमने खिलसूक्तगत विद्या. भाष्य का उपयोग किया है।]

यंत्रम्

(1) पूज्याद्यशंकराचार्यजीरचितप्रपंचसारतंत्रे –

जापं मंत्री प्रयजतु रमां प्राक्तनप्रोक्तपीठे ॥ पद्मा सपद्मवर्णा पद्मस्थार्द्रा च तर्पयन्त्यभिधा। तृप्ता ज्वलन्त्यभिख्या स्वर्णप्राकारसंज्ञका चेति ॥ मध्ये दिशामधिपाङ्गावृत्त्योरेतास्ततश्च वज्रादीन् । प्रयजेच्चतुरावरणं निगदितमिति सूक्तकल्पितं विधानम् इति - 12=43 से 45. पृ. 165-66 ॥

अथ रमापीठम् [यंत्रम्] – रुचिराष्टपत्रमथ वारिरुहं गुणवृत्तराशिचतुरस्त्र-युतम्। प्रविधाय पीठमपि तत्र यजेन्नवशक्तिभिः सह रमाञ्च ततः ॥ विभूति....ऋद्धिश्च रमायाः नव शक्तयः ॥ - [12-7; 8; पृ.161]

(2) श्रीविद्यार्णवतंत्रे [श्वास 22, पृ. 120-21; 132] –

(क) अष्टपत्रं लिखेत् पद्मं बहिर्भूबिम्बमालिखेत्। मध्ये बीजं विनिक्षिप्य नवशक्तीः समर्चयेदिति दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्॥ (ख) अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वं कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम्। चतुर्द्वारसमायुक्तं चतुरस्त्रत्रयावृतमिति सारसंग्रहे ॥ (ग) चतुर्द्वारयुक्तचतुरस्त्रत्रयावृतम् अष्टदलद्वयम् अर्चापीठमिति विद्यारण्ययतिः - [पृ. 120-21] । तत्रैव (घ) श्रीसूक्तप्रयोगे - यजेद्देवीं पुरा प्रोक्ते पीठे आवाह्य मंत्रवित्। यजेदंगानि पद्माद्या लोकपालाः सहेतयः इति सारसंग्रहे । यंत्रम् - चतुर्द्वारयुतं चतुरस्त्रत्रयावृतम् अष्टदलकमलं पूजाचक्रं निर्माय इति विद्यारण्ययतिः - [श्रीविद्या.; पृ. 132]।

(3) शारदातिलके राघवः – (क) पुरोदितेन विधिना श्रीपीठे पूजयेच्छ्रियम्। (ख) तत आवरणार्चायां केसरेष्वंगपूजनम् ॥ पद्मा च..... एताः पत्रेषु संयजेत् ॥ लोकेशान् आयुधैः सार्धमेवं पूजा समीरिता इति-शा.पृ. 245 (ग) यंत्रम् - अष्टपत्रं महापद्मं कर्णिका-केसरैर्युतम्। श्रीबीजं नामसंयुक्तं कर्णिकायां समालिखेत् इति तंत्रान्तरे - [शा.पृ. 246]।

(4) श्रीसूक्तविधानोक्तलक्ष्मीसपर्यापद्धतौ – यंत्रम् - अष्टदलवृत्तत्रयैक-रेखात्मकभूगृहं, मध्ये बिन्दुम् इति यंत्रं प्रकल्पयेदिति - [श्री.वि.स; पृ.11]।

(5) सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषदि यंत्रम् – कर्णिकायां ससाध्यं श्रीबीजम् । वस्वादित्यकलापद्मेषु - अंगैः प्रथमावृत्तिः पद्मादिभिर्द्वितीया, लोकेशैस्तृतीया, तदायुधैस्तुरीयावृत्तिर्भवति इति - [श्री.वि; पृ. 21]।

(6) अस्मत्सम्मतयंत्रम् — कर्णिकाकेसरयुताष्टदल - वृत्तत्रय - चतु - र्द्वारयुक्तचतुरस्रत्रयात्मकम् । यंत्रेऽस्मिन् (क) विद्यारण्ययतिप्रोक्तयंत्राद् वृत्तत्रयमधिकम्, प्रपंचसारतंत्रे तदुक्तेः । चतुर्द्वारयुतचतुरस्रत्रयं सारसंग्रहेऽपि प्रोक्तम् । (ख) यद्यपि सारसंग्रहे अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वं रमापीठं प्रोक्तं, तथापि श्रीसूक्तार्चायां द्वितीयाष्टदलत्यागः श्रीविद्यारण्ययतिनापि कृत एव, आवरणपूजायां तदनुपयोगात्, प्रथमाष्टदलेष्वेव पद्मादीनामर्चास्थानाच्च । (ग) पूज्यगणपतिशंकरजीस्वीकृतमध्यबिन्दोः त्यागः कृतः, प्रपंचसारादिषु तदनुक्तेः ।

[**वसु.** — यद्यपि लक्ष्मीतंत्रे लक्ष्मीसपर्यार्थं सामान्ययंत्रं सकर्णिकाकेसराष्टपत्रयुक्त-चतुर्द्वारमण्डपात्मकं प्रोक्तं - (लक्ष्मी. 55=8 तः 10, पृ. 673), तथापि प्रपंचसारादिषु प्रोक्तं श्रीसूक्तयंत्रमेव स्वीकारार्हं, तेषु ग्रंथेषु विशिष्ट-यंत्रोक्तेः ।]

अथ प्रयोगः

निम्नलिखित पद्धति से न्यास, ध्यान, पूजा करके श्रीसूक्त-जप और तर्पण करें ।

[**वसु.** — (स्त्रियों और यज्ञोपवीतरहित पुरुषों को ॐ बोलने का अधिकार नहीं होने से वे ॐ का उपयोग न करें ।) दोनों अनामिका में दर्भपवित्र मूलमंत्र से धारण करके, मूल मंत्र से शिखा बाँध कर आचमन करे - **[3=ऐं ह्रीं श्रीं]**
[मूलमंत्र = जिस मंत्र का अनुष्ठान या जप करना है, उसे मूलमंत्र कहते है। यहाँ अर्चन में प्रथम अथवा अन्तिम ऋचा से काम चल सकता है ।]

ऐं ह्रीं श्रीं,	ऐं	आत्मतत्त्वं	शोधयामि	स्वाहा	।
3 ,	ह्रीं	विद्यातत्त्वं	"	"	।
3 ,	श्रीं	शिवतत्त्वं	"	"	।
3 ,	क्लीं	सर्वतत्त्वं	"	"	।

हस्तं प्रक्षाल्य, त्रिः प्राणानायम्य, गणेशादीन् प्रणम्य संकल्पयेत् —

संकल्पः — अत्राद्य.........सनारायणलक्ष्मीप्रीतये श्रीसूक्तजपं करिष्ये ।

न्यासाः — ॐ श्रीमिति त्रिः करशुद्धिं कृत्वा, हिरण्यवर्णादिषड्भिः नाममंत्रैः करादि-हृदयादीन् कुर्यात् - (देखो - पृ. 173-74) । ततः -

विनियोगः — (ॐ) श्रीं हिरण्यवर्णामित्यादिपंचदशर्चस्य सूक्तस्य आद्यायाः श्रीर्मुनिः, चतुर्दशानां ऋचां आनन्दः, कर्दमः, चिक्लीतः, इन्दिरासुतश्चेति चत्वारो ऋषयः, श्रीरग्निश्च देवते, आद्याः तिस्रः अनुष्टुभः, चतुर्थी बृहती, पंचमीषष्ठ्यौ

त्रिष्टुभौ, ततोऽष्टौ अनुष्टुभः, अन्त्या प्रस्तारपंक्तिः [आ. शंकरा. 12=36 से 39], प्रथमा ऋचा बीजम् - [राघवः शा. 8=157, पृ. 245]; कांसोस्मीति ऋचा शक्तिः [पद्मा. पृ.165; राघव.]; कीर्तिमृद्धिं ददातु मे इति कीलकं [पृथ्वी.]; सनारायणलक्ष्मीप्रीतये जपे (पूजायां/होमे/तर्पणे) विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः - [2 = ॐ ह्रीं]

ॐ ह्रीं , लक्ष्मी-आनन्द-कर्दम-चिक्लीत-इन्दिरासुतेभ्यः ऋषिभ्यो नमः, - शिरसि ।
2 , अनुष्टुब् - बृहती - त्रिष्टुब् - अनुष्टुप् - प्रस्तारपंक्तिभ्यः छंदोभ्यो नमः, - मुखे ।
2 , श्री-विभावसुभ्यां देवताभ्यां नमः, - हृदि ।
2 , 'हिरण्यवर्णां ..... आवह' इति बीजाय नमः, - गुह्ये ।
2 , 'कां सोस्मितां..... श्रियम्' इति शक्तये नमः,-पादयोः । [हस्तं प्रक्षाल्य]
2 , 'कीर्तिमृद्धिं ददातु मे' इति कीलकाय नमः, - नाभौ ।
2 , सनारायणलक्ष्मीप्रीत्यर्थ-विनियोगाय नमः, - सर्वांगे ।

मंत्रन्यासः - [प्रत्येक न्यास में पूरी ऋचा का पाठ करें ।] [3 = ॐ ह्रीं श्रीं]

(1)	ॐ ह्रीं श्रीं	,	हिरण्यवर्णां.	नमः	शिरसि (मूर्ध्नि)
(2)	3	,	तां म आवह.	"	नेत्रयोः
(3)	3	,	अश्वपूर्वां.	"	कर्णयोः
(4)	3	,	कां सोस्मितां.	"	नासिकायां
(5)	3	,	चन्द्रां प्रभासां.	"	मुखे
(6)	3	,	आदित्यवर्णे.	"	ग्रीवायाम्
(7)	3	,	उपैतु मां.	"	बाह्वोः
(8)	3	,	क्षुत्पिपासा.	"	हृदि
(9)	3	,	गन्धद्वारां.	"	नाभौ
(10)	3	,	मनसः.	"	गुह्ये
(11)	3	,	कर्दमेन.	"	गुदे
(12)	3	,	आपः स्रजन्तु.	"	ऊर्वोः
(13)	3	,	आर्द्रां.	"	जान्वोः
(14)	3	,	आर्द्रां.	"	जंघयोः
(15)	3	,	तां म आवह.	"	पादयोः -प्रपंच.; 12=40
(16)	3	,	यः शुचिः.	"	सर्वांगे - विद्या.श्री.वि.पृ.20

करन्यास करके हृदयादिन्यास करें - [3 = ॐ ह्रीं श्रीं]

ॐ ह्रीं श्रीं, श्रां हिरणमय्यै नमः, अंगुष्ठाभ्यां नमः। हृदयाय नमः ।

3	, श्रीं चन्द्रायै	"	तर्जनीभ्यां	नमः। शिरसे स्वाहा	।
3	, श्रूं रजतस्रजायै	"	मध्यमाभ्यां	नमः। शिखायै वषट्	।
3	, श्रैं हिरण्यस्रजायै	"	अनामिकाभ्यां	नमः। कवचाय हुम्	।
3	, श्रौं हिरण्यायै	"	कनिष्ठिकाभ्यां	नमः। नेत्रत्रयाय वौषट्	।
3	, श्रः हिरण्यवर्णायै	"	करतलकरपृष्ठाभ्यां	नमः। अस्त्राय फट्	।

[**वसु.** – हिरण्मय्यादिनामानि शांकरसम्मतानि - आ. शंकरा. 12-41]

अथ ध्यानम् –

अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुंजवर्णा करकमलधृतेष्टाभीतियुग्मांबुजा च ।
मणिमुकुटविचित्रालंकृताऽऽकल्पजातैर्भवतु भुवनमाता सन्ततं श्रीः श्रिये वः ॥
- [आ. शंकरा. 12-42, पृ.165] ।

मानसपूजा – बाह्यपूजा में जितने उपचार प्रदान करने हैं, उतने से भी अधिक उपचारों से मानसपूजा करके, मानस होम करें, जैसे कि ॐ ह्रीं श्रीं [मूलमंत्रान्ते] पुण्यं जुहोमि स्वाहा । इसी तरह.... पापं. । कृत्यं. । अकृत्यं. । संकल्पं. । विकल्पं. । [**वसु.** – इस तरह अपनी सभी निर्बलताओं को जला दें । यदि सद्भाग्य से एकाग्रता द्वारा तन्मयता आ गई, तो यह विधि आन्तर मन में पहुँच जाएगी, फलस्वरूप साधक में परिवर्तन निश्चित रूप से आ जाएगा । अनुभव ऐसा है कि, किसी एक निर्बलता की दस या अधिक बार आहुतियाँ दें । जब तक निर्बलता दूर न हो जाए, तब तक उसी को ही जलाता रहें ।] पूर्णाहुति - ॐ ह्रीं श्रीं [मूलमंत्र...] धर्मअधर्मात्मकं सकलं प्रपंचं पूर्णाहुतित्वेन जुहोमि स्वाहा। [इस पूजा का लाभ बाह्यपूजा से अधिक होने से अवश्य करें ।]

बाह्यपूजा – पुष्पान्त पूजा के बाद आवरण-पूजा की परंपरा है ।

आवरण देवता –

प्रथमावरणम् – [कर्णिकायाम्] श्रां हृदयाय नमः । श्रीं शिरसे स्वाहा । श्रूं शिखायै वषट् नमः । श्रैं कवचाय हुं नमः । श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् नमः । श्रः अस्त्राय फट् नमः । [कोणेषु, पुरतः, दिक्षुच] - श्रीविद्या. पृ.140 । [**वसु.** – यहां 'श्रां हिरण्मय्यै नमः हृदयाय नमः' पद्धति प्रशस्य है ।]

द्वितीयावरणम् – (क) [अष्टदलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन] [सर्वत्र प्रणवः ह्रीं वा] पद्मायै नमः । [एवं सर्वत्र] पद्मवर्णायै. । पद्मस्थायै. । आर्द्रायै. । तर्पयन्त्यै. । तृप्तायै. । ज्वलन्त्यै. । स्वर्णप्राकारायै - [प्रपंच.; 12=44] ।

(ख) [दलाग्रेषु]–[सर्वत्र प्रणवः ह्रीं वा] ब्राह्म्यै नमः। माहेश्वर्यै.। कौमार्यै.। वैष्णव्यै.। वाराह्यै.। इन्द्राण्यै.। चामुण्डायै.। महालक्ष्म्यै.। –श्रीविद्या.] [एताः देवताः आ. शंकरा. न सन्ति। तन्मते तृतीयावरणे इन्द्रादयः, चतुर्थावरणे वज्रादयः। प्रयजेच्चतुरावरणं...प्रपंच. - 12-44, 45]।

तृतीयावरणम् — [भूपुरे] [प्रसिद्ध पूर्वादिषु अथवा स्वाग्रादि प्रादक्षिण्येन इति द्वौ विकल्पौ] लं इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय, सपरिवाराय, सशक्तिकाय नमः। [एवं सर्वत्र] रं अग्नये.। टं यमाय.। क्षं निर्ऋतये.। वं वरुणाय.। यं वायवे.। सं कुबेराय.। हौं ईशानाय.। आं ब्रह्मणे.। ह्रीं अनन्ताय.। [–श्रीविद्या.][राघवमते लं रं मं क्षं वं यं शं हं नं कं इति अर्थात् नं अनन्ताय., कं ब्रह्मणे. इति क्रमः। अत्र प्रसिद्धा एव पूर्वादयः इति - शा. पृ.163]।

चतुर्थावरणम् — [भूपुराद् बहिः] वं वज्राय नमः। शं शक्तये.। दं दण्डाय.। खं खड्गाय.। आं पाशाय.। क्रों अंकुशाय । गं गदायै.। शूं शूलाय.। पं पद्माय.। चं चक्राय. - [श्रीविद्या. श्वास 22, पृ. 140]।

[वसु. — (क) ब्राह्मी आदि का स्वीकार केवल विद्यारण्ययतिजीने ही किया है- (श्रीविद्या.पृ.140); अन्य चारों ग्रंथो में (ब्राह्मी आदि 8 देवता ओं के सिवा) अन्य आवरण-देवता समान हैं - प्रपंच. पृ.166; सारसंग्रह- (श्रीविद्या. पृ.132); सौभाग्यलक्ष्मी- (श्री. वि. पृ.21); पू.गणपतिशंकर गुरुजी - (श्री. वि.स. पृ.12-13)। (ख) आवरणपूजा — जैसे कि (१) हृदयादि में ॐ ह्रीं श्रीं, श्रां हृदयाय नमः, हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः और (२) शेष आवरणों में, जैसे ॐ ह्रीं श्रीं पद्मायै नमः पद्माश्रीपादुकां पू. त. नमः। (ग) श्री रामेशवरजीने केवल 'पूजयामि' का ही स्वीकार किया है - परशु.रामे. 4=8; पृ.145 ।]

[वसु. — (क) पीठदेवता प्रसिद्ध हैं। (ख) **अथ पीठ शक्तयः** — विभूत्यै नमः । उन्नत्यै. । कान्त्यै. । सृष्ट्यै. । कीर्त्यै.। सन्नत्यै. । व्युष्ट्यै. । उत्कृष्ट्यै. । (मध्ये) ऋद्ध्यै. । - प्रपंच. 12=8; ॥ **पाठान्तराणि** - शारदायां [8-8] सन्नतेरनन्तरं पुष्टिः ॥ दक्षिणामूर्तिसंहितायां कान्तेरनन्तरं हृष्टिः । - श्रीविद्या.-पृ. 120 ॥ ऋग्वेदीय-सौभाग्य. कीर्तेरनन्तरं स्थितिर्नितिः ॥ श्रीं सर्वशक्ति-कमलासनाय नमः इति राघवः - (शा. पृ. 232)। (ग) विशेष अर्चन करना अधिक फलप्रद है - (देखो लक्ष्मीपूजा - पृ. 174-83)।]

भूमिका

लक्ष्मीतंत्र में निरूपित नारायण और नारायणी

अखण्ड ब्रह्म – ब्रह्म एक, अखण्ड, सर्वथा शान्त, निर्विकार, सनातन, अनन्त, आलम्बनरहित, षाड्गुण्यपूर्ण, चिद्घन, उदयअस्तरहित एवं देश-काल आदि से अपरिच्छिन्न है। उसमें स्थित शक्ति अभी स्तिमित रूप में है, [अलग नहीं हुई है,] इस अर्थ में उसे अद्वैत-ब्रह्म कहते हैं - [2-8 से 12]। वह अनिर्देश्य, अनाकुल, तरंगरहित, शून्य, शुद्ध एवं अध्वों से परे हैं - [8-4 से 8, पृ. 83]। वह निराकार, निर्गुण, अखण्ड, अजर, अमर, स्तिमितभवद्भावात्मक, आदि-अंतरहित एवं ग्राह्य-ग्राहकभावरहित है - [22-3 से 6]। इस ब्रह्म को परमात्मा, सनातन या भगवान् कहते हैं और इसकी भगवत्ता [या अहंता] नारायणी है, जो सूक्ष्म, पर, निरंजना, अध्वातीता एवं निर्विकल्पा है - [7-3 से 4, पृ. 72-73 और 21-1; पृ. 208]।

षाड्गुण्य – ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज के समूह को षाड्गुण्य कहते हैं - [4-13, पृ. 39]। ये छः गुण परमेश्वर के हैं, जिनको कला भी कहते हैं। [कला ज्ञानादयः प्रोक्ताः षड्गुणाः पारमेश्वराः - [21-7, पृ. 209]। इन छः गुणों में ऐश्वर्य, शक्ति आदि पाँच गुण उस ज्ञान के धर्म हैं। नारायण और नारायणी स्वयं ज्ञानरूप हैं - [2-26, पृ. 20]। यह षाड्गुण्य नारायणी की दश हजारवीं कला है, जिसमें शुद्ध एवं अशुद्ध मार्ग विद्यमान हैं - [2-36, 37; पृ. 22]।

ज्ञान – ज्ञान प्रकाशक है।

ऐश्वर्य – उदित हो रही नारायणी का जो अव्याहति धर्म है, उसे ऐश्वर्य कहते हैं, जिसका दूसरा नाम इच्छा है।

शक्ति – जगत् का जो प्रकृतिभाव है, उसे शक्ति कहते हैं।

बल – सर्जन प्रक्रिया में परिश्रम का जो अभाव है, उसे बल कहते हैं। शक्ति के अंश द्वारा कार्य की जो भरणक्रिया है, उसे भी बल कहा गया है।

वीर्य – नारायणी प्रकृति-स्वरूपा होने पर भी जगत में उसकी जो अविकारता है, उसे वीर्य कहते हैं। ऐश्वर्य के अंशभूत पराक्रम भी वीर्य है।

तेज — सभी कार्यों की निष्पत्ति के प्रसंग में किसी भी अन्य सहकारी कारण की अपेक्षा नहीं रखना, उसे तेज कहते हैं। कोई तत्त्वज्ञ विद्वान अन्य को पराभूत करने के सामर्थ्य को तेज मानते हैं। जबकि कोई तत्त्वज्ञ विद्वान तेज को ऐश्वर्य से संबंधित मानते हैं - [2-24 से 35, पृ. 20-22] ।

ये ज्ञानादि छः गुण प्रायः दो दो के युग्म में रहते हैं, जैसेकि संकर्षण में ज्ञान एवं बल स्थित हैं, प्रद्युम्न में ऐश्वर्य एवं वीर्य और अनिरुद्ध में शक्ति एवं तेज स्थित हैं - [2-53; 54; पृ. 26-27; और 4-13 से 16, पृ. 39] ।

[**वसु.** — ज्ञान [संकर्षण], ऐश्वर्य [प्रद्युम्न], शक्ति [अनिरुद्ध] के साथ अनुक्रम से बल, वीर्य और तेज संयुक्त होते हैं, इस अर्थ में उपर्युक्त छः गुणों का क्रम युक्तिसंगत है। इन गुणों में ज्ञान, ऐश्वर्य और शक्ति का प्राधान्य प्रतीत होता है। परन्तु वासुदेव के वर्णन में ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज ऐसा क्रम दिया गया है, जिसकी संगति विद्वद्गण खोजें - [4-13, पृ.39, और 7-5, पृ.73] । श्रीयंत्रसार में षडंगन्यास में निर्दिष्ट ''ज्ञानैश्वर्ये शक्तिबले वीर्यं तेजश्च षट् क्रमात्''- [उद्धृत-श्रीविद्या.पृ. 124] । यह क्रम सुसंगत है।]

चतुर्व्यूह — वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के समूह को चतुर्व्यूह या चातुरात्म्य कहते हैं - [7-7, 8; पृ. 73] ।

त्रिविधा सृष्टि — सृष्टि के तीन प्रकार हैं - (क) भवदुत्तरा (ख) भावोत्तरा और (ग) भवद्भावोत्तरा ।

(क) भवदुत्तरा — देवकार्यवशात् नारायण जब अकेले ही अवतरित होते हैं, तब उस भाव की भाविनीरूपा नारायणी वहाँ स्थित रहती हैं ।

(ख) भावोत्तरा — देवहितार्थ नारायणी जब अकेली ही अवतरित होती है, तब उस अहंतारूपा नारायणी में अहंपद-वाच्य नारायण व्यक्त रहते हैं ।

(ग) भवद्भावोत्तरा — देवकार्यवशात् नारायण और नारायाणी दोनों समान रूप से अवतरित होते हैं, तब भवदात्मक नारायण में भावात्मिका नारायणी और भावात्मिका नारायणी में भवदात्मक नारायण स्थित रहते हैं - [8-12 से 15; पृ. 84] । [अवतीर्णौ यदा तुल्यं देवकार्यचिकीर्षया । अन्योन्ययोः स्थितावावां भवद्भावात्मकौ द्वयोः- 8-15] ॥

ब्रह्म के विभाग –

भवद्भावात्मक ब्रह्म – भवत् और भाव की व्यवस्था के लिए अखंड ब्रह्म के दो विभाग बनते हैं - [22-7,8; पृ. 216-17] । उसमें भवद्ब्रह्म स्वयं वासुदेव नारायण है, जो स्वयं शक्तिमान है और अहंपद वाच्य है, जबकि भावब्रह्म स्वयं वासुदेवत्वमयी नारायणी है, जो शक्ति है और अहंतापद वाच्या है । इस सनातनी नारायणी को शान्ति नाम दिया है । यह भवद्भावात्मक ब्रह्म दिव्य है और अध्वों से परे हैं - [7-6, 7; पृ. 73 और 8-8; पृ. 83] ।

भवदुत्तर और भावोत्तर – नारायण से संबंधित विविध प्रकारों को भवदुत्तर कहते हैं - [10-2 से 4, पृ. 102] । जबकि नारायणी से संबंधित विविध प्रकारों को भावोत्तर कहते हैं - [8-12 से 14, पृ. 84 और अध्याय 2 से 9] ।



नारायण

षाड्गुण्यपूर्ण, निर्मल, दिव्य एवं अध्वों से परे भवद्भावात्मक (अखण्ड) ब्रह्म के शक्तिमान और शक्ति के रूप में दो भेद बनते हैं - [8-8, पृ. 83 और 10-6, पृ. 103] । ये दोनों [शक्तिमान और शक्ति] जगत के हित के लिए अनेक विकारों वाले बनते हैं ।

शक्तिमान नारायण के रूप

शक्तिमान नारायण अपनी शक्ति का आश्रय लेकर तीन रूपों में उदित होते हैं- (क) पररूप (ख) व्यूहरूप और (ग) विभवरूप- [10-6 से 11, पृ. 103]।

(क) शक्तिमान का पररूप – शक्तिमान नारायण का पर रूप अनुपम एवं अनिर्देश्य है । इस में छः गुण तुल्य रूप से विद्यमान रहते हैं । वह हजारों पूर्णचन्द्र समान कान्तिमान है । इस द्विभुज नारायण के एक हाथ में रेखामय चक्र है और दूसरे हाथ में शंख है । इस [नारायण] की शक्ति परा वैष्णवी है । ये दोनों तुर्यपद में स्थित रहते हैं - [10-12 से 17, पृ. 103-4] ।

(ख) शक्तिमान का व्यूहरूप – शक्तिमान नारायण का द्वितीयरूप चतुर्व्यूहात्मक है । पद [अध्वा] चार हैं - तुर्य, सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत ।

तुर्यपद में नारायण का पर-रूप स्थित है, जबकि स्वप्न आदि तीन पदों (अध्वों) में चतुर्व्यूह रूप स्थित है। सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत पदों के आधार से चतुर्व्यूह की तीन कक्षाएँ बनती हैं । इन तीनों कक्षाओं में वासुदेवादि चातुरात्म्य स्थित है, केवल वासुदेवादि के स्वरूपों में एवं फल में भिन्नता है ।

प्रथम कक्षा (सौषुप्त अध्वा) — सौषुप्त अध्वा-रूप प्रथम (उत्तम) कक्षा में वासुदेवमूर्ति पूर्व में, संकर्षण दक्षिण में, प्रद्युम्न पश्चिम में और अनिरुद्ध उत्तर में रहते हैं। वासुदेव में तुल्यषाड्गुण्य है, जबकि संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध में ज्ञान, बल आदि गुण युग्म युग्म संख्या में रहते हैं । यह पद सर्व क्रियाओं का बीज है - [10-18 से 21; पृ. 104-5] ।

द्वितीय कक्षा (स्वप्न अध्वा) — इस स्वप्नपद में पूर्ववत् वासुदेव आदि चार मूर्तियाँ पूर्व आदि चार दिशाओं में क्रम से रहती हैं। यह पद कैवल्य (मोक्ष) और भोग दोनों देता है । यह अध्वा संसार बीज का नाशक भी है [10-22 से 24] ।

तृतीय कक्षा (जाग्रत अध्वा) — इस जाग्रत पद [निम्न कक्षा] में भी वासुदेव आदि चार मूर्तियाँ पूर्व आदि चार दिशाओं में रहती हैं, जो उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के सभी उपकरणों से युक्त हैं और विश्व की शासक हैं - [10-25, 26, पृ. 106; और 10-40; 41, पृ. 108] । तुर्यपद में चातुरात्म्य अव्यक्त एवं गुणलक्ष्य है, जबकि सुषुप्ति आदि तीन पदों में चातुरात्म्य व्यक्त रूप से रहता है - [10-42, पृ. 108 और 11-10, पृ. 110] ।

वासुदेव आदि चार मूर्तियों का स्वरूप — वासुदेव आदि चारों मूर्तियाँ चतुर्भुज हैं, वनमालाधारी हैं, श्रीवत्स-लांछित हैं और कौस्तुभमणि से शोभित हैं। इन चारों मूर्तियों के आयुध, वर्ण, ध्वज, वस्त्र आदि में भिन्नता है - [10-25 से 42] ।

(ग) शक्तिमान का विभवरूप — जब विभव देवों का उदयकाल आता है, तब विशाखयूप स्वयं, वासुदेवादि चतुर्व्यूह के सिवा ही विभव देवों का भावन करता है । विशाखयूप के विभिन्न कार्यों के संपादन के लिए पद्मनाभ आदि अडतीस देव और धी, तारा आदि अडतीस देवियों की स्फुरणा होती है । इन देवताओं में प्रत्येक देवता का कार्य अलग अलग रहता है - [11-17 से 26,

पृ. 112-13 और 20-37 से 48, पृ. 205-6]। इन देवों में पद्मनाभ [देव] शुद्ध अध्वा और अशुद्ध अध्वा के मध्य में रहता है, जबकि ध्रुव आदि 37 देवगण विश्वमंदिर में रहते हैं - [11-27] ।

नारायण के पर रूप से लेकर व्यूह, व्यूहान्तर एवं विभव देवों तक के देवताओं के देह शुद्ध षाड्गुण्य पूर्ण हैं । इनके अस्त्र, भूषण, शक्तियाँ आदि सभी उपकरण भी षाड्गुण्य-निर्मित हैं । इन देवताओं को जो जो इष्ट होता हैं, उसके लिए शुद्ध संवित्मयी नारायणी स्वयं वैसा वैसा रूप धरती रहती है । नारायण के बिना नारायणी नहीं है और नारायणी के बिना नारायण की स्थिति नहीं है - [11-27 से 38, पृ. 113-15] ।

विशाखयूप

नारायण के तुर्यपद से लेकर सुषुप्ति एवं स्वप्नपद तक और स्वप्नपद से जाग्रत पद तक यह तैजस विशाखयूप पूजित होता है । यह [विशाखयूप] तेजो-राशि है, मूर्तिरहित एवं अव्यक्त है । इस यूप के तुर्य, सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत ऐसे चार पद हैं । प्रत्येक पद में वासुदेव आदि चतुर्व्यूह देवों का प्रादुर्भाव होता है । यह [विशाखयूप] अपने को वासुदेव आदि चार भागों में विभक्त करता है । ये [वासुदेव आदि चार] देव इस यूप की चार शाखाएँ हैं । इसके बाद यह यूप वासुदेव आदि के बिना ही बिभव देव-देवियों का भावन करता हैं । [अर्थात् - विभवदेवताओं का संबंध विशाखयूप से हैं, वासुदेवादि से नहीं।] एक व्यूह से अन्य व्यूह की उत्पत्ति में और तुर्य आदि चार पदों में एक पद से अन्य पद की उत्पत्ति में जो अन्तर रहता है, विशाखयूप उस अन्तरस्थ समग्र प्रदेश को अपने तेज से भर देता है - [11-11 से 18, पृ. 110-12] ।

व्यूहान्तर देव-देवियाँ — पूर्वोक्त वासुदेव आदि चार शाखाओं में प्रत्येक शाखा से केशव आदि तीन-तीन देव और श्री आदि तीन-तीन शक्तियाँ-रूप प्रति-शाखाएँ उत्पन्न होती हैं । इस तरह बारह देवों और बारह देवियों को व्यूहान्तर देव-देवियाँ कहते हैं - [11-30, 31, पृ. 114] । वासुदेव की शक्ति लक्ष्मी है ; संकर्षण की कीर्ति है, प्रद्युम्न की जया है और अनिरुद्ध की माया है । केशव आदि बारह देवों की शक्तियाँ क्रमशः श्री से महिमा तक की बारह देवियाँ

हैं, जिनका वर्णन वर्णाध्वा (चरमरीति-पृ. 31) में किया गया है - [20-33 से 48, पृ. 205-6] ।

[**वसु.** – (1) विमर्शिनी में सात्वत संहिता के आधार से ऐसी स्पष्टता की गई है, कि यह विशाखयूप अप्राकृत दिव्य लोक में ज्योतिर्मय स्तंभ के आकार का है, जो भगवान् का एक विशेष रूप है । इस स्तंभ के चार पर्व हैं, जो नीचे से उपर तक क्रमशः अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण और वासुदेव से अधिष्ठित हैं। प्रत्येक पर्व में वासुदेव आदि चार देवता रहते हैं । इन चार पर्वों के शंख, चक्र आदि चिह्न नीचे से उपर तक क्रमशः स्पष्टतर, स्पष्ट, किंचित्-स्पष्ट और अस्पष्ट हैं । अर्थात् अनिरुद्ध संबंधित शंखादि स्पष्टतर है, जबकि वासुदेव संबंधित चिह्न अस्पष्ट हैं, क्योंकि ये चिह्न सूक्ष्मतम हैं - [11-12] ।
(2) लक्ष्मीतंत्र में वासुदेव आदि चार व्यूह के पश्चात् विभव देवताओं का वर्णन है - [11-13 से 29] और उसके बाद व्यूहान्तर का वर्णन किया गया है - [11-30, 31] । इस वर्णन के आधार से ऐसा अनुमान कर सकते हैं, कि व्यूहान्तर देवों की कक्षा विभव देवों के नीचे की है । विद्वद्गण इसका निर्णय करें ।]

विभवान्तर तत्त्व – जगत्स्वामी भगवान् जिन जिन देव, ऋषि, पितृ, सिद्ध और नर आदि में प्रविष्ट होकर जगत का हित करते हैं, उनको विभवान्तर कहते हैं - [4-30, 31; पृ. 42] । [**वसु.** – (1) विभवान्तर तत्त्वों की कक्षा विभव देवताओं से नीचे की है । विशाखयूप विभव देवताओं का भावन करता है । परंतु विशाखयूप में ये देवता और विभवान्तर देव आदि तत्त्व किस जगह पर स्थित रहते हैं, उसकी स्पष्टता वहाँ नहीं की गई है । (2) विभवान्तर देवताओं की कक्षा व्यूहान्तर देवताओं से नीचे की है ।]

नारायण के अवतार

नारायण के अनेक अवतार हैं - जैसे कि –

(अ) नारायणी के साथ नारायण के अवतार –

(1) अनिरुद्ध अवतार – अनिरुद्ध की उत्पत्ति महाविद्या (सरस्वती) से हुई है। वीर्य एवं ऐश्वर्य में विवर्तित सरस्वती का उन्मेष अनिरुद्ध है - [6-11; पृ. 65-66] ॥ इस अवतार में महालक्ष्मी-नारायणी कमला नाम से उनके साथ

रही है । ये दोनों पद्मनाभ अवतार में स्वयम्भू (अयोनिज) प्रकट हुए हैं और जगत के मातापिता माने गए हैं – [8-16, से 18; पृ. 85] ।

(2) शक्तीश नारायण – इस अवतार के बहुत भेद हैं, जैसे कि – द्विभुज, चतुर्भुज, षड्भुज, अष्टभुज, द्वादशबाहु, चतुर्दशबाहु, षोडशहस्त, अठारहहस्त आदि । [**वसु.** – यज्ञमंडप के 8, 10, 12, 14, 16, 18 हस्तप्रमाण के जो विकल्प हैं, इन का संबंध यहाँ प्रतीत होता है ।] इन सभी अवतारों में नारायणी स्वयं, अपने के एक, दो, चार, छः, आठ, बारह आदि भेद बनाकर उस नारायण के साथ रहती है जैसे **एक भेद** – द्विभुजशक्तीश नारायण के अंक में **श्री** नामधारी नारायणी रहती है । **दो भेद** – इस नारायण के दोनों तरफ श्री और पुष्टि नारायणी हैं । **चार भेद** – इस नारायण की (पूर्वादि) चार दिशाओं में (क्रम से) श्री, कीर्ति, जया और माया नारायणी हैं । **छः भेद** – षट्कोण में नारायणी के छः रूप हैं, जिनके नाम क्रम से शुद्धि, निरंजना, नित्या, ज्ञानशक्ति, अपराजिता और पराप्रकृति हैं । **आठ भेद** – उस नारायण की आठ दिशाओं में (पूर्वादि क्रम से) लक्ष्मी, सरस्वती, सर्वकामदा, प्रीतिवर्धनी, यशस्करी, शान्तिदा, तुष्टि और पुष्टि । [**वसु.** – भाषान्तरकार ने पुष्टि की जगह अष्टमी ऐसा नाम बताया है, जो नितान्त गलत है ।] **बारह भेद** - बारह कोणों में नारायणी के बारह रूप हैं, जिनके नाम (पूर्वादि क्रम से) श्री, कामेश्वरी, कान्ति, क्रिया, शक्ति, विभूति, इच्छा, प्रीति, रति, माया, धी और महिमा हैं । इस तरह द्विभुजशक्तीश नारायण के साथ नारायणी के तैतीस रूप हैं ।

चतुर्भुजशक्तीश नारायण – इस नारायण के साथ नारायणी अपने छः रूप बनाकर रहती है ।

इसी तरह षट्भुज, अष्टभुज, द्वादशबाहु, चतुर्दशबाहु, षोडशहस्त और अठारहबाहु नारायण के साथ नारायणी अपने को अनेक भेदों में विभक्त करके रहती है - [8-19 से 29; पृ. 85-87] ।

(3) सिन्धुशायी नारायण – सिन्धुशायी नारायण की चार दिशाओं में नारायणी अपने चार रूप धारण करके रहती है, जिनके नाम (पूर्वादि क्रम से) लक्ष्मी, निद्रा, प्रीति और विद्या हैं ।

(4) श्रीपति नारायण – इस नारायण की बाईं ओर श्रीनामधारी नारायणी रहती है ।

(5) पारिजातजित् नारायण — इस अवतार में नारायणी उनके कंधे पर अपना (दाहिना) हाथ रखकर उनके वाम अंक में बैठी है।

(6) मीनधर नारायण — इस मीन [मत्स्य] अवतार में नारायणी स्वयं नौका का रूप धारण करके उस नारायण के पीछे पीछे भ्रमण करती है।

(7) त्रिविक्रम विष्णु — नारायण के इस श्रेष्ठ अवतार में उनके पैर से गंगा के रूप में नारायणी प्रकट होती है।

(8) अनन्तशयनहरि — इस अवतार में नारायणी स्वयं लक्ष्मी, चिन्ता, निद्रा और पुष्टि नाम की चार शक्तियों के रूप में अपने को विभक्त करके उस नारायण की [पूर्वादि] चार दिशाओं में स्थित रहती है। इस तरह ब्रह्माण्ड के मध्य में नारायण के साथ साथ नारायणी भी अवतरित होती है।

[आ] नारायण और नारायणी के पृथक् पृथक् अवतार

जब ब्रह्माण्ड के मध्य में नारायण के पृथक् पृथक् रूप से अवतार होते हैं, तब नारायणी भी पृथक् पृथक् रूप धारण करके अवतरित होती है। जैसे कि —

(9) वराह नारायण — जब वेदों में प्रसिद्ध वराह नारायण अवतरित होते हैं, तब नारायणी भू नाम धारण करके अलग से अवतरित होकर, उसके बाद नारायण का अनुसरण करती है।

(10) धर्म नारायण — जब विष्णु का धर्म नाम का पुरातन अवतार होता है, तब नारायणी भी भार्गवी [भृगुवंशोत्पन्ना] श्री का नाम धारण करके [पृथक्] अवतरित होती है।

(11) दत्तात्रेय नारायण — जब अत्रिपुत्र दत्तात्रेय अवतरित हुए, तब नारायणी सरोवर से प्रकट हुई।

(12) वामन विष्णु — जब वामन अवतार हुआ, तब नारायणी अलग रूप में कमल से प्रकट हुई। इस लिए वह पद्मा के नाम से प्रसिद्ध हुई है।

(13) परशुराम विष्णु — जब भार्गव परशुराम के रूप में भगवान् विष्णु अवतरित हुए, तब नारायणी धरणी के रूप में स्वयंभू अवतरित हुई है।

(14) रामचन्द्र विष्णु — जब दशरथ के घर रामचंद्र का अवतार हुआ, तब जनक के यज्ञ प्रसंग में नारायणी स्वयं खेत में से सीता के रूप में [अलग से] प्रकट हुई ।

(15) बलभद्रादि चार अवतार — मथुरा में विष्णु का अवतार चार भागों में विभक्त हुआ - (1) बलभद्र (2) कृष्ण (3) प्रद्युम्न और (4) अनिरुद्ध । तब नारायणी ने भी अपने को चार रूपों में विभक्त किया (1) रेवती, (2) रुक्मिणी, (3) रति और (4) उषा । ये चार देवियाँ बलभद्रादि चार अवतारों के साथ उनकी शक्तियों के रूप में अनुक्रम से संयुक्त हुईं ।

(16) बुद्धावतार — बुद्ध, भगवान् विष्णु का मोहन अवतार था । उस अवतार में नारायणी तारा [या धारा] के नाम से उनकी शक्ति के रूप में उनसे संयुक्त हुई - [8-30 से 47] ।

[इ] केवल नारायण अवतार

(17) ध्रुव आदि विविध अवतार केवल वैष्णव अवतार हैं, उस उस अवतार में नारायणी स्वयं उस उस अवतार के शरीर के रूप में उन अवतारों की भोग्या बनती रहती है ।

[ई] भवद्-भावात्मक अवतार

(18) [समुद्रमंथन के अवसर पर अमृत के बँटवारे के प्रसंग में] अमृत को धारण करने के लिए भगवान् विष्णु ने मोहन अवतार लिया था । उस एक अवतार में भवद् और भाव तुल्य रूप में थे । इस लिए देवों ने उनको पुरुष रूप में देखा और दानवों ने उनको स्त्री के रूप में देखा - [8-47 से 49]।

[**वसु.** — इन अवतारों के मुख्यतः चार विभाग हैं - (क) सहसिद्ध अवतार — इन में नारायण और नारायणी साथ साथ अवतरित होते हैं - [देखो अ विभाग] । (ख) पृथक्सिद्ध अवतार — इन अवतारों में नारायण और नारायणी भिन्न स्थल एवं भिन्न काल में अवतरित होते हैं - [देखो आ विभाग]। [सहसिद्धं पृथक् सिद्धमित्येतज्जन्म मेऽद्‌भुतम् - 8-50]। [ग] केवल वैष्णव अवतार — इस प्रकार में नारायणी नारायण के शरीररूपा होती है । यहाँ अविनाभाव-संबंध है - [देखो इ विभाग] । (घ) तुल्य भवद्-भावात्मक

अवतार – एक ही शरीर में एक ही समय, एक ही स्थल में किसी को नारायण के और किसी को नारायणी के दर्शन हुए - [देखो ई विभाग] ।

इन अवतारों में नारायणी की विशेषताएँ – (1) नारायणी का प्राणीभिन्न देह – जैसे कि मीन अवतार में नारायणी नौकारूपा है । वराह अवतार में पृथ्वीरूपा और त्रिविक्रम अवतार में गंगा (जल) रूपा है । इन तीनों अवतारों में नारायणी का प्राणीदेह नहीं है । (2) अयोनिजा नारायणी – (अ) जनक-यज्ञ प्रसंग में नारायणी खेत से उत्पन्न हुई । (आ) पद्मनाभ अवतार में अनिरुद्ध-कमला अयोनिज उत्पन्न हुए । (3) एक नारायण, एक नारायणी – धर्म नारायण, दत्तात्रेय, वामन, परशुराम, रामचन्द्र आदि अवतारों में वे दोनों एक एक संख्या में हैं । (4) नारायण एक परंतु नारायणी एक से अधिक – द्विभुज शक्तीश नारायण एक है । इनके इर्दगीर्द नारायणी 33 संख्या में विभक्त हुई । (5) एक ही नारायण और नारायणी के चार चार रूप – दोनों चार चार रूप में विभक्त हुए - (क) बलभद्र, कृष्ण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध । (ख) रेवती, रुक्मिणी, रति और उषा ।]

नारायणी

षाड्गुण्यमयी नारायणी में जब सर्जन करने की इच्छा जगती है, तब उनकी दशहज़ारवीं कला उदित होती है, जिस कला में शुद्ध और अशुद्ध दोनों मार्ग रहते हैं - [2-36, 37, पृ. 22] ।

(अ) शुद्ध-मार्ग (अध्वा)

विशुद्ध मार्ग (अध्वा) रूपा नारायणी

जब ज्ञानमय नारायण-नारायणी की करोड़ों करोड़ों वीं सिसृक्षाकला उदित होती है, तब नारायणी विशुद्ध अध्वा के रूप में विवर्तित होती है । यह शुद्धमार्ग रत्नप्रभा की तरह चारों ओर स्फुरित होता है ।

शुद्धसृष्टि – (1) वासुदेव – जब स्वच्छ आकाश एवं शान्त समुद्र जैसे ज्ञानघन रूप से विशुद्ध सृष्टि होती है, तब उस समय शान्त समुद्र जैसा भगवती का जो आदिम रूप है, उसे वासुदेव कहते हैं, जिसमें ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य,

वीर्य और तेज समान प्रमाण से रहते हैं । (2) इसके बाद नारायणी के उस ज्ञानघन एवं षाड्गुण्यपूर्ण रूप से सर्वप्रथम व्यापार रहित, आनन्दमय, शुद्ध एवं सर्वात्मक परं ज्ञान अभिव्यक्त होता है, उसके साथ बल का भी उन्मेष होता है, इस ज्ञान-बल को संकर्षण कहते हैं । (3) विश्व के निर्माण में किसी भी अन्य हेतु की अपेक्षा से रहित नारायणी का जो स्वातंत्र्यपूर्ण ऐश्वर्य है और उसके साथ वीर्य का भी उन्मेष होता है; उन दोनों गुणों को प्रद्युम्न कहते हैं । (4) उस समय नारायणी की सर्वत्र समान भाववाली अव्याहता शक्ति थी, उसके साथ तेज का उन्मेष हुआ, उसको अनिरुद्ध कहते हैं - [4-3 से 17 और 2-49 से 57] ।

तीन देवों के कार्य – विज्ञान, ऐश्वर्य, शक्तिवाले ये तीन देव [संकर्षणादि तीन] संहार, स्थिति [पालन] और सर्जन करते हैं । संकर्षण संहार करते हैं, प्रद्युम्न पालन करते हैं और अनिरुद्ध सर्जन करते हैं । संकर्षण से शास्त्र प्रकाशित होते हैं । शास्त्र की क्रियाएँ प्रद्युम्न से संभवित होती है और उन क्रियाओं के फलों का निर्वाह अनिरुद्ध से होता है - [4-17 से 20] ।

[**वसु.** – लक्ष्मीतंत्र में 2=53 से 57 // 3=6 से 8 // 4=11;34 श्लोकों में उत्पत्ति आदि के कर्ता भिन्न बताए हैं ।] ये तीनों देव नारायणी के ही रूप हैं - [मम रूपममी देवाः - 4-11] ।

तीन देवों में गुण-भिन्नता होने पर भी अभेद स्थिति – संकर्षण आदि प्रत्येक देव में यद्यपि एक गुण का ही भले उन्मेष हो, तथापि अन्य पांच गुण भी तुल्य प्रमाण से रहते हैं, इस अर्थ में इन तीनों के बीच कोई भेद नहीं है । तीनों षाड्गुण्यपूर्ण हैं । भेद की कल्पना केवल कार्य की सिद्धि के लिए ही की गई है । इन देवों के अंग, प्रत्यंग आदि भौतिक नहीं हैं, दिव्य हैं - [4-21 से 25] । इस तरह नारायणी अपने को वासुदेव आदि चार विभाग में विभक्त करके सभी पदार्थों को आच्छादित करती है - [संविभज्यावतिष्ठेऽहं सर्वमावृत्य,- 4-26] । (क) केशव आदि व्यूहान्तर देव (ख) अनिरुद्ध का प्रसारभूत पद्मनाभ आदि विभवदेव और (ग) देव, नर, आदि विभवान्तर देव, ये सभी देवतागण शुद्धमार्ग है - [4-27 से 32] ।

नारायणी की शान्तादि अवस्थाएँ – नारायणी की तीन अवस्थाएँ हैं - शान्ता,

मध्यमा और उदिता । [4-2 से 31; पृ. 37-42] । [**वसु.** – आह विमर्शिनीकारः यत् शान्तावस्था परवासुदेवावस्था । उदितावस्था व्यूहावस्था । तत्रापि शान्तोदितावस्थः प्रथमव्यूहः । नित्योदितावस्था अन्ये त्रय इति विशेषः - [2-51, पृ. 26] ।

नारायणी की तुर्यादि अवस्थाएँ – वासुदेव तुर्यावस्था है । विज्ञान [संकर्षण] नारायणी की सुषुप्ति अवस्था है । ऐश्वर्य (प्रद्युम्न) स्वप्नावस्था है और शक्ति [अनिरुद्ध] जाग्रत् अवस्था है - [2-58; 49;] ।

षट्कोशा नारायणी

स्तिमितषाड्गुण्यपूर्ण चिदानन्द नारायण की [कोशातीता] आद्या अहंतारूपा नारायणी में जब सर्जन करने की इच्छा जगती है, तब वह षट्कोश में परिवर्तित होती है । शक्ति, माया, प्रसूति, प्रकृति, ब्रह्माण्ड और जीवदेह, इन छः के समूह को षट्कोश कहते हैं । कोश शब्द के दो पर्याय-वाचक शब्द हैं - घोंसला और शरीर । यहाँ शरीरपरक अर्थ अभिप्रेत है ।

(1) शक्तिकोश –

(क) वासुदेव और शान्ति – शक्तिकोश [की प्रारंभिक अवस्था] में ज्ञानादि छः गुणों का (समान रूप से) युगपत् उन्मेष होता है, उसे वासुदेव कहते हैं । इनकी अहंता को शान्ति (नारायणी) कहा है । यह प्रथम व्यूह है ।

(ख) संकर्षण और श्री – शक्तिकोश का जो प्रथम उन्मेष है, उसका अभिमानी देव संकर्षण है और उनकी अहंता **श्री** [नारायणी] है, जिसमें विज्ञान और बल है ।

(ग) प्रद्युम्न और सरस्वती – श्री का उन्मेष प्रद्युम्न है, जो संकर्षण की बुद्धि है, जिसमें भोक्ता एवं भोग्य की समष्टि लीन रहती है । प्रद्युम्न की अहंता सरस्वती है, जो वीर्य एवं ऐश्वर्य का विवर्त है ।

(घ) अनिरुद्ध – सरस्वती का उन्मेष अनिरुद्ध है, जो संकर्षण का अहंकार है । संकर्षण आदि तीनों देव शुद्ध एवं चिदात्मक हैं, प्राकृत नहीं है । वे आदि व्यूह वासुदेव के विभिन्न कार्यवशात् उस उस नाम से कहे गए हैं । ये देव सृष्टि की रचना करते हैं । इस तरह शक्तिकोश में स्वयं वासुदेव तीन रूप में

[तीन प्रकार के अहं के रूप में संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध] में स्थित हैं और बाकी के कोशों में विविध प्रकार के जीव स्थित हैं। यह (शक्तिकोश) शुद्ध मार्ग है - [6-1 से 17; 26]।

(2) मायाकोश — पूर्वोक्त अनिरुद्ध की अहंतारूपा रति नाम की महालक्ष्मी स्वयं मायाकोश है।

(3) प्रसूतिकोश — रति नाम की महालक्ष्मी का गुणसंज्ञक उन्मेष महाकाली और महासरस्वती है, जिसे प्रसूतिकोश कहते हैं।

(4) प्रकृतिकोश — उपर्युक्त [रति] महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती ने ब्रह्मा-कमला आदि तीन युगल देवताओं का सर्जन किया, इन को प्रधान भी कहते हैं। प्रधान में गुणों की साम्यता है। प्रस्तुत प्रधान को जलरूप बना कर नारायण उसमें शयन करते हैं। ब्रह्मा ने अपने में अण्ड उत्पन्न किया, उसे कोई दार्शनिक प्रकृति कहते हैं।

(5) ब्रह्माण्डकोश — महत् से लेकर पृथिवी तक के अण्ड को ब्रह्माण्ड कहते हैं। इस में ब्रह्मा विराट हुए।

(6) जीव-देहकोश — प्राणियों के जीव एवं देह इस कोश में अन्तर्भूत हैं। शक्तिकोशगत देवताएँ कर्मवशवर्ती नहीं हैं, अपितु स्वतंत्र हैं, जबकि अन्य पांच कोशगत जीव [देवों से लेकर स्थावर तक के जीव] अपने अपने कर्मों के अनुसार सरकते रहते हैं। जब शुभ कर्मों का परिपाक होता है, तब योग द्वारा पापों को नष्ट करके ज्ञान की वृद्धि करते करते अपने नीचे के कोश से क्रमशः उपर के कोशों में अपनी योग्यता अनुसार आरोहण करते रहते हैं। यदि किसी कारणवशात् उपर जाने की यात्रा रुक भी जाए, तो भी वे जीव जहाँ पहुँचे हैं, वहाँ ही रुक जाते हैं, परंतु नीचे की ओर अवरोहण नहीं करते - [6-18 से 32, पृ. 67-69]।

[**वसु.** — 'उत्तरोत्तर प्रगति ही होती है, अधोगति नहि,' लक्ष्मीतंत्र के इस मत का श्री अरविंद समर्थन करते हैं। परंतु ऐसा भी हो सकता है कि, सांसारिक कर्म करते करते संगदोषवशात् जीव यदि कुकर्मी बन जाए तो उसकी अधोगति हो सकती है। अस्तु]।

(आ) अशुद्ध मार्ग (अध्वा)

नारायणी की अशुद्ध सृष्टि –

शुद्ध मार्ग में ज्ञान, ऐश्वर्य एवं शक्तिरूप प्रथम उन्मेष में संकर्षण आदि शुद्ध सृष्टि है, जबकि उन्हीं ज्ञान, ऐश्वर्य एवं शक्ति के द्वितीय उन्मेष में क्रमशः सत्त्व आदि तीन गुण उन्मिषित होते हैं, जो अशुद्ध सृष्टि है - [4-32]; जैसे कि ज्ञान सत्त्वगुण को प्राप्त होता है, ऐश्वर्य रजोगुण को और शक्ति तमोगुण को प्राप्त होती है। इन तीन गुणों को त्रैगुण्य कहते हैं। जब रजोगुण का प्राधान्य हो और सत्त्व-तमस उसके आसपास रहते हो तब सर्जन होता है - [4-33, 34]। उसी तरह सत्त्वगुण की प्रधानता में पालन और तमोगुण की प्रधानता में संहार होता है। नारायणी स्वयं निर्गुणा होने पर भी वह इन तीन गुणों का आश्रय लेकर सृष्टि, स्थिति और संहार का चक्र चलाती है - [3-4 से 10, पृ. 30-31]।

शुद्ध और अशुद्ध मार्ग का संबंध – शुद्ध मार्ग ईश एवं रक्षक है, जिसमें ईश स्वयं नारायण है और ईशिता स्वयं नारायणी है। अशुद्ध मार्ग ईशितव्य एवं रक्ष्य है। इस तरह शुद्ध-अशुद्ध मार्ग के बीच ईश-ईशितव्यभाव संबंध और रक्षक-रक्ष्यभाव संबंध है - [3-14, 19; पृ. 32]। ईशितव्य में चित् और अचित् दो तत्त्व हैं। अहंता-ममतारूप अविद्या के कारण चित्शक्ति अपने को अचित् समझती है। जब विद्या के बल से वह अविद्या दूर हो जाती है, तब वह चित्- शक्ति स्वयं नारायणी के साथ सायुज्यभाव [सायुज्यमुक्ति] को प्राप्त होती है - [3-15 से 18]। शुद्ध चित्-शक्ति और त्रिगुणा चित्शक्ति ये दोनों नारायणी के स्वरूप हैं। वह नारायणी अविद्याग्रस्त जीवों के शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार सुख-दुःख मिश्रित सृष्टि की रचना करती है - [3-25, 27, 33]।

चतुर्भुजा महालक्ष्मी –

इस अशुद्ध मार्ग में नारायणी अपनी करोड़ों करोड़ों वीं कला से जगत् का सर्जन करती हैं। इस सर्जन के अवसर पर सब से पहले आद्या, त्रिगुणा, चतुर्भुजा महालक्ष्मी है, जो रजोरूप में स्थित होकर सृष्टि का सर्जन करती है - [4-35, 36]। [सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणाहं महेश्वरी और तप्तकांचनसन्निभा। मातुलिंगं गदां खेटं सुधापात्रं च बिभ्रती - [लक्ष्मी. 4-36; 38; पृ. 43]। ये

पंक्तियाँ दुर्गापाठ के प्राधानिक रहस्य के 4 से 6 श्लोकों के साथ साम्य रखती हैं ।]

महालक्ष्मी के विविध नाम – सर्वांग सुन्दरी चतुर्भुजा महालक्ष्मी माता के अनेक नाम हैं, जैसे कि –

(1) महालक्ष्मी – (क) महनीया (पूज्या) होने से महा और समग्र जगत् के पुण्यपाप कर्मों को लक्ष करती (देखती है), इसलिए लक्ष्मी [महनीयत्वात् महा, पुण्यापुण्यानि लक्षयति इति लक्ष्मी, महा (महती) चासौ लक्ष्मीश्च महालक्ष्मीः]

(2) महाश्री – महान् जीवों को आश्रय देनेवाली (महद्भिः श्रयणीयत्वात्)

(3) चण्डी – चण्ड (रुद्र) की पत्नी । [चण्डस्य (रुद्रस्य) दयिता इयं चण्डी]

(4) चण्डिका – क्रोधी । चण्डत्वात् (क्रोधात्) चण्डिका ।

(5) भद्रकाली – कल्याणी कालिका । [भद्रा चासौ काली च भद्रकाली । सतां कलनात् काली ।] वह एक ही समय में सज्जनों के लिए सद्विधि (उपकारक) है और दुष्टों के लिए असद्विधि (अपकारक) है ।

(6) माया – आश्चर्यकारक गुणों के कारण उसे माया कहते हैं ।

(7) महामाया – महानता के कारण महामाया । [महत्त्वात् महामाया] ।

(8) मोहिनी – मोहित करनेवाली । [मोहनात् मोहिनी] ।

(9) दुर्गा – दुर्गम होने के कारण दुर्गा – (दुर्गमत्वेन दुर्गा) । वह (सदा) अपने भक्तों की रक्षा करती है ।

(10) योगमाया – संयोजन करने से योगा है, स्वयं माया है । [योगा चासौ माया च योगमाया अथवा मनुष्य में ज्ञान का संयोजन करने से योगमाया ।]

(11) भगवती – भग के दो अर्थ हैं – (1) भग = षाड्गुण्य; । वती = युक्ता [अर्थात् षाड्गुण्य वाली] । (2) भग = भगवान् यज्ञ, उसकी पत्नी - भगवती ।

(12) व्योम – विशाल है इसलिए ।

(13) पुरी — पूरणात् पुरी । [नगरीपरक अर्थ प्रतीत होता है ।]

(14) परावरा — पर, अवर स्वरूपवाली ।

(15) शक्ति — जिसके लिए सब कुछ शक्य है वह । [शकनात् शक्तिः] ।

(16) राज्ञी — (सब का) रंजन करनेवाली । [रंजनात् राज्ञी] ।

(17) शान्ता — हमेशा शान्त विकारवाली - [सदा शान्तविकारत्वात्] ।

(18) प्रकृति — विश्व की निर्मात्री । [प्रक्रियते विश्वमिति प्रकृतिः] ।

(19) श्री — श्री शब्द के विविध अर्थ हैं - (1) सभी को आश्रय देनेवाली श्रि सेवायाम् (प्रथम गण) । (2) सज्जनों के पापों को नष्ट करनेवाली (शृ हिंसायाम्; नवम गण) । (3) भक्तों की करुण वाणी को सुननेवाली (श्रु श्रवणे; प्रथम गण) । (4) गुणों से जगत् को प्रसन्न करनेवाली (शॄ प्रीणने इति विमर्शिनीकारः) । (5) श्री शब्द में तीन वर्ण हैं श् + र् + ई । (क) श् = सभी भूतों के अंतःकरण में सोनेवाली; (ख) र् = पुण्यात्माओं में रमण करनेवाली; (ग) ई = ईडिता = देवता जिन की स्तुति करते हैं, वह । (घ) उनका शरीर वैष्णव है - [4-35 से 54, पृ. 43-46] ।

त्रिगुणा — चतुर्भुजा महालक्ष्मी तीन गुणों की अधिष्ठात्री होने से वह त्रिगुणा है ।

त्रिगुणा महालक्ष्मी

त्रिगुणा की सृष्टि को तीन प्रकार से बताया गया है । तीन गुणों का (1) आद्यपर्व, (2) मध्य पर्व और (3) तृतीय पर्व । [अर्थात् तीन गुणों (चतुर्भुजा महालक्ष्मी) की सृष्टि को यहाँ तीन चरणों में समझाया है । ये चरण कालक्रमानुसारी हैं - [4-55 और 5-15; 18] ।

(क) तीन गुणों का आद्यपर्व –

महाकाली — इस सूने (शून्य) लोक को अपने से परिपूर्ण करने की इच्छा से वह महालक्ष्मी स्वयं तमोगुणप्रधाना चतुर्भुजा महाकाली बनी । महालक्ष्मी ने महाकाली के विविध नाम बताए - महाकाली, महामाया, महामारी, क्षुधा, तृषा, निद्रा, कृष्णा, एकवीरा, कालरात्रि, आदि ।

महासरस्वती — फिर भी अपनी इस सृष्टि को अपर्याप्त मानकर महालक्ष्मी स्वयं

सत्त्वगुणप्रधाना चतुर्भुजा महासरस्वती बनी । महालक्ष्मी ने उनके नाम बताए - महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा, धी और गिरा ।

ये तीनों देवियाँ जगद्धात्री और जगन्माताएँ हैं - [4-57 से 67] ।

[वसु. – प्राधानिक रहस्य (दुर्गा सप्त.) में यही बात है । महाकाली के नामों में लक्ष्मीतंत्र में कृष्णा है और प्राधा. में तृष्णा है । सरस्वती के नामों में लक्ष्मी.में धी और गिरा है, जबकि प्राधा. में धीश्वरी है - [देखो प्राधा. 4 से 16] । भाषान्तरकारने गीः का अर्थ गौ किया है, जो गलत है । गिर् शब्द का प्रथमा एक वचन गीः है - लक्ष्मी. 4-66] ।

तीन देवियों की मानसी सृष्टि – (1) रजःप्रधाना चतुर्भुजा महालक्ष्मी ने ब्रह्मा और कमला (लक्ष्मी) को उत्पन्न किया । ये दोनों प्रद्युम्न के अंशभूत हैं । (2) चतुर्भुजा महाकाली ने संकर्षण के अंशभूत शंकर (रुद्र) और सरस्वती को उत्पन्न किया । (3) चतुर्भुजा महासरस्वती ने अनिरुद्ध के अंश से विष्णु (वासुदेव) और गौरी को उत्पन्न किया ।

चतुर्भुजा महालक्ष्मी की आज्ञा से सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी बनी । गौरी रुद्र की पत्नी बनी और लक्ष्मी (कमला) वासुदेव की पत्नी बनी - [5-4 से 14] ।

[वसु. – प्राधा. के 17 से 26 श्लोकों में यही बात है । लक्ष्मीतंत्र में पुत्रीभूत महाकाली आदि का अधिक वर्णन नहीं हैं, परंतु दुर्गा सप्तशती के वैकृतिक रहस्य में विशेष वर्णन है । उस रहस्य में बताया है कि, महाकाली दश-वक्त्रा, दश-भुजा, दश-पादा है । महालक्ष्मी अष्टादश भुजा है और महासरस्वती अष्ट भुजा है । उन देवियों की स्वतंत्र उपासना की पद्धति भी बताई है । नवचंडी, शतचंडी आदि दुर्गा-यागों में इन दो रहस्यों के अनुसार आवरण देवताओं की पूजा करनी चाहिए । इसका स्वतंत्र लेख ओरिएण्टल कोन्फ. में मैंने भेजा था । यदि केवल नवार्ण मंत्र की ही उपासना करनी हो, तो पारंपरिक आवरण देवताओं की पूजा की ज़ाए ।]

(ख) तीन गुणों का मध्यपर्व – चतुर्भुजा महालक्ष्मी की आज्ञा से ब्रह्मा ने सरस्वती के साथ संयुक्त होकर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया और शंकर ने गौरी के साथ संयुक्त होकर उस ब्रह्माण्ड का भेदन किया । फिर केशवने पद्मा

(लक्ष्मी) के साथ संयुक्त होकर उस ब्रह्माण्डगत प्रधान आदि कार्यों का पालन किया - [5-16, 17] । [**वसु.** — प्राधानिक रहस्य में यही बात है, केवल आज्ञावाली बात नहीं है ।]

(ग) तीन गुणों का तृतीय पर्व — पद्मा (लक्ष्मी) के साथ केशव ने ब्रह्माण्डगत त्रिगुणात्मक प्रकृति, व्योम, स्वभाव, योनि और अक्षर को जलरूप बनाया और उसमें शयन करके निद्रायोग में चले गए । फिर उनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ, जिसे चक्र भी कहते हैं । षाड्गुण्यगत बल, ऐश्वर्य और तेज कालरूप हैं, जो इस सृष्टि में स्थित हैं । उस नाभिकमल से ब्रह्मा और सरस्वती उत्पन्न हुए । नाभिकमल, ब्रह्मा और सरस्वती ये तीन तत्त्व महान् तामस विकार है । कमल प्राण है, ब्रह्मा हिरण्यगर्भ है और सरस्वती बुद्धि है । (अ) धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य (आ) और अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य एवं अनैश्वर्य ये आठ गुण [4+4] हिरण्यगर्भ के हैं । जब ये महत् में प्रवेश करते हैं, तब महालक्ष्मी उन्हें सृष्टि के लिए प्रेरित करती है । तब अहंकार उत्पन्न हुआ। शंकर-गौरी का संबंध यहाँ है । अहंकार से सृष्टि आगे बढाई गई । अहंकार, तन्मात्रा, भूत, प्राणिसृष्टि तक की सृष्टि हुई - [5-18 से 84] । इस सृष्टि में दुःख है, परंतु विशुद्ध ज्ञान एवं शुद्ध कर्म के संबंध से अविद्या का नाश होते ही आनन्द की प्राप्ति होती है - [5-85] । [**वसु.** — (1) यंत्र प्रायः अष्टपत्रादि कमलरूप होते हैं, अतः इसका संबंध इस नाभिकमल के साथ प्रतीत होता है। (2) पीठ देवताओं में धर्मादि आठ, और कमल का अंतर्भाव है ।]

षडध्वरूपा नारायणी

परं ब्रह्म — परं ब्रह्म शान्त, निर्विकार - [2-8; 10; पृ. 17], षाड्गुण्ययुक्त, निर्मल, उज्ज्वल, निर्गुण, निराकार, दिव्य, अखण्ड, चिदानन्द-रस-पूर्ण है। वह देश, काल, उपमा, आदि (प्रारंभ), अन्त, जरा एवं मृत्यु से रहित है । भवत् एवं भाव के उन्मेष से रहित वह परं धाम और अहंपदवाच्य है - [22-4 से 6; पृ. 216] । उस समय उस ब्रह्म से अपनी शक्ति अलग नहीं होती, अतः उसे अद्वैत ब्रह्म कहते हैं । अहंपद-वाच्य उस ब्रह्म की अहंता नारायणी है, जो उस ब्रह्म की सभी अवस्थाओं में साथ में ही रहती है । इस तरह वह अहन्ता उस ब्रह्म की आत्मभूता है - [2-11 से 13; पृ.17-18] । वह अध्वातीता [षडध्वों के अस्तित्व के पहले है, इस अर्थ में वह अध्वातीता है;] एवं निर्मल

आनन्दपूर्ण ज्ञान-स्वरूपा है - [21-1, 5; पृ. 208-9]। सर्वज्ञ, सर्वशक्तियुक्त, सर्वतोमुखी और उस ब्रह्म से अभिन्न है - [22-1;// 21-4;// 2-18]। उस ज्ञानमयी शक्ति में समग्र विश्व दर्पण की तरह प्रकाशित होता है - [21-5; पृ. 209] ।

नारायण और नारायणी – भवत् एवं भाव से रहित परं ब्रह्म अपने स्वरूप को न छोडता हुआ, अपनी इच्छा से जब भवत् एवं भाव की व्यवस्था के लिए उन्मिषित होता है, तब वह उन्मिषित ब्रह्म **भवत्** है और **भाव** उस ब्रह्म की अहन्ता है । वह अहन्ता [नारायणी] भवत्-रूप ब्रह्म की इच्छा से, उसी ब्रह्म से षडध्वरूपा बनकर उदित होती है - [22-7 से 10; पृ. 217] ।

भवत्-रूप नारायण और भावरूपा नारायणी दोनों षाड्गुण्ययुक्त हैं - [11-5;// 22-4, और 16-21] । [ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज के समुदाय को षाड्गुण्य कहते हैं – 4-13; पृ. 39] । दोनों का स्वभाव अतिशीतल है । दोनों के बीच में अविनाभाव [तादात्म्य] सम्बन्ध है - [9-55; 56, पृ. 100], जैसे पुष्प और उसकी सुगन्ध, एवं दीपक और उस की प्रभा को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता । उसी तरह ये दोनों अभिन्न हैं, दोनों की सहस्थिति है - [36-117; पृ. 419] । इस तरह उन दोनों की अभिन्नता को निःशंक बुद्धि से समझ करके, की गई उपासना से साधक अपने क्लेशकर्माशय से छूट कर नारायणी को प्राप्त करता है - [9-55 से 59; पृ. 100-101] ।

षट्-अध्वा

भवत् एवं भाव की व्यवस्था के लिए उन्मिषित (हुए) ब्रह्म की इच्छा से नारायणी (अहंता), षडध्वा के रूप में विवर्तित होती है । (क) वर्णाध्वा, (ख) कलाध्वा, (ग) तत्त्वाध्वा, (घ) मंत्राध्वा, (ङ) पदाध्वा और (च) भुवनाध्वा, ये छः अध्वा षडध्वा हैं - [22-7 से 11; पृ. 216-17] ।

(क) वर्णाध्वा

नारायण की अहन्तारूप नारायणी के अनामय संवित्रूप का प्रथम उन्मेष वर्णाध्वा है - [22-11; 12; पृ. 217] । वर्णमयी नारायणी का वह शरीर करोड़ों अग्नि-सोम-सूर्यों की आभाओं से युक्त है । सतत (अमृत)-धारारूपा

वह अपनी चारों ओर आँखों, मस्तकों और मुखोंवाली है - [35-33; पृ. 389]। [इसकी तुलना पुरुषसूक्त की सहस्रशीर्षा ऋचा के साथ हो सकती है।]

लक्ष्मीतंत्र में वर्णाध्वा का वर्णन तीन प्रकार से किया है - (क) आद्य रीति, (ख) मध्यमा रीति और (ग) चरम (अन्तिम) रीति के परिप्रेक्ष्य में ।

आद्यरीति के परिप्रेक्ष्य में वर्णाध्वा का स्वरूप –

वेद्यवेदक-भावरहित एवं सर्व से अभिन्न रहते ब्रह्म की अहन्तारूपा नारायणी वेद्यवेदक-भावरहित है; ब्रह्म से अभिन्न है और सदा उदित है। प्रकाश एवं आनन्द की सारभूता और सर्वत्र समभाव से रहनेवाली वह नारायणी जीवों की मुक्ति के लिए, अपने करोड़ों वे अंश में क्षुभित होती है। फलस्वरूप वह अपने शक्तिबल से, अपने आप, परमेश्वर से शब्दब्रह्म के स्वरूप में स्वयम् उदित होती है। उस समय तंत्रीवाद्य की अव्यक्तमधुर (कलध्वनि) आवाज की तरह उसका रूप अव्यक्त-अक्षरात्मक होता है, जो जगत की स्थिति के लिए विभिन्न वर्णों के रूप में आ जाता है। [अमृत] धारा के सातत्यवाले नारायणी के [वह] सूक्ष्म वर्णात्मक स्वरूप की अनुभूति पाँच अध्वरूप कोशों से मुक्त बने भगवतीनिष्ठ साधक को [नारायण की कृपा से] होती है। इन सूक्ष्म वर्णों में नारायणी की चतुरात्मता जानना आवश्यक है। इस चतुरात्मता में विश्राम, उदय, व्याप्ति और व्यक्ति का ज्ञान, [ज्ञानसमाधि द्वारा] कर लेना जरूरी है।

अ से क्ष तक के वर्ण – [अ से अः तक **16 स्वर** हैं और क से क्ष तक **34** वर्ण हैं। कुल मिलाकर **50** वर्ण हैं।] सृष्टि की स्थिति के लिए भिन्न भिन्न वर्णों के [50 वर्णों के] रूप में उपर्युक्त अव्यक्त अक्षर परिवर्तित होता है - [20-2 से 10; पृ. 199-200] । इन वर्णों में नारायणी का चातुरात्म्य स्वरूप सृष्टिक्रम में और संहारक्रम में भिन्न भिन्न है, जेसे –

सृष्टिक्रम में चातुरात्म्य – सृष्टिक्रम में अकार से सकार तक के 48 वर्ण हैं, जिनमें अकार पुण्डरीकाक्ष वासुदेव है और उसमें लय के समय संकर्षण आदि तत्त्व विश्राम करते हैं। आकार संकर्षण है, जो (स्वयम्) सर्वप्रथम उदित होता है। इकार प्रद्युम्न है, जो (सर्वत्र) व्याप्त है। ईकार व्यक्तिरूप अनिरुद्ध है, जिसमें जगत की सृष्टि आदि शक्तियाँ अभिव्यक्त होती है और हकार द्वादशान्त है - [20-11 से 20]।

संहारक्रम में चातुरात्म्य – संहारक्रम में हकार से आकार तक के 48 वर्ण हैं । इनमें हकार वासुदेव है । सकार संकर्षण है । [षकार प्रद्युम्न है । सकार अनिरुद्ध है] और अकार द्वादशान्त है - [20-12; और 20 से 23]।

परं पद की प्राप्ति के लिए निश्चित की गई सिढ़ी के सोपानभूत बारह धारणाओं को पार करने के पश्चात् साधक द्वादशान्त को पार करके परं पद में प्रवेश करता है । आद्य रीतिवाले वर्णाध्वा के (अनुभवयुक्त) ज्ञान से नारायणी का सारूप्य मिलता है - [20-22; 23; पृ. 203] । [**वसु.** – जैसे अहमदाबाद से मुंबई के मार्ग में बड़ौदा, भरूच, सूरत, वलसाड आदि स्टेशन आते हैं, इसमें केवल मार्गज्ञान कर लेने मात्र से मुंबई नहीं पहुँचा जाता, परन्तु इस मार्ग पर पूरी यात्रा के लिए गति करने से ही मुंबई (गन्तव्य प्रदेश में) पहुँच सकते हैं, ठीक उसी तरह (आद्य रीतिवाले) सूक्ष्म वर्णाध्वा की पढ़ाई करने से कुछ नहीं मिलता, परंतु उस वर्णाध्वा के स्वरूप के अनुसार अपने मन, बुद्धि एवं वर्तन को पूर्णतया परिवर्तित करके सात्त्विकी बुद्धि से सूक्ष्म अकारादिवाक्तत्त्व का अनुभव करते हुए चलते रहने से ही एक दिन नारायणी के सारूप्य की प्राप्ति हो सकती है । इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए पाँच अध्व-कोशों से मुक्ति पाना अनिवार्य शर्त है । **'मंत्र की उपासना से भोग एवं मोक्ष'** विभाग में (पृ. 42) भी उस मार्ग की स्पष्टता की गई है । सूक्ष्म वाक्तत्त्व का अर्थ है चरमा (वैखरी) से सूक्ष्मभूत मध्यमा रीति प्रोक्त वाक्तत्त्व है और उससे भी सूक्ष्म आद्या रीति प्रोक्त वाक्तत्त्व है, जिसका वर्णन यहाँ किया गया है, उतने सूक्ष्म में गोते लगाते रहने से ही एक दिन ध्येय की प्राप्ति हो सकती है, अस्तु ।]

मध्यमा रीति के परिप्रेक्ष्य में वर्णाध्वा का स्वरूप –

मध्यमा रीति के परिप्रेक्ष्य में अ से क्ष तक के 50 वर्णों का स्वरूप इस प्रकार का है – इन में (1) **अ** से **अः** तक के 16 स्वर हैं और **क** से **क्ष** तक के 34 व्यंजन हैं । 34 व्यजंनों में (2) **क** से **भ** तक के 24 वर्ण प्राकृतदशा हैं । (3) मकार पुरुष है । (4) **य, र, ल** और **व** ये चार वर्ण धारणाचतुष्क हैं और **श, ष, स, ह** और **क्ष** ये पांच वर्ण ब्रह्मपंचक हैं - [19-2 से 17] ।

सोलह स्वर – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लॄ, ए, ऐ, ओ, औ, अं

और अ: तक के सोलह स्वरों में अकार से अंकार तक के पंद्रह स्वर चिद्रूपा नारायणी की पंद्रह दशाएँ हैं, जो नारायणी का स्वसंवेद्य एवं शाश्वत चिद्रूप है - [19-2; पृ. 189] । इन पंद्रह अंगों से परिपूर्ण बनी हुई सृष्टि-सर्जनकारिणी दैवी-शक्ति अपने प्रत्येक कृत्य के लिए उद्यमरत होती है - [19-10; पृ.191] ।

अ: – सोलहवाँ स्वर **अ:** (विसर्ग), उपर्युक्त पंद्रह अंगोंवाला है । यह विसर्ग (अ:)रूपा हजारों किरणोंवाली सोममयी शक्ति स्वयं नारायणी है ।

अं और अ: – **अं** संकोच है, भोक्ता है एवं सूर्य है, जबकि **अ:** विकास एवं चन्द्र है । **अं** की सात किरणें **अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए** और **ओ** हैं, जो सूर्यरूपा एवं भोक्ता नारायणी की शोषक अंशभूत हैं । **अ:** की सात किरणें **आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ, ऐ और औ** हैं । ये किरणें चन्द्ररूपा एवं भोग्या नारायणी की पोषक अंशभूत हैं । इन अग्नीषोमात्मक (सूर्यचन्द्रात्मक) चौदह किरणों के द्वारा **अं** रूप पुरुष का अंगीकार करके महासृष्टि-रूपा नारायणी **अ:** (अन्त्यस्वर) के रूप में प्रवृत्त होती है - [19-20 से 29; पृ. 193-95] ।

क से क्ष तक के 34 व्यंजन –

(1) क्ष, ह, स, ष और श – क्ष से श तक के पाँच वर्णों को **ब्रह्मपंचक** कहते हैं, जिसकी उत्पत्ति सृष्टि की प्रवृत्ति के लिए हुई है । इन पाँच में **क्षकार** सत्य नाम का महाक्षोभ है । **हकार** वासुदेव है । **सकार** संकर्षण है । **षकार** प्रद्युम्न है और **शकार** अनिरुद्ध है । ब्रह्मपंचक रूपा ये पाँच परा शक्तियाँ, जिस तरह अग्नि से उनकी ज्वालाएँ अलग नहीं रहती, ठीक उसी तरह नारायणी से अलग नहीं रहती हैं । यह ब्रह्मपंचक जगत की उत्पत्ति के हेतुभूत है - [19-30 से 33; पृ. 195] ।

(2) व, ल, र, य – व, ल, र और य ये चार वर्ण चार धारणाएँ हैं ।

व – वकार तुर्यावस्था है, जो अनिरुद्ध की राग नाम की शक्ति है ।

ल – लकार सुषुप्ति अवस्था है, जो माया नामवाली महालक्ष्मी है ।

र – रकार स्वप्नावस्था है, जो विद्या नामवाली महावाणी (महासरस्वती) है ।

य – यकार जाग्रत् अवस्था है, जो वायु नाम वाली क्रियाशक्तिरूपा महाकाली है ।

अकार – ब्रह्मा आदि तीन मूर्तियाँ और त्रयी आदि तीन (उनकी) पत्नियाँ आदि समग्र सूक्ष्म तत्त्व (देवता समूह) अकार के प्रथम अंश में स्थित हैं। भोक्तृकूट में स्थित पुरुष जो है, वह अकार के मध्यम अंश में स्थित है और सभी संसारी पुरुष, अकार के चरम (अंतिम) अंश में स्थित हैं - [19-34 पृ. 196; और 20-25 से 29; पृ. 203-4] ।

(3) मकार – पूर्वोक्त ब्रह्मपंचक **[क्ष, ह, स, ष, श]** ब्राह्मी दशा हैं, जबकि भकार से ककार तक के चौबीस वर्ण प्राकृत दशा हैं। इन दो दशाओं के मध्य में जाग्रत् अवस्थावाला मकार रूप पुरुष है, जिस पुरुष को ये चार धारणाएँ **[व, ल, र, य]** धारण करती हैं। [इस लिए उन्हें धारणा कहते हैं।] यदि ये धारणाएँ मकार पुरुष को धारण न करे, तो वह मकार ब्राह्मी दशा में अथवा प्राकृत दशा में चला जाता है। फलस्वरूप संसार नहीं बन पाता। भगवती नारायणी से धारणा-चतुष्क प्रथम उत्पन्न हुआ और बाद में इन चार दशाओं में स्थित मकार रूप भोक्ता पुरुष उत्पन्न हुआ, जो स्वयं भोग एवं मोक्ष के लिए लायक है - [19-16 और 35 से 39; पृ.192 और 196-197] ।

(4) भकार – मकार रूप पुरुष के भोगों की आवश्यकता पूरी करने के लिए नारायणी से भकार की उत्पत्ति हुई - [19-39; 40; पृ. 197] ।

(5) बकार से ककार तक के 23 वर्ण – मकार पुरुष के भोग्य एवं भोग आदि की सिद्धि के लिए तेइस व्यक्त तत्त्वों की **(ब से क तक के)** उत्पत्ति हुई।

ब, फ, प – इन तेइस में से बकार द्वारा बुद्धि, फकार द्वारा अहंकार और पकार द्वारा मन की उत्पत्ति हुई।

न, ध, द, थ, त – इन पाँच वर्णों से क्रमशः श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं।

ण ढ ड ठ ट – इन पाँच वर्णों से क्रमशः वाक् [जिह्वा] आदि पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं।

ञ, झ, ज, छ, च – इन पाँच वर्णों से क्रमशः शब्द, स्पर्श आदि पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं।

ङ, घ, ग, ख, क – इन पाँच वर्णों से आकाश आदि पाँच महाभूत उत्पन्न हुए – [19-41 से 44; पृ. 197-98] ।

[**वसु.** – (क) वेदान्तसार के अनुसार आकाश आदि सूक्ष्म महाभूतों से (अपंचीकृत तन्मात्राओं) से सूक्ष्म शरीर और स्थूल भूतों की उत्पत्ति का क्रम है, जो लक्ष्मीतंत्रोक्त क्रम से सुसंगत नहीं है। एतानि (आकाशादीनि) सूक्ष्मभूतानि तन्मात्राणि अपंचीकृतानि च उच्यन्ते । एतेभ्यः सूक्ष्मशरीराणि स्थूलभूतानि च उत्पद्यन्ते। सूक्ष्मशरीराणि सप्तदशावयवानि। अवयवास्तु ज्ञानेन्द्रियपंचकं, बुद्धिमनसी, कर्मेन्द्रियपंचकं, वायुपंचकं च इति – [वेदा.– पृ. 12-14], स्थूल भूतानि तु पंचीकृतानि – [पृ. 18] एतेभ्यः पंचीकृतेभ्यः भूतेभ्यः .... उपर्यधोलोकानां, चतुर्विधस्थूलशरीराणां, तदुचितानाम् अन्नपानादीनां च उत्पत्तिः – [पृ. 20] । (ख) लक्ष्मी. – 19-36, से 42; पृ. 196-97 और 20-27, 28; । (पृ. 204 के श्लोकों का भाषान्तर त्रुटिपूर्ण हैं ।)]

चरम [अन्तिम] रीति के परिप्रेक्ष्य में वर्णाध्वा का स्वरूप

चरम रीति के परिप्रेक्ष्य में वर्णाध्वा वैखरी वाणी है, जो (कण्ठ आदि) स्थानों से [स्पृष्ट आदि आभ्यन्तर प्रयत्न एवं विवार आदि बाह्य] प्रयत्नों से प्रकट होती है, जिसे वर्णमाला या मातृका कहते है । वैखरी वाणी स्पष्ट [अन्य को सुनाई देनेवाली] होने से वह सन्मार्गदर्शिका है । **भगवान् विष्णु की शक्तियों से परिपुष्ट होने के कारण, उसमें भी भगवान् विष्णु की तरह पचास शक्तियाँ रहती हैं, जो इस प्रकार हैं –**

(1) **सोलह स्वरों के देव-देवियाँ** – अकार आदि सोलह स्वरों के अधिष्ठाता देव वासुदेव आदि चार व्यूह और केशव.आदि बारह मिल करके सोलह हैं। वासुदेव आदि चार देवों की शक्तियाँ लक्ष्मी आदि चार देवियाँ हैं और केशव आदि बारह देवों की शक्तियाँ श्री आदि बारह देवियाँ हैं ।

(2) **चौतिस व्यंजनों के देव-देवियाँ** – क से क्ष तक के 34 वर्णों के देव पद्मनाभ आदि 34 विष्णु हैं और उनकी शक्तियाँ धी, तारा आदि 34 देवियाँ हैं।

(3) **रंग, यम, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय के देव-देवियाँ** – इन चार

के देव अनुक्रम से परशुराम, रामचन्द्र, कल्की और पातालशयन हैं और उनकी शक्तियाँ अनुक्रम से काश्यपी, वैदेही, वेदविद्या और नागशायिनी पद्मिनी है। [इस तीन प्रकार के वर्णाध्वा की तुलना पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणी से हो सकती है ।]

[**वसु.** — अनुवादक ने हरि एवं प्रीति को एक दूसरे से भिन्न बताया है और पद्मिनी एवं नागशायिनी को भी भिन्न बताया है। अतः अनुवाद के अनुसार वैदेही, वेदविद्या, पद्मिनी और नागशायिनी ये चार देवियाँ अनुक्रम से परशुराम आदि चार देवों की पत्नियाँ मानी जाएगी । यह व्यवस्था सुसंगत नहीं बन सकती, क्योंकि वैदेही देवी परशुराम की नहीं, अपितु धनुर्धर [दाशरथी] रामचन्द्र की पत्नी लोक-प्रसिद्ध है । इस परिस्थिति में यदि वैदेही के पहले कही गई काश्यपी को परशुराम की पत्नी के रूप में निश्चित की जाए, तो धनुर्धर रामचन्द्र की पत्नी वैदेही, वेदविद् भगवान कल्की की पत्नी वेदविद्या, और पातालशयन प्रभु की पत्नी नागशायिनी पद्मिनी बनेगी, जिससे संगति तो बैठेगी, परंतु 34 देवों की पत्नीयों की संख्या 33 बनेगी । इस तरह एक संगति के प्रयत्न से दूसरी विसंगति आ जाएगी । इसका निर्णय विद्वद्वर्ग करें ।]

विनायकों, दुर्गाओं, क्षेत्रपालों, [गौर्यादि] मातृकाओं, बौद्ध-देवताओं और आर्हत-देवताओं से यह मातृका अधिष्ठित है । जिस तरह क्षुधातुर बालक को अपनी माता की आवश्यकता है, इस तरह सभी देवताओं को मातृका की आवश्यकता रहती है। संक्षेप में कहा जाए तो यह मातृका सभी मंत्रो, विद्याओं, तत्त्वों, तात्त्विकों और ज्ञानों का उत्पत्ति स्थान है - [20-30 से 52; पृ. 204 से 7] ।

रंग, यम, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय

(1) रंग — या = याज्ञवल्क्य शिक्षा में रंग का अर्थ व्याख्याकार; ने अर्धानुस्वार बताया है । [रंगे = अर्धानुस्वारे - या. व्या. = व्याख्याकार; 1-64; पृ. 59] [रंग = अर्धानुस्वारपरिमित — या. व्या. 2-70; पृ. 137]। वर्ण प्रकरण में रंग को अनुस्वार और अनुनासिक से भिन्न बताया है। [स्वराः ..... यमानुस्वार-विसर्जनीयोपध्मानीय-नासिक्याऽनुनासिक्य-रंगाः — सू. 2-1; पृ. 80; अर्धानुस्वारं रंगनामधेयम्-या. व्या. 2-69, पृ. 136] ।

रंग का स्वरूप – व्याख्याकार ने रंग को नकार एवं मकार का विकार बताया है। [नकारमकारयोर्विकारेण उपधाऽनुनासिक्ये जाते (रंगे) या. व्या. 2-69; पृ. 136) । नकारवाला उदाहरण '**वृष्टिमाँ 2 ॥ इव**' है और मकारवाला उदाहरण '**अन्याँस्ते**' है - [या.शि. 2-74, पृ. 139; या. व्या. 2-72; पृ. 138] ।

रंग की मात्रा-मात्रा की दृष्टि से रंग के दो भेद हैं- (1) द्विमात्र, जैसे '**शत्रूँ 2॥ रप**' और (2) एकमात्र, जैसे '**रयँश्चन्द्रमसि**' - [या. व्या. 2-71; पृ. 137]। दोनों प्रकार के रंग का स्थान नासामूल है - [या.शि. 2-71] ।

रंग के भेद – रंग के बाद आ, ई, ऊ, ॠ, अथवा ओ स्वर आने से रंग के पाँच भेद बनते हैं – (1) घात - (देवाँ 2॥ ऽआसादय) । (2) निर्घात - (देवाँ 2 ऽइ देषि) । (3) वज्री - (देवाँ 2 ऽउपागा) । (4) अहिम - (देवाँ 2 ऋतुभिः) और प्रहिण - (अमित्राँ 2॥ ऽओषतात) - [या.शि. और व्या. 2-78; पृ. 142] । (पाँचों उदाहरण व्याख्याकार के हैं, यहाँ ह्रस्व इ-उ चिन्त्य हैं ।)

रंग का उच्चारण – जिस तरह सौराष्ट्र (गुजरात) देश की नारी अरँ 2॥ बोलती है, उस तरह का उच्चारण (रंग का) किया जाता है । इस उच्चारण में इतना खास ध्यान रखना है कि, रंग के उच्चारण में ङ्कार की श्रुति नहीं होने देना है - [या.शि. 2-70; पृ. 136], [जैसे शङ्करः, शङ्खे के उच्चारण में ङ्कार की श्रुति स्पष्ट रूप से सुनी जाती है, ऐसा उच्चारण रंग का नहीं करना चाहिए।]

(2) यम – क, च, ट, त और प वर्ग के प्रथम से चौथे तक के वर्णों में से किसी भी वर्ण के पीछे यदि किसी भी वर्ग का पंचम वर्ण रहता है, तो पूर्ववर्ण के सदृश वर्ण का आगम मध्य में होता है। उस मध्यगत वर्ण को यम कहते हैं, जैसे अग्गिनः । यहाँ द्वितीय ग् यम है । रुक्क्मः यहाँ द्वितीय क् यम है - [वर्गेषु आद्यानां चतुर्णां पंचमे परे, मध्ये, **पूर्व-सदृशो** वर्णः यमः। सि. कौ. पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र की वृत्ति, पृ. 13;] । [यथा रुक्क्मः इत्यत्र द्वितीयस्य ककारस्य यम इत्ययं कार्यक्रमः क्रियते इति उवटभाष्ये, प्रातिशाख्य 4-163, पृ. 309]।

(3) जिह्वामूलीय – ✕ क और ✕ ख के पहले अर्धविसर्ग के जैसा जो है, उसे जिह्वामूलीय कहते हैं । (✕ क, ✕ प इति कपाभ्यां प्राग् अर्धविसर्गसदृशौ जिह्वामूलीय-उपध्मानीयौ इति पूर्वत्रासिद्धम् सूत्रवृत्तौ । अर्ध-विसर्ग इति उच्चारणे लेखने च बोध्यम् इति । ख-फाभ्यां प्राग् इत्यपि बोध्यम् इति तत्त्वबोधिन्याम्

पृ. 13) । [वाजसनेय-प्रातिशाख्ये 'ऋक्कौ जिह्वामूले' इति - [1-65 पृ. 39]। "ऋ, ॠ, ऋ३, इति त्रयः, जिह्वामूलीयः, कवर्गश्च इत्येते नववर्णाः जिह्वामूलस्थानाः" - इति उवटः - [प्रा. 1-65] ।

(4) उपध्मानीय – ᳵ प और ᳵ फ के पहले के अर्धविसर्ग जैसा जो है, उसे उपध्मानीय कहते हैं - [उवो ᳵ प्पा ओष्ठे; प्रा. 1-70, पृ. 40] ॥ उ, ऊ, ऊ३; वकारः, ओकारः, उपध्मानीयः, प वर्गः, एते एकादश वर्णाः ओष्ठ्याः इति तत्र उवटभाष्ये - [उवटभाष्य में **प वर्ग** पद मुद्रित नहीं है] ।

(ख) कलाध्वा

लक्ष्मीतंत्रानुसार ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज के समूह को षाड्गुण्य कहते हैं, जो परमेश्वर की कला है - [21-7, पृ. 209, और 22-14; पृ. 218]। अद्वैत एवं निष्कल ब्रह्म ज्ञानादिषाड्गुण्य का समुद्र है - [16-24; पृ. 155] । नारायणी भी पूर्णषाड्गुण्यरूपा है - (16-21, पृ. 154)।

ब्रह्म षाड्गुण्ययुक्त एवं भवत्-भाव से रहित है- [22-3 से 6, पृ. 216], तो नारायणी भी षडध्वरहित एवं ज्ञानरूपा है - [21-1; पृ. 208] । यह निष्कल ब्रह्म कदाचित् भवत् एवं भाव की व्यवस्था के लिए उन्मिषित होता है, तब भवत् भाग नारायण का स्वरूप है और उसी भवत् भाग से उदित भावभागरूपा नारायणी षडध्वा के रूप में विवर्तित होती है - [उदेमि भवतो देवाद् इच्छयैव विवस्वतः । संभृत्याखिलसंभारमिच्छयैव स्वनिर्मितम् ॥ स्वभित्तौ लिखितं नीत्वा प्रभवामि षडध्वना ॥ इति-22-9,; 10, पृ. 217] ।

एक ओर (बोधरूपा) नारायणी का प्रथम उन्मेष वर्णाध्वा है, तो दूसरी ओर वही बोधरूपा नारायणी ज्ञानादिषाड्गुण्यरूप कलाध्वा के रूप में विवर्तित होती है - [उन्मेषः प्रथमस्तस्य वर्णाध्वा परिकीर्तितः ॥ ...... तदेव परमं रूपं मम संविन्मयं महत् । विवर्ततेऽध्वभावेन ज्ञानाद्येन कलात्मना ॥ ज्ञानादीनां कलानां तु गुणानां परमात्मनः - [22-12 से 14; पृ. 217-18] । इस तरह निर्मल-आनन्दपूर्ण -ज्ञानरूपा नारायणी बोधक-अंश में विवर्तित होकर, शब्दब्रह्ममयी बन करके ज्ञानादिषड्गुणरूप कलाध्वा के रूप में विवर्तित होती है । [बोध एव स्वरूपं मे निर्मलानन्दलक्षणः ॥ इच्छापरवती साहं बोधकांशविवर्तिनी । शब्दब्रह्ममयी भूत्वा विवर्तेऽहं कलाध्वना - 21-5; 6; पृ. 209] ॥

(ग) तत्त्वाध्वा

सर्वत्र समभाव से स्थित नारायण और नारायणी में जब सर्जन करने की इच्छा जगती है, तब नारायणी के ज्ञानात्मक रूप से शुद्ध अध्वा का सर्जन हुआ है - [4-1 से 7; पृ. 37-38] ।

वासुदेवादि चतुर्व्यूह – (1) ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन छः गुणों का तुल्य उन्मेष वासुदेव है - [4-13, पृ. 39] । आकार, देश एवं काल से अपरिच्छिन्न परमात्मा का भवत् भाग वासुदेव है और उसी का भावभाग वासुदेव की शान्ति नाम की शक्ति है - [7-3 से 7,; पृ. 72-73] । नारायणी का आद्यरूप वासुदेव है - [4-12, पृ. 39] । (2) उपर्युक्त ज्ञानादि छः गुणों में से ज्ञान एवं बल का उन्मेष संकर्षण है । (3) वीर्य एवं ऐश्वर्य का उन्मेष प्रद्युम्न है । और (4) शक्ति एवं तेज का उन्मेष अनिरुद्ध है - [4-13 से 16, पृ. 39] ।

तत्त्वाध्वा – नारायणी का चिन्मय-रूप वर्णाध्वा और कलाध्वा के द्वारा तत्त्वाध्वा के रूप में विवर्तित होता है - [22-12 से 15] । (कला ज्ञानादयः प्रोक्ताः षड्गुणाः पारमेश्वराः । तासां त्रिकद्वियोगेन वितर्ते तत्त्ववर्त्मना ॥ संकर्षणादयो देवास्तत्त्वानि सुरसत्तम - [21-7; 8 ; पृ.209] ॥ अध्वद्वयमुपादाय तद्रूपं मम चिन्मयम् । वासुदेवादिरूपेण वर्तते तत्त्ववर्त्मना - [22-15; पृ. 218] । यह चतुर्व्यूह, सभी विभव देवता और जो जो भगवन्मय हैं, उन सभी का अन्तर्भाव तत्त्वाध्वा में होता है - [22-16; पृ. 218] ।

(घ) मंत्राध्वा

तरंगरहित उदयवाले अनन्त वासुदेव की अहन्तारूपा नारायणी की स्फुरत्ता शब्दब्रह्म है - [18-14 से 17 पृ. 181-82] । वह [स्फुरत्ता रूपा] नारायणी सर्व मंत्रों एवं शब्दों की जननी है - [18-18; 37] । शब्दब्रह्म का विवर्त मंत्राध्वा है । उसकी [मंत्राध्वा की] हजारों किरणे हैं । वह चिद्लक्षण एवं षाड्गुण्यात्मक है । वर्णों का संयोग मंत्र है - [21-8 से 10; पृ.209] ।

व्यापक परं ब्रह्म की शान्तता अवस्थारूपा नारायणी है, जिसकी सर्जनेच्छा का अल्प उद्यम शान्त उन्मेष है । उस (उन्मेष) के दो भेद हैं - शब्द और अर्थ। बोध का उन्मेष शब्द है । शब्द का उन्मेष अर्थ है । शक्ति का प्रथम

उदीयमान शब्दोदय नाद है। उस [नाद] के साथ रही हुई शक्ति सूक्ष्म है। [यह **परावाक्** है।]

पश्यन्ती – नाद के बाद का द्वितीय उन्मेष जो शक्ति से उत्पन्न हुआ है, उस [उन्मेष] को बिन्दु कहते हैं। नारायणी की बिन्दु नाम की पश्यन्ती अवस्था है।

मध्यमा – पश्यन्ती के बाद का तृतीय उन्मेष भी शक्ति से उत्पन्न हुआ है। वह नारायणी की मध्यमा दशा है। यहाँ वाच्य एवं वाचक का भेद परिलक्षित होता है।

वैखरी – मध्यमा के बाद शक्ति का चतुर्थ उन्मेष वैखरी वाणी है, जिसमें **क** से **क्ष** तक के 50 वर्णों और वाक्यों का स्पष्ट उदय होता है।

भगवती नारायणी की जो बोधानुरूपा क्रियाशक्ति है, वह नाद आदि चार उन्मेषों को अनुप्राणित करती है - [18-19 से 28, पृ. 182-83]। शब्दब्रह्म से वैखरी तक का विस्तार, नारायणी की प्रथम पूर्ण-अहन्ता है। वैदिक, तांत्रिक एवं अन्य सभी प्रकार के मंत्र, चित्समुद्र के तरंगभूत हैं। सभी मंत्र नारायणी से उत्पन्न होते हैं और नारायणी में ही विलीन होते हैं। ॐकार और प्रासाद आदि मंत्र मोक्षप्रद हैं। ह्रीं, श्रीं आदि मंत्र भोग एवं मोक्ष दोनों देते हैं - [18-36 से 50, पृ.185-88]।

निरुक्ति – लक्ष्मीतंत्र में मंत्र शब्द की विभिन्न निरुक्तियाँ मिलती हैं – (1) मां त्रायते इति मंत्रः। (2) मंत्रज्ञं [भयात्] त्रायते इति। मन्तारं त्रायते इति - [18-44, पृ. 187 और 22-21; पृ. 219]। (देखो पृ. 153)।

मंत्राध्वा – वर्णाध्वा और कलाध्वा का उपयोग करके नारायणी मंत्राध्वा के रूप में विवर्तित होती है। यह मंत्राध्वा भवसागर में डूबे हुए जीवों का उद्धार करता है; उन जीवों को भोग, वैराग्य और आराधना-सिद्धि देता है; मन का आलम्बन है और सर्वगामी एवं सर्वसाधक है। अधिक क्या कहें, मंत्र के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। सभी मंत्र नारायणी की निर्मल मूर्तियाँ है। मंत्राध्वा, वासुदेव आदि मूर्तियों के रूप में प्रकट होता है - [22-17 से 22, पृ. 218-19]।

मंत्र के भेद – मंत्रों के चार प्रकार हैं – (1) बीज मंत्र, जो तुर्यावस्थावाले हैं। (2) पिण्डमंत्र, जो सुषप्तिवाले हैं। (3) संज्ञामंत्र, जो स्वप्नावस्थावाले हैं

और (4) पदमंत्र, जो जाग्रत् अवस्थावाले हैं - [21-10, 11; पृ. 209-10]।

(1) बीजमंत्र – ये बीज मंत्र कभी स्वर व्यंजन से संयुक्त होते हैं तो कभी एक स्वर, दो स्वर या अधिक स्वर युक्त होते हैं। यदि किसी मंत्र में बीज न हो, तो उस मंत्र के प्रथम वर्ण को अनुस्वार-युक्त बनाने से वह बीज बनता है, [जिसे मंत्र के आदि में रखा जाता है, जैसे ॐ गणपतये नमः मंत्र में बीज नहीं है। इस लिए मंत्र के प्रथम वर्ण को अनुस्वारयुक्त करने से गं ऐसा बीज बनता है, जिसे आदि में लगाकर ॐ गं गणपतये नमः मंत्र बीजयुक्त बन जाता है।] इस तरह बीज सहित के सभी वर्ण मिलकर पूरा मंत्र बनता है - [21-11; 12, 23, 24]। सभी बीजों में सात बीजमंत्र उत्तम मंत्ररत्न हैं -**ॐ, ह्रीं, श्रीं, ऐं, क्लीं, औः** और **क्ष्म्रीं** - [23-36 से 38, पृ. 229]।

(2) पिण्डमंत्र – पिण्ड के तीन भेद हैं – (अ) सव्यंजन स्वरात्मक (आ) केवल व्यंजनात्मक और (इ) केवल स्वरात्मक [21-11; 12] [अन्तरा हरयः पिण्डं क्वचित् स्वरसमायुतम् - [21-12, पृ. 210]।

(क) सव्यंजन स्वरात्मक – इस प्रकार के पिण्ड में व्यंजन और स्वर रहते हैं - जैसे र्यूं - यह पिण्ड र्, य्, ऊ, बिन्दु (RYUM)चतुर्वर्णात्मक है। व्रूं - यह पिण्ड व्, र्, ऊ, बिन्दु (VRUM) भी चतुर्वर्णात्मक है - [30-42; 43]। **ल्स्वीं** - यह पिण्ड ल्, स्, व्, ई, बिन्दु (LSVIM) मिलकर के पंचवर्णात्मक है - [33-18, 19, पृ. 338]। **ट्ह्म्रूँ**-ट्, शून्य, ह्, म्, र्, ऊ यह षट्वर्णात्मक पिण्ड है - (आह्लादं (ट), व्योम (शून्य), प्राणोपरि (हकारोपरि) न्यसेत्। कालानलौ (मकाररकारौ) तु तदधः सर्वलोकेश्वरोपरि (ऊ), । यथाक्रमोदितैर्वर्णैः पिण्डं कृत्वा - [33-74, 75, पृ. 349]।

(ख) केवल व्यंजनात्मक – इस प्रकार के पिण्ड में केवल व्यंजन होते हैं। जैसे – (क) **स्वां** - इस बीज में स् व् (SV) यह द्विवर्णात्मक पिण्ड है। और इस पिण्ड को आ स्वर एवं बिन्दु के साथ जोडने से स्वां बीज बनता है। (ख) **क्ष्म्लां** = यहाँ क्, ष्, म्, ल् (K,SH,M,L) चतुर्वर्णात्मक पिण्ड है। इस पिण्ड को **आ** और बिन्दु के साथ जोडने से क्ष्म्लां बीज बनता है - [33-35; 37, पृ. 341]।

(ग) केवल स्वरात्मक – इस प्रकार के पिण्ड में केवल स्वर ही होते हैं, जैसे - आं, ईं, ऊं, ऐं, औं ये पाँच पिण्ड हैं। इन पाँचों को ह् र् के साथ जोडने

से भिन्न भिन्न प्रकार के पाँच बीज बनते हैं-ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं। (ये पाँच बीज हृदयादि पाँच अंगमंत्रों के पूर्व में लगाए जाते हैं। [पाँच अंगमंत्र (हृदयादिन्यास मंत्र) इस प्रकार के हैं - (1) ॐ ह्रां ज्ञानाय हृदयाय नमः। (ग्यारह वर्णात्मक) (2) ॐ ह्रीं ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा। [ग्यारह वर्णात्मक]; (3) ॐ ह्रूं शक्तये शिखायै वषट् (वौषट्) [दश वर्णात्मक]; - (देखो पृ. 47)। (4) ॐ ह्रैं बलाय कवचाय हुं (दशाक्षर); (5) ॐ ह्रौं तेजसे नेत्राभ्यां वौषट्। [दशाक्षर]। और (6) ॐ ह्रः वीर्याय अस्त्राय च फट् (दशाक्षर) - (33-2 से 10; पृ. 335-36)। ये न्यास मंत्र ह्रीं मंत्र की उपासना के लिए हैं।]

दो पिण्डांश सहित पिण्ड — इस प्रकार के पिण्ड में दो पिण्डांश का संयोजन रहता है, जैसे — रह्रूं और वौं दो पिण्डांश हैं। दोनों को मिलाकर एक पिण्ड बनता है। [RHUM और VAUM] प्रथम पिण्डांश चतुर्वर्णात्मक है और द्वितीय पिण्डांश त्रिवर्णात्मक है। दोनों अंश मिलकर के सप्तवर्णात्मक पिण्ड बनता है। (अनल-प्राणलोकेशान् व्यापिना पिण्डयेत् क्रमात्। वरुणं मूधरं चैव व्यापिना पिण्डयेत् क्रमात्। पिण्डोऽयं ज्ञानदः - (33-100, 101; पृ. 355)। याज्ञवल्क्य शिक्षा में सात प्रकार के पिण्ड बताए गये हैं - अयःपिण्ड, दारुपिण्ड, ऊर्णापिण्ड, ज्वालापिण्ड, मृत्पिण्ड, वायुपिण्ड और वज्रपिण्ड। इन भेदों के व्यावर्तक लक्षण भी दिये हैं - [2-91 से 93; पृ. 152-55]।

(3) संज्ञामंत्र — लक्ष्मी. में जिस मंत्र में प्रणव और नमः हो, उसे संज्ञामंत्र कहते हैं - [तत्तद्वाच्याभिधा संज्ञा नमःप्रणवसंयुता। -21 -13; पृ. 210]। ॐकार का संज्ञामंत्र "हंसः" मंत्र है - [अस्यैव संज्ञामंत्रोऽयं हंसो नाम महामनुः। 24-54 पृ. 239]। लक्ष्मीतंत्र में, **'ह्रीं स्वाहा'** मंत्र को भी ह्रीं का संज्ञामंत्र बताया गया है - [44-9, पृ. 529]। इन में प्रणव एवं नमः नहीं है, फिर भी उनको संज्ञामंत्र कहा है। जहाँ नमः प्रणव वाला लक्षण बताया है, वहाँ उदाहरण नहीं दीए हैं।

(4) पदमंत्र — जिसमें क्रिया एवं कारक का संयोग हो, स्तुति हो और संबोधन हो, अनेक अभिज्ञाओं से युक्त हो उसे पदमंत्र कहते हैं। [क्रियाकारक-संयोग-स्तुति-संबोध-लक्षणः। नानाभिज्ञासमायुक्तः पदात्मा मंत्र उच्यते - [21-13; 14] ॥ ॐकार के चार पदमंत्र है — (1) ॐविष्णवे नमः, (2) ॐ नमो नारायणाय, (3) ॐ नमो भगवते वासुदेवाय (4) ॐजितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन। नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज - [24-68, 69; पृ. 241-

42]। (5) ह्रीं का पदमंत्र बहुत लम्बा [50 पंक्तियों का] है - [44-15, पृ. 531-32]। [**वसु.** – अनुवादक ने (क) 21-13 श्लोक में संबोध का अर्थ ज्ञान बताया है, परंतु विमर्शिनीकारने उसी शब्द का अर्थ संबोधन बताया है। इसके आधार पर अनुमान हो सकता है कि, अनुवादक और विमर्शिनीकार भिन्न भिन्न है, अथवा असावधानी है। संबोधनपरक अर्थ योग्य है, ज्ञानपरक अर्थ योग्य नहीं है। (ख) ह्रीं के पदमंत्र में पदमंत्र का पूर्ण लक्षण घटित होता है। उपरान्त इसमें **ह्रीं, श्रीं** आदि बहुत बीज भी हैं। संज्ञामंत्र का 'नमः प्रणवसंयुता' लक्षण भी घटित होता है। (हंस मंत्र भी है)।]

मंत्र में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ भाव – बीज आदि चारों प्रकार के मंत्र सिद्धिप्रद हैं। यदि मंत्र के क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ का ज्ञान हो, तो मोह नहीं होता। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के ज्ञान से सिद्धिप्राप्ति शीघ्र होती है।

(क) बीजमंत्रों और पिण्डमंत्रों में –

बीजमंत्रों में –

(1) अकारयुक्त बीजमंत्रो में – यदि मंत्र अकारयुक्त हो, तो उसमें अकार स्वर क्षेत्रज्ञ है और बाकी का हिस्सा क्षेत्र है। [जैसे केवल गं बीजमंत्र की ही उपासना में अकार क्षेत्र है और ग् व्यंजन एवं बिन्दुभाग क्षेत्र है।]

(2) अकारभिन्नस्वरात्मक बीजमंत्रो में – यदि मंत्र में अकार के अलावा अन्य स्वर हैं, तो स्वरभाग क्षेत्रज्ञ है और बाकी का हिस्सा क्षेत्र है। [जैसे (क) **क्ष्म्रीं** यह बीजमंत्र है। इसमें ई क्षेत्रज्ञ है और बाकी का हिस्सा (क् ष् म् र् और बिन्दु) क्षेत्र है। (ख) **व्रूं** चतुर्वर्णात्मक पिण्डमंत्र है, इसमें ऊ क्षेत्रज्ञ है और व् र् एवं बिन्दुभाग क्षेत्र है।]

पिण्डमंत्रो में –

(1) पिण्डमंत्र यदि स्वरयुक्त हैं तो स्वरभाग क्षेत्रज्ञ है और बाकी का हिस्सा क्षेत्र है। [जैसे व्रूं। इसमें ऊ क्षेत्रज्ञ है, बाकी भाग क्षेत्र है।] (2) पिण्डमंत्र यदि स्वररहित हैं, [अर्थात् इसमें केवल व्यंजन ही हो] तो प्रथम व्यंजन क्षेत्रज्ञ है और बाकी व्यंजन क्षेत्र है। [जैसे क्ष्म्लां में क् ष् म् ल् भाग चतुर्वर्णात्मक पिण्ड है, इसमें **क्** व्यंजन क्षेत्रज्ञ है और बाकी के ष् म् ल् व्यंजन क्षेत्र हैं। [**वसु.** – क्ष्म्लां वास्तव में बीजमंत्र है। इसकी विचारणा यदि बीजमंत्र की

दृष्टि से की जाए तो **आ** स्वर क्षेत्रज्ञ है और बाकी भाग (क् ष् म् ल् और बिन्दु) क्षेत्र है ।]

केवल स्वरात्मक बीजमंत्र एवं पिण्डमंत्रों में –

(1) यदि एकाधिक मात्राएँ हैं, तो प्रथम मात्रा क्षेत्रज्ञ है और शेष मात्राएँ या मात्रा क्षेत्र हैं । [जैसे त्रिमात्र बीजमंत्र में प्रथम मात्रा क्षेत्रज्ञ है और बाकी दो मात्राएँ क्षेत्र हैं । [प्रणवं तु प्लुतं कुर्यात् या. शि. 1-17, प्लुतं त्रिमात्रिकमिति व्याख्याकारः] । ई केवलस्वरात्मक पिण्ड है । इसमें प्रथम मात्रा क्षेत्रज्ञ है और द्वितीय मात्रा क्षेत्र है ।]

(2) यदि एक ही मात्रा हो, तो संस्कार भाग क्षेत्रज्ञ है और उच्चार्यमाण स्वरभाग क्षेत्र है । [जैसे याज्ञवल्क्य शिक्षा में **भूः** व्याहृति की एक मात्रा बताई है । [या.शि. 1-17] यहाँ भूः ऐसा उच्चार्यमाण भाग क्षेत्र है और संस्कारभाग क्षेत्रज्ञ है ।]

(ख) सबीज मंत्रो में – बीजयुक्त मंत्र में बीज क्षेत्रज्ञ है और बाकी का भाग क्षेत्र है । [जैसे 'ॐ गं गणपतये नमः' मंत्र में गं बीजभाग क्षेत्रज्ञ है और **गणपतये नमः** भाग क्षेत्र है ।]

(ग) बीजरहित मंत्रों में – बीजरहित मंत्रों में आद्य वर्ण क्षेत्रज्ञ है और बाकी भाग क्षेत्र है । [जैसे ॐ विष्णवे नमः मंत्र में **वि** क्षेत्रज्ञ है और बाकी भाग क्षेत्र है ।] - [21-15 से 22; पृ. 210-12] । [श्लोक 21-20 का भाषान्तर गलत है ।]

[ङ] पदाध्वा

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्य ये चार अवस्थाएँ पदाध्वा है - [22-22, से 26; पृ. 219-20] ।

[च] भुवनाध्वा

सुषुप्ति , स्वप्न और जाग्रत् ये तीन अवस्थाएँ जब अशुद्ध गति को प्राप्त होती हैं, तब उन तीन मलीन अवस्थाओं को भुवनाध्वा कहते हैं । इस भुवनाध्वा में माया से लेकर पृथ्वी पर्यन्त भुवन पद्धति है - [22-27; 28; पृ. 220]।

वह चौदह विभागवाला है - (21-25; पृ. 212) । [**वसु.** – 21-24 से 26 का भाषान्तर त्रुटिपूर्ण है ।]

अध्वों का क्रम और अध्वशुद्धि

अध्वक्रम – भगवती नारायणी षडध्वरूपा है । इन षडध्वों का उत्पत्ति क्रम वर्णाध्वा, कलाध्वा, तत्त्वाध्वा, मंत्राध्वा, पदाध्वा और भुवनाध्वा है - [22-9 से 28; पृ. 217-20] । साधक जब मोक्ष की सिढ़ी पर चलने को तैयार होता है, तब उत्पत्ति-क्रम का अन्तिम सोपान उसके लिए प्रथम बन जाता है । अतः मंत्राध्वा में स्थित साधक मंत्र की कृपा पाकर क्रम से भुवनाध्वा, पदाध्वा, तत्त्वाध्वा, कलाध्वा और वर्णाध्वा को पार करके लक्ष्मीनारायणात्मक ब्रह्म में पहुँच जाता है - [21-24 से 28; पृ. 212] ।

[**वसु.** – शारदातिलक में दीक्षा-प्रसंग में अध्वशुद्धि का विधान है, जिसका क्रम कलाध्वा, तत्त्वाध्वा, भुवनाध्वा, वर्णाध्वा, पदाध्वा और मंत्राध्वा है । कलाध्वा निवृत्ति आदि पाँच कलाओंवाला है । तत्त्वाध्वा शाक्ती, शैवी और वैष्णवी दीक्षा प्रसंग में भिन्न भिन्न संख्यायुक्त तत्त्वोंवाला है । जैसे शैव परंपरा में शिव आदि 26 [36 होना चाहिए] तत्त्व हैं । वैष्णव परंपरा में जीव आदि 22 [32 होना चाहिए] तत्त्व हैं । भुवनाध्वा में आकाश आदि पाँच भुवन हैं । वर्णाध्वा में अकार से क्षकार तक के 50 वर्ण हैं । वर्णों के समुदाय को पदाध्वा कहते हैं । और मंत्रों के समूह को मंत्राध्वा कहते हैं । इन छः अध्वों का शोधन दीक्षार्थी-शिष्य के पैर, गुह्य, नाभि, हृदय, ललाट और मूर्धा में क्रम से किया जाता है - [शारदा. 5-79 से 94; पृ. 181-83], जैसे शिष्य के पैरों में कलाध्वा, गुह्य में तत्त्वाध्वा, नाभि में भुवनाध्वा, हृदय में वर्णाध्वा, ललाट में पदाध्वा और मूर्धा में मंत्राध्वा का स्मरण करके उन छः अध्वों का शोधन क्रम से किया जाता है - [राघव. शारदा 5-93; पृ. 183] ।

वैष्णव तंत्रों में मूर्घन्य माने गए गौतमीय महातंत्र में दीक्षा-प्रसंग में वर्णाध्वा, कलाध्वा, पदाध्वा, तत्त्वाध्वा, मंत्राध्वा और भुवनाध्वा ऐसा क्रम है । वर्णों का समूह वर्णाध्वा है । कलाध्वा का स्वरूप वहाँ बताया नहीं है । पदों का समूह पदाध्वा है । तत्त्वाध्वा पचीस तत्त्वोंवाला हैं, किन्तु तत्त्व-वेत्ताओं के मत में वैष्णवतत्त्वों की संख्या 36 हैं । वैदिक और तांत्रिक मंत्रों का समूह मंत्राध्वा है और चौदह भुवन भुवनाध्वा हैं । उनका शुद्धिकरण आवश्यक है - [13-

4 से 8; पृ. 101]। [इस से फलित होता है कि ब्रह्मप्राप्ति की प्रक्रिया और मंत्र दीक्षा की प्रक्रिया में षडध्वा का क्रम भिन्न भिन्न है।]

अध्वशुद्धि – लक्ष्मीतंत्रोक्त दीक्षाविधि में अध्वशुद्धि के लिए मूलमंत्र सहित अध्वमंत्रों से 100 या दश दश तिलाहुति का विधान है - [41-31; पृ.489], परंतु वहाँ अध्वक्रम नहीं दिया है। यहाँ ऐसा अनुमान किया जा सकता हैं कि, दीक्षा प्रसंग में लक्ष्मीतंत्रोक्त अध्वक्रम ही अभिप्रेत है। अध्वशुद्धि के लिए होम का विधान शारदातिलक, गौतमीय महातंत्र, श्रीविद्यार्णव तंत्र आदि बहुत से तंत्र ग्रंथों में पाया जाता है। [**वसु.** – षडध्वा का स्वरूप, क्रम और शुद्धिकरण आदि का तुलनात्मक अध्ययन भविष्य में स्वतंत्र लघु-शोध-पत्र में किया जाएगा। अस्तु ।]

मंत्रोपासना से भोग एवं मोक्ष – योग के कठिनतम मार्ग की अपेक्षा मंत्रोपासना का मार्ग निष्कंटक एवं सरलतम है।

(क) भोगप्राप्ति – विविध कामनाओं और आसक्ति से युक्त साधक जब अपने सद्गुरु के मार्गदर्शन में मंत्रानुष्ठान करता है, तब भुवनाध्वा और पदाध्वा में स्थित उस साधक को मंत्रशक्ति विविध भोग-विलास देकर प्रसन्न करती है।

(ख) मोक्षप्राप्ति – अपने सदगुरु की दृष्टि में रहता हुआ मोक्षेच्छु साधक जब अपनी इन्द्रियों को संयत करता है, तब मंत्रशक्ति उसको सर्वप्रथम भुवनाध्वा और पदाध्वा से पार करती है। [अर्थात् साधक के भोगविलास कम होते होते छूट जाते हैं।] उसके बाद वह मंत्रशक्ति उस साधक के चित्त में पग पग पर वैराग्य जगाती है। [जैसे जैसे साधक के वैराग्य में वृद्धि होती रहे, वैसे वैसे उस साधक को क्रम से तत्त्वाध्वा, कलाध्वा से पार करके वर्णाध्वा में पहुँचाती है। अन्त में मंत्र की कृपा से वह साधक सभी बन्धनों से मुक्त बन कर लक्ष्मीनारायणात्मक ब्रह्म में पहुँच जाता है - 21-24 से 28; पृ. 212]।

लक्ष्मीनारायण ब्रह्म – लक्ष्मीनारायण ब्रह्म तमस् से उस पार है, शक्ति-शक्तिमान-भाव से स्थित है, सर्वात्मक है, सर्व का अतिक्रमण करके स्थित है, सर्व का नियंता है, चिदानन्दघन है, परिपूर्णषाड्गुण्यमय है, सर्व भावों का अन्तरात्मा होने के कारण अहंपदवाच्य है। उस ब्रह्म का शक्तिमान-भाग नारायण है, जो अहंपदवाच्य है और शक्ति-भाग लक्ष्मी है, जो उस अहं की अहंता है

-[36-36 से 41; पृ. 405-6]। [ॐकार की उपासना मोक्षप्रद है और ह्रीं, श्रीं आदि की उपासना भोग एवं मोक्ष दोनों देनेवाली है - 18-49 से 51; पृ. 187-88] ।

षडध्वा और षट्कोश – (1) स्तिमित ब्रह्म कदाचित् भवत् और भाव की व्यवस्था के लिए जब उन्मिषित होता है, तब भवत्-ब्रह्म से भावात्मिका नारायणी षडध्वा के रूप में उदित होती है । यहाँ भवत्-ब्रह्म की इच्छा रहती है - [22-7 से 9]। (2) स्तिमित षाड्गुण्यपूर्ण ब्रह्म की अहंतारूपा नारायणी में जब सर्जनेच्छा जगती है, तब वह षट्कोशता को प्राप्त होती है - [6-1 से 3]। (3) षडध्वा और षट्कोश दोनों की कक्षा स्तिमित्षाड्गुण्यपूर्ण ब्रह्म के बाद की है इतनी समानता है । षडध्वा के उदय में भवत् ब्रह्म की इच्छा है, जबकि षट्कोश के उदय में नारायणी की इच्छा है, इतनी दोनों में भिन्नता है।

मंत्ररूपा नारायणी

नारायणी सभी जीवों का हित करने के लिए शब्दब्रह्ममयी बनकर जब मंत्रों का रूप धारण करती है, तब वह सर्व प्रथम ॐकार के [तार] के स्वरूप में प्रकट होती है ।

1 ॐकार

ॐकार के पांच अवयव हैं - अ + उ + म् + बिन्दु + नाद (-देखो पृ. 166 से) । अ से बिन्दु तक के चार अवयवों की विभाग-विहीनता को नाद कहते हैं । इन पाँच अवयवों में अकार अनिरुद्ध है । उकार प्रद्युम्न है । म् संकर्षण है । बिन्दु वासुदेव है। [नाद की पराकाष्ठा] = नादान्त आकाश रूपा जो सूक्ष्म शक्ति है, वह शब्दब्रह्ममयी नारायणी है । और अ, उ, म्, बिन्दु के अविभाग विहीनता रूप नाद के विराम के बाद जो स्वयं स्फुट होता है, वह लक्ष्मीनारायण नाम का परम ब्रह्म है, जो विष्णु का परम धाम है - [24-3 से 12, पृ. 230-32]। अः+अं की सन्धि से ओम्-रूप तेज उदित होता है- [24-13]। [विमर्शिनीकार ने ॐ की सिद्धि में विसर्ग का ओ और अं का पूर्वरूप बताया है ।]

ॐकार की सृष्टि – ॐकार के अकार आदि पाँच अवयवों में से अकार

से सभी शब्दों की, उकार से तीन तेजों की [सूर्य, सोम, अग्नि] और म् द्वारा पृथिवी से प्रकृति पर्यन्त के तत्वों की उत्पत्ति हुई है । अर्धमात्रा चिन्मयी ज्योतिर्मयी परमा कला है - [24-21, 22, पृ. 233-34] ।

ॐकार के अ, उ, म् इन तीन वर्णों से तीन व्याहृतियाँ - [भूः, भुवः, स्वः] उत्पन्न हुईं हैं । इन व्याहृतियों से [त्रिपदा] - सावित्री उत्पन्न हुईं । सावित्री के [तीन] पादों से तीन वेद [ऋग्, यजुः, साम] उत्पन्न हुए - [24-45,46; और 29-27] । इस तरह समग्र वैदिक एवं लौकिक वाङ्मय ॐकार का स्वरूपभूत है - [24-46 से 47; पृ. 237-38] । [**वसु.** — अनुवाद त्रुटिपूर्ण है ।] (तीन) व्याहृतियों के उच्चारण बाद यजुर्वेदमय मंत्र के जप से अभिचारजन्य पापों से भी मुक्ति मिलती है - [29-25; पृ. 285] । [**वसु.** — अर्थात् सव्याहृति मंत्रजप अधिक फलप्रद है ।]

ॐकार की साढे तीन मात्राएँ हैं । इनमें से तीन मात्राओं से तीन अग्नि, तीन लोक, तीन वेद, तीन गुण, तीन देव, तीन व्यूह, तीन वर्ण और तीन स्वर आदि उत्पन्न हुए हैं । इतना ही नहीं, इस जगत में जो कोई तीन के समूह में हैं, वे सभी इन तीन मात्राओं से ही हैं । अर्धमात्रा निरंजना है - [24-18 से 20, पृ. 233] । [रात्रि-सूक्त में अर्धमात्रा को अनुच्चार्या कहा है ।] ॐकार ज्ञानियों और अज्ञानियों की शरण हैं - [24-51, पृ. 238], वह महाबीज है, शब्दों की प्रकृति है, शब्दब्रह्म है, और परमधाम है - [24-48; पृ. 238] । [**वसु.** — या. शि. में -- प्रणवं तु प्लुतं कुर्याद् । त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो. या. शि. 1-16, 17, अर्थात् वहाँ ॐ त्रिमात्रात्मक है ।]

सावित्रीमंत्र — यह मंत्र वेदों की जननी है । इस मंत्र का आधार [त्रिवर्णात्मक] ॐकार है । इस मंत्र की तीन नाडियाँ भूः, भुवः, स्वः (व्याहृतियाँ) हैं । तत् आदि वर्ण इस मंत्र के प्राण हैं । शिरोमंत्र =(ॐ आपोज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्-पा.गृ.पृ.195) । इस (मंत्र) का मस्तक है । सावित्री मंत्र वर्णों की और वेदों की जननी है । यह मंत्र ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है और ब्रह्म में ही विलीन होता है । यह मंत्र नारायणीमयी कला है । सूर्यमयी शक्ति है । [गायन्तं महद् भयात् त्रायते इति गायत्री ।] - [29-27 से 31, पृ. 285-86] ।

ॐकार का अनुष्ठान

सद्गुरु से ॐकार की दीक्षा लेकर, देहगत अपनी आत्मा में स्थित सद्गुरु का चिन्तन करें। फिर उनके पास अंग-उपांग सहित का क्रम सीख लें - [24-33, 25, 34; पृ. 234-36]।

अनुष्ठान के नियम – उसके बाद (1) अपने सद्गुरु की आज्ञा लेकर, (2) किसी बड़ी नदी का तट, या सिद्धपीठ, या बीहड पलाशवन में जाए। (3) वहाँ तीन बार स्नान करें। (4) जितेन्द्रिय बनकर पूर्णरूप से [मन, वचन, कर्म से] संयम का पालन करें। (5) दूध, या भिक्षान्न, या यावक (यव निर्मित भोजन अथवा प्रायश्चित्तमयूख के अनुसार गाय को यव खिलाकर उसके गोबर में से निकले यवों को इकट्ठा कर, सुखाकर, उनका भोजन बनाकर उपयोग करे- [इति शंखः - प्राय.मयूख, पृ. 43]। (6) कुश के आसन पर बैठे। [परिपक्व दर्भ को कुश कहते हैं - प्रसूतास्तु कुशाः स्मृताः।] एवं कुश की शय्या में शयन करें। (7) पलाश का दंड धारण करें। और (8) कृष्णमृगचर्म ओढें - [24-35 से 38]।

अनुष्ठान की पद्धति – (1) नारायणीमय बन कर नारायणी में ही चित्त रखें और गुरु के बताए मार्ग [अनुष्ठान पद्धति] पर चलें - [24-38]। (2) **न्यास** - ज्ञानादि गुणों का [षाड्गुण्य का] उपयोग-युक्त, प्रणवादि-नमोन्त मंत्रों से अंग न्यास एवं उपांग न्यास करें - [24-71; पृ. 242]। [यहाँ न्यास-मंत्र नहीं दिये हैं, इसलिए ह्रींकार उपासना प्रसंग में दिये गए अंग-उपांग न्यास यहाँ कर सकते हैं - [33-2 से 13; पृ. 335-37]। (3) **जप** - [प्रतिदिन] योगपरायण बनकर सम्यक् ज्ञान एवं समाधि से युक्त होकर मौन रखते हुए दश लाख प्रणव जप करें। (4) **होम** - जप पूरे होने पर पत्तों से या समिधाओं से या घी से एक लाख [दशांश] आहुतियाँ दें - [24-39 से 40; पृ. 236-37]। [वसु.- किस वृक्ष के पत्ते और किसकी समिधा लेना है, इसकी स्पष्टता नहीं है। यहाँ पलाश वन का उल्लेख होने से एवं पालाश समिधाएँ शास्त्रसम्मत होने से पलाश के पत्ते या पलाश की समिधाओं से होम किया जा सकता है। अपने गुरु के उपदेश अनुसार चलें।]

अनुष्ठान का फल – प्रणव मंत्र का सुचारु रूप से अनुष्ठान करने से उपासक के चित्त में लक्ष्मीनारायणात्मक-सामरस्य प्रकाशित होता है। वह साधक

जीवन्मुक्त होकर मात्र अपनी दृष्टि से जगत को पवित्र करता है। उसे वैदिक एवं लौकिक सर्व प्रकार के मंत्र सिद्ध होते हैं। सभी वेदों, विद्याओं, कलाओं एवं सिद्धान्तों में निष्णात बन जाता है। सभी मंत्रों का यथार्थ प्रयोगों का शास्त्रसम्मत योग्य निर्णय कर सकता है - [24-40 से 44; पृ. 237]। [**वसु.** — इसका अर्थ यह हुआ कि किसी भी मंत्र की उपासना शुरू करने से पहले ॐकार का सम्यक् अनुष्ठान करना नितान्त आवश्यक है, और परिपक्व सिद्ध-उपासक ही मंत्रप्रयोगों का सही निर्णय ले सकता है।]

ॐकार के मंत्र

ॐकार के प्रासाद आदि विविध मंत्र हैं, जैसे -

(क) प्रासादमंत्र — ॐकार के साथ हकार एवं औकार को संयुक्त करने से "हौं" ऐसा प्रासादमंत्र बनता है। वह सभी तत्त्वों का सनातन पिण्ड है - [24-52, 53; पृ. 238-39]। (इस मंत्र की उपासना में विनियोग आदि सभी क्रियाएँ ॐकार की तरह करें।)

(ख) संज्ञामंत्र — ॐकार का संज्ञामंत्र "**हंसः**" है, जिसे महामंत्र कहते हैं। इस मंत्र में हकार भोक्ता है, एवं नारायणमय है, जबकि सकार सोम है, भोग्य है एवं श्रीमय है। इन अग्नि और सोम के मध्य में दो बिन्दु-धर्म हैं। मूलाधार से लेकर मूर्धा तक के भाग में 'हकार' का उदय होता है और उसके बाद मुख से वायु के साथ 'सकार' बाहर निकलता है। यह अजपा विद्या है। चौबीस घंटों में यह जप 21600 बार अपने आप होता रहता है। [अर्थात् एक मिनट में **15** जप होता रहता है।] इस साधना की फलप्राप्ति के लिए सुबह उठते ही संकल्प करें - [24-54 से 63]। [**वसु.** — संत समुदाय इस साधना को उच्चस्तरीय साधना कहते हैं। एक अनपढ, अज्ञानी, दरिद्र, किसान ने सुबह-शाम (केवल दो बार) दूध पीकर, छः मास तक मौन रखकर, श्वास-निःश्वास पर अपने मन को जोड दिया और आत्मा के प्रदेश की समझ आ गई। उन्होंने पूर्ण रूप से अपरिग्रह व्रत, अयाचक व्रत पूरे जीवनकाल तक रखा। मैं उनको पहचानता हूँ। बौद्ध परंपरा के एवं प्रेक्षाध्यान के समर्थक इस साधना का प्रभाव जानते हैं। इस पद्धति में न्यासादि नहीं करे तो भी फल मिलता है। परंतु यदि न्यासादि किये जाए तो अधिक फल मिलता है।]

न्यास — यहाँ हंस-मंत्र-उपासना में पूर्णरूप से हृदयादि-मंत्र नहीं दिये गए हैं, केवल इन मंत्रों को बनाने की पद्धति ही दी गई है, जिसके अनुसार यहाँ हृदयादि

न्यासमंत्र दिये गए हैं । [तंत्र सिद्धान्त अनुसार पंचांग न्यास में नेत्रन्यास नहीं किया जाता है - [मंत्रमहो. 21-149] और [गौतमीय-महा. 2-47; पृ. 8]। [वसु. — ॐ हकाराय हृदयाय नमः । ॐ सकाराय शिरसे स्वाहा । ॐ हकाराय शिखायै वौषट् । ॐ सकाराय कवचाय हुं फट् । ॐ हंसः अस्त्राय फट् ।] [विन्यसेत् पञ्च चाङ्गानि तेषां रूपं निबोध मे । सूर्यसोमौ चतुर्थ्यन्तौ नमः स्वाहासमन्वितौ ॥ निरंजनौ निराभासौ वौषड्हुंफडन्तकौ । फडन्तं मूल-मेवास्त्रमित्यङ्गान्यस्य पंच तु - 24-64, 65; पृ. 241] ॥

[वसु. — ह्रीं के उपासना-प्रसंग में हृदयादिमंत्रों में ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, तेज और वीर्य इन षाड्गुण्य- वाचक शब्दों का भी उपयोग करने का विधान है — (प्रत्यक्ष श्रवण है) - [33-2 से 10, पृ. 335-36] । वहाँ भी (शिखायै) वौषट् कहा है, परंतु कवचाय हुं फट् नहीं है, कवचाय हुम् इतना ही है । मंत्रमहोदधि - [21-146 से 57, पृ. 199-200]; नारदपंचरात्र - [4-3-8, पृ. 181]; गौतमीय महातंत्र - [2-49, 50; पृ. 8] आदि तंत्र ग्रंथों में (शिखायै) **वषट्** ही मिलता है, वौषट् नहीं मिलता ॥ उपर्युक्त दोनों वैष्णव तंत्रों में 'कवचाय हुम्' इतना ही मिलता है, हुं फट् नहीं मिलता । इन प्रमाणों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि हंस मंत्रोपासना एवं ह्रीं उपासना में (शिखायै) वषट् और कवचाय हुम् होना चाहिए । '**बौषड्हुंफडन्तकौ**' का निर्णय विद्वद्गण करें । अस्तु । विशेष चर्चा पृ. 59 में देखो ।]

(ग) ॐकारका परमात्म मंत्र — हंस और 'सोऽहं' ये दोनों मंत्र ॐकार के संज्ञामंत्र हैं । हंसः मंत्र के वर्णों को उलट देने से **सः** + हं बनता है । फिर सन्धि करने से **सोऽहं** ऐसा परमात्म मंत्र बनता है । इसकी उपासना योगक्रिया है । इसमें सकार रूपा भोग्या शक्ति का चिन्तन स्मरण करके उसे हकार रूप भोक्ता सूर्य में जोडा जाता है । (अपने गुरु से उसे सीख लें । इस की उपासना पद्धति ॐकारोपासना की तरह है - (शिष्टं प्रणववच्चिन्त्यं 24-66, 67, पृ. 241) । [वसु. — (साधक-जन आत्मसाक्षात्कार के लिए इसकी उपासना करते हैं ।) (इन दोनों मंत्रों की विशेष साधना, जो परमगुप्त है, जिससे इष्टसाक्षात्कार एवं आत्मसाक्षात्कार हो सकता है, अपने गुरु से सीख लें ।)]

(घ) ॐकार के पदमंत्र — ॐकार के चार पदमंत्र हैं, - (1) ॐ विष्णवे नमः । (2) ॐ नमो नारायणाय । (3) ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । और (4) ॐ जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष

पूर्वज - (24-67 से 70, पृ. 241-42)। ॐकार और ये चार सहित पाँच मंत्र व्यापक मंत्र है। इन से कुछ असाध्य नहीं है - [24-74; 75, पृ. 243]। [**वसु.** — जितं ते. मंत्र - [24-69] की विमर्शिनी में ॐ पुण्डरीकाक्षाय नमः। ॐ विश्वभावनाय नमः। ॐ हृषीकेशाय नमः। ॐ महापुरुष-पूर्वजाय नमः। ऐसे चार मंत्र दिये हैं, जो विचारणीय है, क्योंकि जितन्ते. मंत्र के निरूपण प्रसंग में 'पदमंत्रश्चतुर्थोऽयं' - [24-70] ऐसा एक वचन का प्रयोग किया गया है। यदि जितन्ते. मंत्र में चार मंत्र की संख्या अभिप्रेत होती, तो 'पदमंत्रास्तु चत्वारः' ऐसा बहु-वचनात्मक प्रयोग होता। इसके आधार पर ऐसा अनुमान हो सकता है कि, हिन्दी अनुवादकर्ता और विमर्शिनीकार भिन्न भिन्न होंगे। विमर्शिनी में त्रुटियाँ अल्पतम हैं, जब कि हिन्दी अनुवाद में तंत्र सिद्धान्तों की नासमझ, असावधानी एवं अतिशीघ्रता प्रतीत होती है।]

न्यास — अंगमंत्र प्रणवादि नमोऽन्त रखें। इन मंत्रों में ज्ञानादि छः गुणों के साथ मंत्र के अक्षरों को जोडने का विधान यहाँ है। इसी तरह उपांग मंत्रों को भी समझें - [24-71]। [**वसु.** — ज्ञानादि गुणों का क्रम ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज ऐसा है - [4-13, पृ. 39], परन्तु ह्रींकारोपासना में अंगमंत्रों में ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति , बल, तेज और वीर्य ऐसा भिन्न क्रम है - [33-4 से 10]। ॐकारोपासना प्रसंग में क्रम-निर्देश नहीं दिया है। ऐसी स्थिति में ज्ञानादिके क्रम के बारे में ॐ की उपासना में अपनी गुरु परंपरा के अनुसार चला जाए।]

न्यूनाक्षर मंत्र में उपांग न्यास — (1) कम अक्षर हो तो अन्तिम वर्ण की पुनरुक्ति करके बाकी के उपांगों के मंत्र बनाए जाए। (2) अधिक अक्षरवाला मंत्र हो तो अंतिम उपांग के मंत्र में बाकी के सभी वर्णों को जोड दें। [न्यूनाक्षरस्य मंत्रस्य वर्णेन चरमेण तु। उपांग-कल्पना कार्या तत्तद्गुणपदैर्युता ॥ तथैव स्फीत-वर्णस्य शिष्टैस्तु द्वादशाधिकैः। समस्तैश्चरमोपांगं कल्पयेत् तेजसा सह - [24-72; 73]।

[**वसु. — हंस एवं सोऽहं मंत्र की विशेष गुप्त साधना** — (1) हंस साधना में पहले पूरक, फिर रेचक है; जबकि सोऽहं साधना में पहले रेचक फिर पूरक है। (2) (क) पूरक, (ख) विश्राम, (ग) रेचक, (घ) विराम ऐसा क्रम युक्ति -संगत है। सोऽहं में रेचक से शुरूआत है। (3) इस साधना के प्रथम चरण में हकार एवं सकार के श्रवण में चेतना को जोडना है; द्वितीय चरण में श्वास

की आवन एवं जावन पर और तृतीय चरण में अपने प्राणतत्त्व के आने जाने पर अपनी चेतना को जोडना है । (4) अपने देह से बाहर निकलकर वापस प्रवेश करने की दो पद्धतियाँ है — (क) दक्षिण भाग-गत अग्निमार्ग से बाहर निकलना है और वाम भागगत सोममार्ग से प्रवेश करना है । (ख) ऊर्ध्वमार्ग से निकलकर ऊर्ध्वमार्ग से ही प्रवेश करना है - [49-112 से 28, पृ. 597-600]। (5) लक्ष्मीतंत्र में मुख से निकालने की स्पष्ट सूचना है [विसृजेन्मुखतो वर्णं द्वितीयं भोग्यसंज्ञकम् - 24-57; पृ. 239], फिर भी नासिका से पूरक-रेचक कर सकते हैं ऐसा अनुभव है । (6) (क) इस साधना में किस पद्धति से निकलना है और प्रवेश करना है ? (ख) कौन से मार्ग का उपयोग करना है ? (ग) कहाँ पहुँचना है ? वहाँ क्या रखना है ? या लेना है ? कितना रुकना है ? (घ) अग्निसोम मार्ग का उपयोग कब करना है? ऊर्ध्वमार्ग का उपयोग कब करना है? ये सभी बातें अपने सद्गुरु से सीख लें । (ङ) यह योगमार्ग की जटिल प्रक्रिया है और इसका दुरुपयोग होने की भी संभावना है, इसलिए जानबूझकर इस गुप्त साधना की स्पष्टता यहाँ नहीं की है । अस्तु ।]

2 ह्रीँकार

(अ) ॐ, ह्रीं, श्रीं और ऐं आदि बीजों का संबंध ब्रह्म की चार कक्षाओं के साथ है, जैसे कि -

(क) **ॐ** - स्तिमितभवद्-भावात्मक एवं स्तिमितशक्तिमत्शक्तिरूप सूक्ष्म आद्य -परम-ब्रह्म में ॐकार रहता है और अपनी गति का विस्तार करता है । इस ब्रह्म का वर्णन पहले किया गया है ।

(ख) **ह्रीँ** - उस परम ब्रह्म परमात्मा के भवद् एवं भावात्मक उन्मेष में ह्रींकार स्थित है । [श्रीं, ऐं, क्लीं, औः, क्ष्म्रीं ये पाँच रश्मियाँ ह्रीं की हैं; 26-42, पृ. 260]

(ग) **श्रीँ** - इस भवद्-भावात्मक ब्रह्म का सर्जनेच्छावशात् [प्रथम] अवरोहण होता है, जो शान्तरूप है । उस शान्तभाव में **श्रीं** स्थित है ।

(घ) **ऐँ आदि बीज** - उस ब्रह्म का शक्ति नामक द्वितीय अवरोहण में ऐं, क्लीं, औः, क्ष्म्रीं आदि बीज स्थित हैं - [26-8 से 12; पृ. 254] ।

[**वसु.** — इस तरह ॐकार की कक्षा सर्वोच्च है । ह्रीँकार उसके नीचे की

द्वितीय कक्षा है। उसके नीचे की तृतीय कक्षा **श्रीँ** की है और उसके नीचे की चोथी कक्षा **ऐँ** आदि बीजों की है।]

(आ) सांख्य आदि मतों में ह्रीँकार – ह्रीँकार (क) सांख्य का एक तत्त्व है। (ख) वह समाधि में ध्येय है। (ग) शैवों का छत्तीसवाँ (अन्तिम) तत्त्व है। (घ) वेदज्ञों की सौरमण्डलस्था चिन्त्या शक्ति है। (ङ) लोकायतिकों के मतमें सर्वांग सुन्दरी है। (च) क्षणभंगवादियों की निर्विषया बुद्धि है। (छ) जैनों (आर्हतों) की यक्षिणी है - [25-40 से 44; पृ. 250-51] और (ज) लक्ष्मीतंत्र के अनुसार वह शब्दब्रह्म में स्फुरित होता है। उसमें लक्ष्मीनारायण-युगल का ध्यान हृदयगुहा में करें। नारायण चतुर्भुज है और लक्ष्मी उनके अंक में वामभाग में है - [36-58, 59, 67]। [**वसु.** – विभिन्न मतों में ह्रींकार का स्वीकार हुआ है। ऐसे भी साधक देखे गए हैं, जो केवल ह्रींकार की ही उपासना करके इच्छित फलों की प्राप्ति करते हैं।]

(इ) ह्रीँ के विविध नाम – भिन्न भिन्न शास्त्रों में ह्रींकार के विभिन्न नामों का उल्लेख है, जैसे कि - परमा तारिका, तारिणी, लक्ष्मी, पद्मा, महालक्ष्मी, तारा, गौरी, निरंजना, चिच्छक्ति, शान्ति, घोषणी, कामधेनु, महाधेनु, जगद्योनि, विभावरी हृल्लेखा, भुवनेश्वरी और परमात्मा में स्थित शक्ति आदि - [25-45 से 48; पृ. 251]।

(उ) ह्रीं के तीन रूप

भवसागर को पार करानेवाली ह्रीं देवी के मुख्यतः तीन रूप हैं - (क) स्थूल (ख) सूक्ष्म और (ग) पर। इन तीन रूपों में प्रत्येक रूप की तीन तीन कक्षाएँ हैं-स्थूल, सूक्ष्म एवं पर।

(क) ह्रीँ का स्थूलरूप – ह्रीँ का (अ) पंचवर्णात्मक (ह्, र्, ई, बिन्दु, नाद) और (आ) चतुर्वर्णात्मक [ह्, र्, ई, बिन्दु;] - [32-2; 3; और 24-6] रूप को स्थूल कहा गया है। इस स्थूल रूप की तीन कक्षाएँ हैं –
स्थूलरूप की स्थूल कक्षा – सृष्टि आदि कर्म करने के बाद व्योमस्थ परतत्त्व में स्थित यह ह्रीं-देवी सृष्टि-स्थिति-संहार के कारणभूत ह (सूर्य) में आश्रित हो जाती है।
स्थूल रूप की सूक्ष्म कक्षा – पाँच कृत्यों [सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह] को करनेवाली यह ह्रीं देवी अपने र् (अग्निभाव) का आश्रय लेकर, अपनी श्री (कान्ति) से (विष्णु) देव को अनुप्राणित करती है।

स्थूल रूप की परा कक्षा – भोक्ता, भोग्य आदि समग्र भुवन को अपनी बुद्धि से धारण करती हुई यह (ह्रीं) देवी हं (= व्यापिनं-परमात्मा) में स्थित रहती है - [32-2 से 11] ।

(ख) ह्रीं देवी का सूक्ष्म रूप – ह्, र्, ई इन तीन वर्णवाली ह्रीं देवी के सूक्ष्म रूप की तीन कक्षाएँ हैं --

सूक्ष्म रूप की स्थूल कक्षा – निर्माण के योग्य (सृज्य) अशुद्ध वर्ग में यह देवी स्थित रहती है ।

सूक्ष्म रूप की सूक्ष्म कक्षा – निर्माण के योग्य शुद्ध वर्ग में यह देवी स्थित रहती है ।

सूक्ष्म रूप की परा कक्षा – काल द्वारा जिसका कलन शक्य नहीं है ऐसी यह देवी बिन्दुयुक्त हकार में स्थित रहती है - [32-12 से 14] ।

(ग) ह्रीं देवी का पररूप –

ह्रीं गत ई (ईकार) इस देवी का पर-रूप है - [32-28] निष्कला, निरंजना इस विष्णु-संज्ञक पर-रूप वाली ह्रीं के विविध नाम शास्त्रों में कहे गए हैं, जैसेकि आद्या शक्ति, योगप्रदा-भ्रमरी, अनाहता, अघोषा, निर्मर्यादा, नादसंभूता, शब्दब्रह्म, मातृकाओं की जननी, कला, प्राणपत्नी, अमृत की नाभि, परमधृति, प्राणवत्सला, तरुणी, अरूपा, रूपवती, मनोमयी, [आदि नाम गुणसूचक प्रतीत होते हैं ।] कुंडलिनी, गायत्री, गौरी, शची, देवी, सरस्वती, वृषाकपायी, सत्या, इन्द्रपत्नी, महाधेनु, देवनन्दिनी, अदिति, रुद्रजननी, वसुओं की हितेच्छु, आदित्यों की बहन, इडा, रति, गुरुधात्री, मही, विश्रुति, (वेद) त्रयी, शक्ति, प्रकृति, तारा, सीता, श्री, कामवत्सा, प्रियव्रता, अम्बिका, सुन्दरी, ज्येष्ठा, वामा, घोरा, सिद्धा, सिद्धान्तिका आदि । [**वसु.** – इन नामों के लिए दो अनुमान हो सकते हैं – (1) कुण्डलिनी आदि नाम ह्रीं के पर्यायवाचक शब्द हैं । (2) यदि इन को ह्रीं से भिन्न स्वतंत्र तत्त्व के रूप में माना जाए, तो इन देवियों की कक्षा ह्रीं के परा रूपा के समकक्ष है ।]

ह्रीं देवी के पररूप की परकक्षा [सर्वोच्च कक्षा] – वासुदेव नामक भेदरहित, अप्रमेय, एक, अखण्ड एवं षाड्गुण्यपूर्ण ब्रह्म में व्याप्य-व्यापक भेद नहीं है।

उस ब्रह्म में स्थित परा ह्रीं का नाम विष्णु है । वह (विष्णु) शक्ति एवं शक्तिमान की गति है । उसका (विष्णु का) आकार तरंगरहित शान्त समुद्र-सा है - [32-15 से 33] ।

पर रूप की सूक्ष्म कक्षा – जब अखण्ड ब्रह्म का उन्मेष शुद्ध-अशुद्ध मार्ग द्वारा होता हैं, तब नारायणी माया स्वरूपा है । ब्रह्म का संकल्प वह माया है। उस (माया) के गर्भ में संकर्षण से क्षिति पर्यन्त के सभी पदार्थ स्थित रहते हैं ।

पर रूप की स्थूल कक्षा – उसी ब्रह्म का द्वितीय उन्मेष व्याप्य-व्यापक भेद द्वारा स्थित है । तब ईकार स्वरूपा यह देवी पंच कृत्यों की विधायिका है - [32-34 से 37; पृ. 327-29] ।

[वसु. – पुण्य-पाप के एवं सत्-असत् विवेक के तर-तम भाव के कारण उपासक की अनेक कक्षाएँ बनती हैं, जिनमें से दिव्य-विवेकयुक्त उपासक सर्वोच्च उपासना का अधिकारी हैं, और अहंता-ममतापूर्ण-उपासक निम्नतम देवों की उपासना का अधिकारी है - [11-42 से 51] । ऐसा निम्न कक्षा का साधक करोड़ों की संख्या में जप करे और स्वयं अहंता-ममता में ही रममाण रहे, तो वह कभी भी ह्रीं या ॐ की उच्च उपासनाजन्य दिव्य संबंध स्थापित नहीं कर सकता । लक्ष्मीतंत्र के इस सिद्धान्त का अर्थ यह हुआ कि जप, तप, पूजा, यज्ञ आदि साधन हैं, साध्य नहीं हैं । इन साधनों के उपयोग से एक ओर गीता-सम्मत स्थितप्रज्ञ, भक्त, त्रिगुणातीत, ज्ञानी आदि की दिव्य कक्षा प्राप्त होती है और दूसरी ओर दिव्य तत्त्वों के साक्षात्कार के प्रयत्नों में आत्म (ब्रह्म) साक्षात्कार हो जाता है । इस सिद्धान्त के अनुसार ह्रीं की उपासना के संदर्भ में ऐसा अनुमान हो सकता है कि, जब उपासक स्थितप्रज्ञ की स्थिति में आ जाता है, तब वह ह्रीं की उपासना के लायक बन जाता है । इस उपासना की स्थूलतम कक्षा से लेकर परा कक्षा तक नौ भूमिकाएँ है, जिनमें से स्थूलतम भूमिका से प्रारंभ करके अपने सद्गुणों का - [भ. गी. 16-1 से 3] विकास करता हुआ वह उपासक जब त्रिगुणातीत बन जाता है और निर्विकल्पक समाधि में स्थित रहता है, तब वह ह्रीं के सर्वोच्च रूप की उपासना में पहुँच जाता है और 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' का भाव स्थिर होने पर वह ॐकार की उपासना में छलांग लगाकर ब्रह्ममय बन जाता है ।]

उपासक की प्राथमिक योग्यता – (क) जो मनुष्य महापाप एवं प्रसिद्ध अतिपातक कभी भी न करता हो; (ख) [शास्त्र एवं व्यवहार में] माना गया निन्दित कर्म यदि हो भी गया, तो उसका प्रायश्चित्त करता हो, और उसके बाद ऐसा कर्म कभी भी न करता हो । [**वसु.** – इसका अर्थ यह हुआ कि, जिसको निन्दित कर्म, प्रायश्चित्त, फिर निन्दित कर्म करने की आदत हो गई हो, ऐसा मनुष्य उपासना का अधिकारी नहीं है । प्रार्थना करके इस आदत को पहले हटाना जरूरी है ।] (ग) वह नास्तिक न हो । [**वसु.** – आस्तिकता के साथ श्रद्धा, विश्वास रहता है, अतः फल शीघ्र मिलता है ।] (घ) प्रत्येक प्राणी में मैत्री रखता हो । (संसार यात्रा के लिए) किये गए पापों का पश्चात्ताप एवं प्रायश्चित्त भी करता रहता हो - [42-5 से 7; पृ. 496] । [**वसु.** – उपासना के क्षेत्र में प्रवेश करने की यह प्राथमिक योग्यता है। उपासना-बल से स्थितप्रज्ञता की प्राप्ति करने के बाद उपासना के सूक्ष्म-सूक्ष्मतर क्षेत्रों में आगे बढ़ें।]

ह्रीं का अनुष्ठान

प्रायश्चित्त – **(अ)** गुप्त महापापों एवं अतिपापों का प्रायश्चित्त करके उपासना का प्रारंभ करें । प्रायश्चित्त एवं उपासना के काल में चार नियम अनिवार्य हैं –(क) [मन, वाणी, कर्म से] ब्रह्मचर्य का सर्वांग पालन, (ख) सात्यवादी रहना, (ग) हविष्य [होम के योग्य चावल, जौ, आदि सात्त्विक पदार्थों] का भोजन करना (घ) और स्वीकृत नियमों में दृढ़ता रखना ।

प्रायश्चित्त विधि – भगवान् विष्णु के सान्निध्य में (क) ॐकार का दस लाख से लेकर (कम से कम) एक लाख मानसिक जप करके, (ख) महाव्याहृति से [गाय के] घी की दश हजार आहुतियाँ दें, फिर (ग) गायत्री मंत्र से तिल की दश हज़ार आहुतियाँ दें - [42-8 से 10] । [**वसु.** - (1) प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते । तपो-निश्चय-संयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्-इति अंगिराः, - [प्रायश्चित्त मयूख; पृ. 2] । स्त्रीणामर्द्धं प्रदातव्यं वृद्धानां रोगिणां तथा। पादो बालेषु दातव्यः सर्व-पापेष्वयं विधिः इति विष्णुः - [प्राय. म.- पृ. 6] । ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः । एवं महापातकिनो यश्च तैः सह संविशेत् - [याज्ञ. स्मृ. 3-5-227; पृ. 919] ॥ महापातक-तुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु। तानि पातकसंज्ञानि तदूनमुपपातकम् - [या. स्मृ; पृ. 925] ॥ (2) प्रणव के नियुत जप का विधान है । आप्टे के शब्दकोश में नियुत के दो अर्थ

हैं, एक लाख और दश लाख। (3) व्याहृति होम के दो पक्ष हैं - (क) समस्त व्याहृति, जैसे कि, ॐ भूर्भुवः स्वः, स्वाहा। (ख) व्यस्त-समस्त व्याहृति, जैसे कि ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा - ये चार आहुतियाँ हुईं।]

(आ) प्रकाशित महापाप एवं अतिपापों का प्रायश्चित्त — इस प्रायश्चित्त के दो विकल्प हैं — (1) उपर्युक्त प्रणवजपादि तीन अंगकर्म अथवा (2) अघमर्षण [अघ = पापों का। मर्षण = दूरीकरण] का तत्त्वज्ञ बनकर, तीन दिन तक उपवास रख के दिन में [तीन संध्याकाल में] तीन दफा और रात्रि [आदि-मध्य-अंत्य रात्रि] में भी तीन दफा जल में [गोता लगाकर] सवस्त्र स्नान करें। चौथे दिन पयस्विनी गाय का दान करें। [देश, काल एवं पात्र का ध्यान रखें]। [जलस्नान करने में असमर्थ हो तो] पंचगव्य से अपने शरीर पर अभिषेक करके [घर में स्नान करें।] इन तीन दिन-रात में ॐकार आदि पाँचों का अथवा इन में से किसी भी एक का बुद्धि से जप करें, उस मंत्र से अभिमंत्रित पंचगव्य का प्राशन करें। निर्मल (निष्पाप) एवं उज्ज्वल वैष्णव का निरीक्षण करें। इस विधि से दिन-रात किए गए सर्व पापों से मुक्ति मिलती है। वैष्णव-निरीक्षण अथवा वैष्णवों की पंक्ति में भोजन करें - [42-11 से 17; पृ. 496-98]। [**वसु.** — ॐकार आदि पाँच (तारादिपंचकं) का अर्थ भाषान्तरकारने (क) 'ॐ, व्याहृति, गायत्री, ह्रीं, श्रीं ये पाँच', ऐसा अर्थ किया है (ख) और ॐ, ह्रीं, श्रीं, ऐं, क्लीं ये पाँच बीज भी हो सकते हैं। भाषान्तरकार का अर्थ बलवत्तर है।]

[**वसु.** — पापविनाशक मंत्रों से अघमर्षण करें, जैसे कि (1) विधृतिन्नाभ्या (जुम्बका गायत्री)-वा.सं. 25-9; (2) द्रुपदादिव.-वा.सं. 20-20; (3) ऋतं च सत्यं; (4) देवकृतस्यैनसो.-वा.सं. 8-13; (5) 'यद्देवा देवहडेनं. से ततो व्वरुण नो मुञ्च' तक की साढे चार काण्डिकाएँ (कुष्माण्डी)-वा.सं. 20-14 से 18; (6) अद्या देवा. -वा. सं. 33-42; (7) मुञ्चन्तु मा.-वा.सं. 12-90 आदि पापनाशक मंत्रों से अघमर्षण, जप आदि अपने गुरूपदिष्ट क्रियाएँ करें। (क) उद्‌धृत्य दक्षिणे हस्ते जलं गोकर्णवत्कृते। निःश्वासं नासिकाग्रे तु पाप्मानं पुरुषं स्मरेत्॥ ऋतं चेति त्र्यृचं वापि, द्रुपदां वा जपेद् ऋचम्। दक्षनासापुटेनैव पाप्मानमपसारयेत्॥ तज्जलं नावलोक्याथ वामभागे क्षितौ क्षिपेदिति-शौनकः॥

(ख) (वरुणो वै जुम्बकः इति श्रुतिः । जुम्बका नाम गायत्री वेदे वाजसनेयके । अन्तर्जले सकृज्जप्ता ब्रह्महत्यां व्यपोहति-इति हारितः इति उवटमहीधर-भाष्ये ।) जुम्बकायेति मंत्रेण विदध्यादघमर्षणम् । जपेद् द्वादशवारं तु महापापापनुत्तये इति नागदेवः ॥ करेणोद्धृत्य सलिलं घ्राणमासज्य तत्र च । जपेदनियताः सर्वास्त्रिः सकृद्वाघमर्षणम्-इति कात्यायनः ॥ द्रुपदानाम यो मंत्रो वेदे वाजसनेयके । अन्तर्जले त्रिरावर्त्य सर्वपापैः प्रमुच्यते इति बृहस्पतिः ॥ द्रुपदां तु त्रिरावर्त्य तथा चैवाघमर्षणम् । सोपांशुं प्रणवं वापि घ्राता ह्यापो विसर्जयेदिति योगियाज्ञवल्क्यः - आह्निक सू. वि. 177-78; पृ. 49] ॥

स्थान — निर्मल (1) दिव्य स्थल, (2) सिद्धक्षेत्र, (3) ऋषिसेवित स्थान, (4) विष्णु-मंदिर, (5) पर्वत-शिखर, (6) नदी-तट (7) गोशाला (8) या बिल्व (बेल)-वन में अनुष्ठान करें - [42-20; 21; पृ. 498] । [इन सभी स्थलों का वातावरण अनुष्ठान में सहायक होता है ।]

नियम — (1) भोजन - अनुष्ठान काल में (क) (गाय का) दूध अथवा (ख) यावक अन्न [गाय को यव खिलाकर, उसके गोबर से यवों को निकालकर, धोकर, सुखाकर उपयोग करें । प्राय. मयूख; पृ. 43] । अथवा (ग) हविष्य अन्न [चावल, जौ, तिल आदि हवन योग्य अनाज - (देखो पृ. 88)] का एक दफा भोजन करें - [42-21] । [**वसु.** — इन तीन विकल्पों में दुग्ध आहार उत्तम है । दूध एक दफा लें, फिर भी भूख रहे तो दो तीन बार ले सकते हैं ।]
(2) ऋतुमती स्त्रियों का उल्लंघन न करें । स्त्रीनिंदा वर्ज्य है । स्त्रियों की ओर कुदृष्टि न करें । पति-पत्नी को साथ में देखकर प्रसन्न बनें । (3) अन्यों का निष्पाप भाव से प्रिय करें - (42-37, 38) ।

अनुष्ठान पद्धति — यह अनुष्ठान (किसी भी मास की) कृष्ण अष्टमी से कृष्ण चतुर्दशी तक सात दिनों का है । सप्तमी तक सांग प्रायश्चित्त करके निष्पाप बन जाए । सप्तमी के दिन उपवास रखें । अष्टमी से प्रतिसन्ध्याकाल में हररोज बारह हज़ार जप करें । कुल मिलाकर 84 हज़ार जप होंगे । जप पूर्ण होने के पश्चात् दशांश संख्या से (8400) तर्पण एवं (गायके) घी की आहुतियाँ दें । इन दिनों में केवल शास्त्रविहित (नित्य) कर्म ही करें, एक भी काम्य कर्म करे नहीं - (42-4 और 19 से 22) ।

[वसु. – (अ) जप की गति इतनी रखी जाए कि, एक घंटे में चार हजार से अधिक जप न हो । श्वास-उच्छ्वास के साथ अथवा अपनी नाडी के साथ जप करना अधिक लाभप्रद है। (आ) मुख में छन्द, सहस्रार में मंत्रद्रष्टा ऋषि और हृदय-चक्र में अपने इष्टदेवता का ध्यान करें। (इ) यद्यपि तंत्रपरंपरा में पाँच अंगयुक्त अनुष्ठान का प्रसिद्ध क्रम - (1) जप, (2) जप दशांश होम, (3) होम दशांश तर्पण, (4) तर्पण दशांश मार्जन [अभिषेक] और (5) मार्जन दशांश ब्रह्मभोजन ऐसा [क्रम] है, फिर भी श्रीसूक्त की प्रथम ऋचा की स्वतंत्र उपासना में मंत्रकल्पार्णव के अनुसार प्रथम ऋचा का एक लाख जप, दश हज़ार का तर्पण, एक हजार घृताहुतियाँ, सौ ब्राह्मणों का भोजन और दश सुवासिनी स्त्रियों का पूजन ऐसा विशिष्ट क्रम दिया गया है । चौथी ऋचा में भी तर्पण के दशांश से होम का विधान है - [श्री. वि. पृ 4; 7] । यहां पर भी तर्पण के पश्चात् होम का विधान है - [दशांशं तर्पणं कुर्यादाहुर्तींश्चापि सर्पिषा — 42-22] । इस वाक्य के दो अर्थ संभवित हैं - (क) जपदशांश तर्पण (8400) और तर्पणदशांश (840) आहुतियाँ । (ख) तर्पण और आहुतियों की संख्या समान (8400) रखी जाए । (प्रथम अर्थ बलवत्तर है ।)
(ई) स्थित्वा सन्ध्यामथाष्टम्यां तारिकाजपमारभेत् - (42-19; पृ. 498), यहाँ काल के अत्यन्त संयोग में द्वितीया विभक्ति हुई है - (कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे) अतः सातों दिनों के संध्याकाल में जप करें। अर्थात् यहाँ संध्याकाल का उपयोग अनिवार्य है ।]

मंत्र सिद्धि का लक्षण — सातवीं रात्रि के मध्य भाग में [आधी रात को] मदिरापान अथवा मदिरा कुंभ, सुन्दर स्त्री द्वारा मंत्रसिद्धि का कथन, सौम्य एवं सुन्दर पति-पत्नी, राजा, रानी, सुंदर स्त्री, नारायण की अथवा नारायणीकी दृष्टि, पतिव्रता स्त्री और वैष्णवों का समागम आदि शुभ स्वप्न आए, तब थकान दूर कर के ऊठ जाए और आचमन करके, शय्या में बैठकर, नारायणी के स्मरण में शेष रात्रि पसार करें। फिर सुबह ऊठकर सन्ध्या आदि नित्यकर्म करके व्रत की समापनविधि करें - [42-23 से 29] ।

यदि मंत्रसिद्धिसूचक स्वप्न न आए तो निराश न होकर उसी अमावास्या से द्वितीय कृष्णा सप्तमी (23 दिन) तक पूर्ववत् व्रत रखें। एक दफा हविष्यान्न का आहार लेकर प्रतिदिन तीन हज़ार जप करें - [69 हज़ार जप होंगे] । इस तरह अनुष्ठान का तंतु जारी रखकर कृष्णा अष्टमी से सात दिनों का पूर्ववत्

अनुष्ठान करें । जब तक स्वप्नदर्शन न हुए, तब तक यह प्रक्रिया चालू रखे। स्वप्नदर्शन होने के पश्चात् ही अनुष्ठान की समापनविधि करे - [42-35 से 39] । [**वसु.** – यह सिद्धान्त सभी अनुष्ठानों में लागू होता है। पूर्वकर्मों के अनुसार ही सिद्धि मिलती है । अतः अशुभ कर्मों का शमन करने के लिए अनुष्ठान के आवर्तन आवश्यक हैं । जब तक इच्छित फल न मिले तब तक अनुष्ठान चालु रखें। निराश न होए ।]

समापनविधि – (क) शुभ स्वप्न के पश्चात् अमावास्या के प्रातःकाल में युवान, गुणवान, सुन्दर, दीनतारहित, मनस्वी, प्रसन्नचित्त, मृदुभाषी पति-पत्नी को निमंत्रित करके, अपने घर में स्नान कराके, उनके देह को सुगन्धित करके, नारायणस्वरूप पति एवं नारायणी स्वरूपा पत्नी को वस्त्र-आभूषणों से विभूषित करके, (उत्तम) भोजन कराएँ और अच्छी दक्षिणा दें । उन दोनों को साक्षात् लक्ष्मीनारायण मानकर, उन के पास ह्रीं मंत्र की सिद्धि की श्रद्धापूर्वक याचना करें। वे दोनों तथास्तु [रूप] वरदान दें, उसके बाद उनकी शरण में जाए । (ख) इसके बाद श्रेष्ठ वैष्णव विद्वानों को बुलाकर पुण्याह-वाचन कराए और उनको भोजन आदि (वस्त्र-अलंकार-दक्षिणा) से तृप्त करें - [42-29 से 34] ।

मंत्रसिद्धि का फल – ह्रीं मंत्र सिद्ध हो जाने पर वह भक्त शास्त्रनिर्माण एवं अध्यात्म में गति कर सकता है । वह सभी तंत्रों एवं वेदान्त का पारगामी बन जाता है । उसके मन में एक भी संदेह रहता नहीं है । सत्य एवं मधुर वाणी बोलता है । धर्म-समुद्र को पार करके वह निग्रह-अनुग्रह करने में समर्थ हो जाता है - [42-40 से 43] ।

ह्रीं उपासना-प्रयोगः

[**वसु.** – पूजन एवं जप आदि के प्रारंभ में न्यास करना अत्यंत आवश्यक है। (लक्ष्मी. के आधार से यह प्रयोग लिखा है।)

आसनविधिः – आसनाद् बहिः प्राङ्‌मुखो यजमानः हस्ते गन्धाक्षत-पुष्पाणि आदाय आसनं पूजयेत् - तद्यथा - ह्रीं आधारशक्तये नमः । ह्रीं कूर्माय नमः। ह्रीं पृथिव्यै नमः । ह्रीं दुग्धसागराय नमः । ह्रीं कमला [सना] य नमः । ह्रीं गरुडाय नमः । इति संपूज्य, [पृथिवीं सम्प्रार्थ्य], आसनोपरि उपविशेत् ।

नारायणरूपं स्वमात्मानं विभाव्य । ॐ ह्रः वीर्याय अस्त्राय च फट् इति [त्रिः] दिग्रक्षणं कृत्वा, आसनपरितः शरजालोपमं प्राकारं विभाव्य, स्वकीयं स्थानं 'ॐ ह्रैं बलाय कवचाय हुम्' इति अवकुण्ठिन्या मुद्रया अवगुण्ठय, तत्स्थानं आकाशस्थैरपि दर्शनाशक्यं विभाव्य, करन्यासं पुरा कृत्वा देहन्यासं समाचरेत् - [35-56 तः 60] ।

आचम्य- [ॐ ह्रीं आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा; ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वं शोधयामि स्वाहा; ॐ ह्रीं शिवतत्त्वं शोधयामि स्वाहा । ॐ ह्रीं सर्वतत्त्वं शोधयामि स्वाहा ।, हस्तं प्रक्षाल्य मूलेन प्रणायामं कृत्वा न्यासान् कुर्यात् ।]

करन्यासः –

(1) ॐ ह्रीं नमः अंगुष्ठाभ्यां नमः ।

(2) ॐ ह्रीं लक्ष्म्यै तर्जनीभ्यां नमः ।

(3) ॐ ह्रीं कीर्त्यै मध्यमाभ्यां नमः ।

(4) ॐ ह्रीं जयायै अनामिकाभ्यां नमः ।

(5) ॐ ह्रीं मायायै कनिष्ठिकाभ्यां नमः - [35-61, 62] ।

हृदयादिन्यासः –

(1) ॐ ह्रां ज्ञानाय हृदयाय नमः । [एकादशाक्षरः]

(2) ॐ ह्रीं ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । [एकादशाक्षरः]

(3) ॐ ह्रूं शक्तये शिखायै वौषट् । [दशाक्षरः]

(4) ॐ ह्रैं बलाय कवचाय हुं । [दशाक्षरः]

(5) ॐ ह्रौं तेजसे नेत्राभ्यां वौषट् [दशाक्षरः]

(6) ॐ ह्रः वीर्याय अस्त्राय च फट् । [दशाक्षरः]

— (33-2 से 10; पृ. 335-36) ।

हृदयादिन्यास की मुद्राएँ –

(1) हृदय-मुद्रा – दक्ष हस्त के मुष्टिबन्ध के भीतर वाम अंगुष्ठ को उन्नत करके हृदय के सामने रखे। यह मुद्रा बुद्धिवर्धक है ।

(2) **शिरो-मुद्रा** – सभी अंगुलियों को सीधी रखकर अंगूठे से स्पर्श करा दें। यह मुद्रा मंत्र-सन्निधिकारक है ।

(3) **शिखा-मुद्रा** – [दक्ष हस्त की] तर्जनी को उन्नत रखकर मुष्टि बाँधें । यह मुद्रा दोष एवं विघ्न की विनाशक है और दुष्टों को भयभीत करती है । पूजाघर में भी यह मुद्रा अवश्य की जाए ।

(4) **कवच-मुद्रा** – दोनों हाथों की शाखाओं [कराग्रभागों] को [छाती के] मध्य में जोड दें । इस मुद्रा से दक्ष-वाम स्कंधो का स्पर्श करें। यह मुद्रा दुष्टगण, भूत, वेताल एवं योगियों से भी अभेद्य है ।

(5) **नेत्र-मुद्रा** – दोनों हाथों की तर्जनीरहित अंगुलियों को एक दूसरे में ग्रथित कर, करपृष्ठ से लगाएँ । दोनों तर्जनी-अग्रों को उन्नत करके जोडें । फिर दक्ष अंगूठे को वाम तर्जनी के और वाम अंगूठे को दक्ष तर्जनी के मूल में लगाएँ। यह मुद्रा नेत्र समीप करें ।

(6) **अस्त्र-मुद्रा** – तर्जनी और अंगूठे से चुटकी बजावें । ऐसा दोनों हाथों से दशों दिशाओं में चुटकी बजाते हुए, दशों दिशाओं का निरीक्षण करें । यह मुद्रा असुरों को त्रास देती है - [34-17 से 28; पृ. 363-64] ।

((क) **शिखायै वौषट्** - शिखायै वौषडित्येवं शैखोऽयं तु दशाक्षरः । इति लक्ष्मीतंत्रे - [33-7; पृ. 336] तत्परिशिष्टे च - [पृ. 687] मुद्रितम् । अतः मुद्रणदोषाभावः । परंतु नारदपंचरात्रादिषु नैकेषु तंत्रेषु वषडन्तः शैखो मंत्रः उपलभ्यते, न तु वौषडन्तः, तद्यथा; - (1) शिखायै वषट् इति नारदपंचरात्रे; 4-3-8; पृ. 181]; (2) सुचक्राय तथा स्वाहा शिखायै वषडुच्चरेत् इति गौतमीय-महातंत्रे; - [2-49; पृ. 8]; (3) कृष्णोपासनायां शिखायै वषट्; [इति श्रीविद्या. श्वास 27; पृ. 346]; (4) तथैव गन्धर्वतंत्रे [9-20, पृ. 70]; (5) मंत्रमहोदधौ [21-147; पृ. 199] चास्ति । अतः श्रीसूक्तोपासनायां शिखायै **वषट्** इति मंत्रः स्वीकर्तव्यः, - (देखो पृ. 47)] ।

(ख) षडंगन्यासे मुद्रा – (1) नारदपंचरात्रे - अनंगुष्ठा ऋजवो दक्षहस्तशाखा, भवेन्मुद्रा हृदये शीर्षके च । अधोऽङ्गुष्ठा खलु मुष्टिः शिखायां, करद्वंद्वांगुलयो वर्मणिः स्युः ॥ नाराचमुष्ट्युद्धृत बाहुयुग्मं व्यंगुष्ठतर्जन्युदितो ध्वनिस्तु । विश्वग् - विषक्ता कथितास्त्रमुद्रा यत्राक्षिणी तर्जनी-मध्यमे तु ॥ इति -- [3-4-16; 17;

पृ. 130-31] । (2) गौतमीयमहातंत्रे - पंचांगानि मनोर्यत्र तत्र नेत्रं विवर्जयेत्। अंगुष्ठरहितेनैव कराग्रेण हृदयं स्पृशेत् । ... शिरसि विन्यसेत् तद्वत्..., तथाऽधों-गुष्ठमुष्णा तु शिखायां परिविन्यसेत् । ... हस्ताभ्यां शिर आरभ्य पादान्तं संस्मरेद् यतिः - [इति कवचे] ... ऊर्ध्वतालत्रयं कृत्वा छोटिकाभिर्दिशो दश । बन्धयेन् मुनिशार्दूल नित्यन्यासोऽयमीरितः इति - [2-47 तः 52; पृ. 8] - (3) शिखायै वषडंगं च ... मं. महो. 21-147 ॥ प्रसारितमनंगुष्ठं तर्जन्यादिचतुष्टयम् ॥ हृदि मूर्ध्नि हि चांगुष्ठहीनो मुष्टिः शिखातले । स्कंधमारभ्य नाभ्यन्ता दशांगुल्यस्तु वर्मणि ॥ तर्जन्यादित्रयं नेत्रत्रये नेत्रद्वये द्वयम् । प्रसारिताभ्यां हस्ताभ्यां कृत्वा तालत्रयं सुधीः ॥ तर्जन्यंगुष्ठयोरग्रे स्फालयन् बन्धयन् दिशः । एषास्त्रमुद्रा श्रीविष्णोरंगमुद्रा उदीरिताः - [मंत्रमहो. 21-149: तः 52; पृ. 199] ।

(ग) उपांगन्यासः — यहाँ एक ही मुद्रा से छः उपांगों में न्यास करें । दक्ष हस्त की मिली हुई चारों अंगुलियों के मूलभाग में अंगूठे को तिरछा लगावें - [ल. 34-29, 30; पृ. 364-65] ।(1) ॐ ह्रीं ज्ञानाय उदराय नमः। (2) ॐ ह्रीं शक्तये पृष्ठाय नमः । (3) ॐ ह्रीं बलाय बाहुभ्यां नमः । (4) ॐ ह्रीं ऐश्वर्याय ऊरुभ्यां नमः । (5) ॐ ह्रीं वीर्याय जानुभ्यां नमः । (6) ॐ ह्रीं तेजसे चरणाभ्यां नमः - 33-11 से 13; इसके बाद पूजन, जपादि करें।)]

ह्रीं मंत्र के विविध प्रयोग

[**वसु.** — तंत्रशास्त्र का स्वीकृत सिद्धान्त है, कि कोई भी काम्य प्रयोग जिस मंत्र से करना हो, उस मंत्र को पहले विधिपूर्वक सिद्ध कर लेना नितान्त आवश्यक है । श्रीसूक्तादि सूक्तों के उपयोग के पहले उन्हें सिद्ध कर लें । किसी भी परिस्थिति में अन्य को दुःख पहुँचानेवाला तामस काम्य प्रयोग करें भी नहीं और करावें भी नहीं । तामस प्रयोगजन्य दोष पिछली पिढ़ियों को भुगतना पडता है, ऐसा निश्चित रूप से देखा गया है ।]

[1] सरहस्य धर्मप्राप्ति के लिए

कमलनयन नारायण अथवा नारायणी का ध्यान करते हुए, **एक लाख जप** से सरहस्य धर्म का प्रत्यक्षीकरण होता है । **नारायणी का ध्यान** -नारायणी माँ का मुख पूर्णिमा के चन्द्र सा आह्लादक है । आँखें हिरनी जैसी हैं । एक हाथ ब्रह्ममुद्रायुक्त है, द्वितीय हाथ में माला है । बाकी के दो हाथों में कमल हैं ।

कृष्णमृगचर्म का अधोवस्त्र, उत्तरीय वस्त्र एवं आसन हैं - [42-51 से 54; पृ. 503] । [**वसु.** — (1) अ. 34 में ब्रह्म-मुद्रा का लक्षण नहीं बताया है । यहाँ अनुष्ठान के तिथ्यादि भी नहीं बताए हैं ॥ (2) जब तक सिद्धि न मिले तब तक अनुष्ठान चालू रखना है, इस नियम को ध्यान में रखें ।]

[2] सायुज्यमुक्ति के लिए

सायुज्यमुक्ति के दो मार्ग हैं — (क) द्वादशधारणात्मक और (ख) शून्यभावात्मक। **नारायणी का स्वरूप** — [नारायणी का रूप स्थिर महाज्वाला समान एवं निरंजन है । सर्वभाव एवं शश्वद्भाव से युक्त है । अज्ञेय एवं अनवच्छिन्न है। ब्रह्मभिन्न सर्वपदार्थ बुद्धि से अवच्छिन्न है, जब कि नारायणीब्रह्म बुद्धि से अवच्छिन्न नहीं है, परंतु अखण्ड है । जैसे प्रलय के समय में सर्वत्र व्याप्त जल में जगत की स्थिति होती है, वैसी स्थिति नारायणी में जगत की हैं । अतः उपासक को चाहिए कि, वह सभी पदार्थों में निराकार, अखण्डरूपा नारायणी की अनुभूति करता रहे ।] इस स्वरूप की अनुभूति करने के लिए उपर्युक्त दो मार्ग हैं ।

(क) द्वादशधारणात्मक मार्ग — निम्न स्थलों में ह्रीं मंत्र का चिन्तन करें । (1) नासिकाग्र में पृथ्वीतत्त्व को, (2) जिह्वाग्र में जलतत्त्व को, (3) जिह्वामध्य में तेजस्तत्त्व को, (4) जिह्वामूल में वायुतत्त्व को, (5) कण्ठ एवं वक्षःस्थल में आकाशतत्त्व को और (6) वक्षःस्थल के अन्त भाग में बुद्धि तत्त्व को धारण करते हुए, वहाँ ह्रीं को संयुक्त करें । इन छः स्थलों में अनुक्रम से 2, 4, 6, 8, 10 और 16 बार ह्रीं का जप करें । (7) बुद्धि के बाद प्रकृति एवं जीव का चिन्तन करते हुए जप की संख्या बढाते रहें । (8) जीव के नीचे अव्यक्त चेतन का आधारभूत कमल एवं कमलाकार अनन्त और अक्षरात्मक नाल, (9) आनिरुद्धा शक्ति, (10) प्राद्युम्नी शक्ति , (11) सांकर्षणी शक्ति और (12) सभी के नीचे क्रम से स्थूल वासुदेव युगल, सूक्ष्म वासुदेव युगल एवं परात्मक वासुदेव युगल का चिन्तन करते हुए ह्रीं मंत्र का जप करें । ये सभी तत्त्व एकदूसरे के नीचे नीचे स्थित हैं एवं सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतम हैं । वासुदेव युगल के पर-स्वरूप की कक्षा सर्वोच्च है । ये सभी धारणाएँ हृदय में अथवा ह्रीं में भी कर सकते हैं। निद्रा के पहले धारणाएँ करते करते योगनिद्रा में पहुँच जाए, फिर पीछली रात्रि में जागकर इन धारणाएँ करें - [43-2 से

16] । [वसु. – (क) इसका अवश्य अनुभव करें । (ख) भाषान्तरकार ने उरस् का अर्थ ऊरू किया है, जो गलत है - लक्ष्मी. 43-3; पृ. 508] ।

[वसु. – (क) प्रथम सोपान में पूर्ण दृढ़ता हो जाए, तभी द्वितीय चरण में प्रवेश करें । (ख) प्रायः देखा गया है कि, उपासक केवल वाचिक, उपांशु या मानसिक मंत्रोच्चारण ही करता है । परंतु मंत्रदेवता के स्थूल-सूक्ष्म-पर रूपों का क्रमशः चिन्तन करते हुए अपनी योग्यता को बढाता नहीं है । (ग) जप के माध्यम से देवता के पररूप का चिन्तन दृढ़ एवं सातत्यपूर्ण बन जाए, तब साधक उस देवता के साथ सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य संबंधों को जोडता हुआ अन्त में सायुज्यभाव को प्राप्त हो जाता है । साधक जब उच्च एवं दिव्य भूमिकाओं में प्रवेश पाता है, तब उसके जीवन व्यवहार में भगवद्गीता प्रोक्त स्थितप्रज्ञ - [2-55 से 72], भक्त - [12-13 से 19], ज्ञानी - [13-7 से 11], सात्त्विकता - [17-18 अध्यायों में वर्णित] और त्रिगुणातीत - [14-22 से 27] के लक्षण प्रकट होते हैं । एक ओर क्रमशः सद्गुण - [16-1 से 3 में कथित] आते हैं और दूसरी ओर दुर्गुण - [16-4 से 22 में कथित] चले जाते हैं या शान्त होते हैं । (घ) गीता के अठारहवे अध्याय में - [18-51 से 55] सायुज्यमुक्ति का सरल मार्ग बताया है, जैसे कि-(1) [निष्काम कर्म करते करते] बुद्धि को शुद्ध बनाकर, धृति से अपने को संयत करते हुए शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषयों एवं रागद्वेष का त्याग करें । (2) एकान्त में निवास करके केवल जीवन रक्षणार्थ अल्प भोजन करें और अपनी काया, वाणी एवं मन को नियंत्रित रखते हुए सदा ध्यानयोग परायण रहें । (3) [तीव्र एवं दृढ़] वैराग्य का आश्रय लेकर अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह का [पूर्ण रूप से] त्याग कर सतत अहंता-ममता रहित बनते हुए [क्रमशः] शान्त होकर ब्राह्मी स्थिति में स्थित हो जाए। इस कक्षा में हमेशा सतत प्रसन्नता बनी रहती है । [यह प्रसन्नता विषयजन्य या वस्तुप्राप्तिजन्य नहीं है ।] (4) शोक, (मोह), एवं आकांक्षा से रहित बनकर, सभी प्राणियों में समभाव रखते हुए, उसे आखिर नारायण की परा (सूक्ष्मतम) भक्ति की प्राप्ति होती है । (5) उस भक्ति के बल से भगवत्तत्त्व का पूर्ण ज्ञान होता है और उस ज्ञान के बल से आखिर भगवान में प्रवेश होता है - [(भ. गी. 18-51 से 55)] ।

(ख) शून्य भावात्मक मार्ग – [यदि साधक की उच्च कक्षा हो तो वह

सीधा] व्यक्त एवं अव्यक्त पदों को [अपने अपने कारणों में] विलीन करते हुए, अपने मन को आलम्बनरहित बनाकर शून्यभाव में स्थित हो जाएँ। **नारायणी शून्य भाव में रहती है** - [43-17, 18; पृ. 511]। [**वसु.** – इस स्थिति की तुलना वेदान्तसारसम्मत निर्विकल्पक समाधि के साथ हो सकती है - वेदान्तसार; पृ. 42]

[3] अक्षय धनप्राप्ति के लिए

[**वसु.** – '**श्रीसुन्दरीसाधनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव**' इस त्रिकालाबाधित उक्ति अनुसार भक्त की दृष्टि समक्ष मोक्ष (श्रेय) एवं भोग (प्रेय) दोनों मार्ग स्थित हैं। इन में से श्रेयो-मार्ग कल्याणकारी है; जन्मान्तर में सहायक है एवं मोक्षप्रद है, इस लिए श्रेयोमार्ग पसंद करे। यद्यपि प्रेयो-मार्ग नाशवन्त एवं जन्मान्तर में सहायक नहीं है, ऐसा जानते हुए भी साधक अज्ञानतावशात् प्रेयो-मार्ग की ओर ही अत्यधिक आकृष्ट, लालायित एवं प्रयत्नशील रहता है, फिर भी वह साधक निन्दनीय नहीं है, क्योंकि गीतासम्मत चार प्रकार के भक्तों में अर्थार्थी को भी स्वीकृति मिली है - [7-16]। धर्ममूलक धनप्राप्ति करने के बाद दान, धर्म, समाज एवं राष्ट्र की सेवा आदि सत्कार्यों में धन का सदुपयोग होता रहे, ऐसी धनप्राप्ति आवकार्य है। पश्चात् श्रेयो मार्ग में अवश्य आ जाए।]

(अ) [किसी भी मास की] शुक्ल प्रतिपदा के दिन [सूर्योदय से पहले] (1) विभु = एक प्रस्थ = [64 तोला = 746$^{1/2}$ ग्राम] शाली चावल, एक प्रस्थ [सर्पिषः तावतः प्रस्थान्] गोघृत, और शर्करा अथवा गुड़ [पलमित, पलों की संख्या नहीं बताई है] - [शर्करायाः पलानि च], लेकर एक पात्र में इकट्ठा करके गाय के दूध में परिपक्व करे। [एक पल = 4 तोला। एक तोला = 11.665 ग्राम] (2) फिर (संकल्प, गणेशपूजन, पुण्याहवाचनान्त कर्म करके) बडे कुंड में विधिपूर्वक अग्निस्थापन [एवं कुशकण्डिका] करके, (3) [अष्टमंगल नाम के-पुरश्च. पृ. 1178] उस अतिप्रज्वलित अग्नि में उदीयमान सूर्य का अर्धबिम्ब दीखते ही ह्रीं संपुटित 'जातवेदसे.' मंत्र बोलकर स्वाहान्ते एक ही आहुति में उस सभी हवि का होम कर दें। इसके बाद तुरन्त ही उसी मंत्र से [कुशकण्डिका में संस्कारित] घी की अविच्छन्न आहुतियाँ सूर्यास्त तक देते रहें। [अर्थात् बीच में थोडा भी विश्राम न करें। विभुसंख्यामितान् प्रस्थान् शालीनां तण्डुलात्मनाम्। सर्पिषः तावतः प्रस्थान् शर्करायाः पलानि च ॥ अथ

प्रातः समारभ्य यावदस्तमयं रवेः । अविच्छिन्नं च जुहुयात्;-42-54, से 58; - (पृ. 503) । प्रस्थ का बहुवचन किन्त्य है ।]

(आ) ब्रह्मभोजन – दूसरी ओर सूर्योदय से सूर्यास्त तक एक एक ब्राह्मण को दूध-दहीं-घी युक्त चावल खिलाते रहें । [प्रातरारभ्य शाल्यन्नं पयोदध्याज्य-संस्कृतम् । एकैकं भोजयेद् विप्रं प्रातरारभ्य संततम् – 42, 60; पृ. 504]।

(इ) पुण्याहवाचन – [होम समाप्ति के बाद, युग्म संख्या के ऋत्विजों द्वारा अपनी शाखानुसार] पुण्याहवाचन करके, उन्हें भोजन, अच्छी दक्षिणा और उत्तम वस्त्र-पात्र आदि से तृप्त करें ।

(ई) लक्ष्मीनारायणपूजन – सात्त्विक एवं वैष्णव दंपती को सम्मान सहित निमंत्रित करके, पति में नारायण एवं पत्नी में लक्ष्मी की भावना करते हुए, उन दोनों को उसी तरह भोजन दक्षिणा वस्त्रपात्रादि से तृप्त करें । इस अनुष्ठान से करोड़ों का धन मिलता है, जो कभी कम नहीं होता - [42-54 से 62]।

[**वसु.** – (1) आगे बताई गई अनुष्ठान विषयक स्पष्टता अनुसार जब तक इच्छित धनलाभ न होए तब तक प्रत्येक शुक्ल प्रतिपदा के दिन यह अनुष्ठान करते रहें, क्योंकि जन्मजन्मान्तरीय कर्मों को किसने जाना है ? अनुष्ठान का फल अवश्य मिलता है । अवरोधक कर्म हटते ही फलप्राप्ति होती है, अवश्य होती है, निराश न बनें । दूसरी बात यह भी अवश्य ध्यान में रखी जाए कि, सकाम कर्म के सभी अंग सुचारु रूप से पूर्ण होने चाहिए । (2) अनुवादक ने 'त्रिष्टुभा जातवेदस्या तारिकाद्यन्तरुद्धया' - [42-57; पृ. 503] । इस पंक्ति का अर्थ 'आदि में ह्रीं मंत्र और तत्पश्चात् जातवेदसे मंत्र, इन दो मंत्रों से होम करें ' ऐसा किया है, जो गलत है, क्योंकि यहाँ जातवेदसे. मंत्र के आदि-अन्त में ह्रीं का संपुट देने का अर्थ ही अभिप्रेत है जैसे ह्रीं, जातवेदसे ..... त्यग्निः, ह्रीं स्वाहा ।]

(उ) श्रीविद्यार्णवतंत्र प्रोक्त जातवेदस.मंत्र प्रयोग

[श्वास 22; पृ. 159-62] । (अर्थ आगे पृ. 80 में दिया है ।) मंत्रः –

ॐ ह्रीं, जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ।। ह्रीं ।।

(ऋग्-1-99-1)

विनियोगः — अस्य श्री जातवेदसे. इति महामंत्रस्य कश्यप ऋषिः, जातवेदोऽग्निस्वरूपिणी दुर्गा [लक्ष्मीर्देवता], अक्षय्यातिधनप्राप्तये न्यासे, जपे, होमे च विनियोगः ।

[प्रायश्चित्तं नित्यकर्मादिकं च कृत्वा, ऋत्विग्वरणादिकं समाप्य, मण्डपदेवताः वास्तुदेवताश्च संपूज्य]

आचम्य, प्राणानायम्य, संकल्पः - ॐ विष्णुर्विष्णु.... मम गृहे अक्षय्यातिलक्ष्मीप्राप्त्यर्थं सनारायण-लक्ष्मी-प्रीतये च ह्रींमंत्रसंपुटित-'जातवेदसे.' इति मंत्रेण एकां पायसाहुतिं, ततः तेनैव मंत्रेण प्रातरारभ्य सूर्यास्तपर्यन्तं सन्ततं घृताहुतीः, तावत्कालं एकैकब्राह्मणस्य भोजनं, होम-समाप्तौ पुण्याहवाचनं, लक्ष्मीनारायणभावेन वैष्णवयुगलस्य पूजनं च करिष्ये ।

यंत्रम् — यद्यपि तत्र यंत्रोद्धारकारिका नोक्ता, तथापि आवरणपूजापद्धत्यनुसारेण अनुमितमिदं यंत्रम् - षट्कोण-वृत्त-अष्टदल-भूपुराष्टपत्रात्मकम् प्रतीयते ॥

अथ न्यासाः — आचम्य, मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, मातृकान्यासान्तं विधाय, मंत्रन्यासान् कुर्यात् । विनियोगः - अस्य श्री जातवेदसे. इति महामंत्रस्य मरीचि-कश्यप ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, जातवेदोग्निस्वरूपिणी दुर्गा देवता, ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे विनियोगः । सर्वत्र आदौ प्रणवः **(क)** मरीचिकश्यपऋषये नमः शिरसि, त्रिष्टुप्छन्दसे नमो मुखे, जातवेदोग्निस्वरूपिणीदुर्गादेवतायै नमो हृदि, ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु ॥ जातवेदसे हृदयाय नमः, । सुनवाम सोममरातीयतो शिरसे स्वाहा, । निदहाति वेदः शिखायै वषट्, । स नः पर्षदति कवचाय हुं, । दुर्गाणि विश्वा नावेव नेत्रत्रयाय वौषट्, । सिन्धुं दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट् । **(ख)** एवमंगुलीन्यासः ॥ पूर्वं करन्यासः ततो हृदयादिः, [करन्यासं पुराकृत्वेतिवचनात् - 35-60]

(ग) ॐ जां नमो दक्षपादांगुष्ठे । ॐ तं नमो वामे । ॐ वें नमो दक्षगुल्फे । ॐ दं नमो वामे । ॐ सें नमो दक्षजङ्घायां । ॐ सु नमो वामायां । ॐ नं नमो दक्षजानुनि । ॐ वां नमो वामे । ॐ मं नमो दक्षोरौ । ॐ सों नमो वामे । ॐ मं नमो दक्षकट्यां । ॐ अरां नमो वामायां । ॐ तीं नमः अन्धुनि । ॐ यं नमो नाभौ । ॐ तों नमो हृदि । ॐ निं नमो दक्षस्तने । ॐ दं नमो वामस्तने । ॐ हां नमो दक्षपार्श्वे । ॐ तिं नमो वामपार्श्वे । ॐ वें नमो पृष्ठे । ॐ दः

नमो दक्षस्कन्धे। ॐ सं नमो वामे। ॐ नः नमो मध्ये। ॐ पं दक्षबाहुमूले। ॐ रं नमो वामे। ॐ षं नमो दक्षोपबाहौ। ॐ दं नमो वामे। ॐ तिं नमो दक्षकूर्परे। ॐ दुं नमो वामे। ॐ र्गां नमो दक्षप्रकोष्ठे। ॐ णिं नमो वामे। ॐ विं नमो दक्षमणिबन्धादितलान्ते। ॐ श्वां नमो वामे। ॐ नां नमो मुखे। ॐ वें नमो दक्षनासिकायां। ॐ वं नमो वामायां। ॐ सिं नमो दक्षनेत्रे। ॐ न्धुं नमो वामे। ॐ दुं नमो दक्षकर्णे। ॐ रिं नमो वामे। ॐ तां नमो ललाटे। ॐ त्यं नमो मस्तिष्के। ॐ ग्निः नमो मूर्ध्नि। इत्यक्षरन्यासः ॥

(घ) जात शिखायां। वेदसे ललाटे। सुनवाम कर्णयोः। सोमं नासिकायां। अराती चक्षुषोः। यत ओष्ठयोः। नि दन्तेषु। दहाति तालुनि। वेदः जिह्वायां। स ग्रीवायां। नः बाह्वोः। पर्षत् स्तनयोः। अति हृदये। दुःकुक्षौ। गाणि नाभौ। विश्वा पृष्ठे। नावा पायौ। इव वृषणयोः। सिन्धुं शिश्ने। दुः कट्योः। इता ऊर्वोः। अति जङ्घयोः। अग्निः पादयोः। अग्नी रक्षतु। इति पदन्यासे सृष्टिः॥ ततः समग्रमन्त्रेण व्यापकं विन्यस्य,।

(ङ) जातवेदसे पादयोः। सुनवाम अंगुलीषु। सोमं जानुनोः। अरातीयतो ऊर्वोः। नि गुह्ये। दहाति कट्योः। वेदः नाभौ। स हृदये। नः पृष्ठे। पर्षत् बाह्वोः। अति कण्ठे। दुर्गाणि वक्त्रे। विश्वा चक्षुषोः। नावेव नासिकयोः। सिन्धुं कर्णयोः। दुरिता ललाटे। अति मुकुटे। अग्निः मूर्ध्नि॥

(च) पादयोः विष्णवे नमः। हृदि ब्रह्मणे नमः। मूर्ध्नि परमात्मने नमः। शिखायां सप्तऋषिभ्यो नमः। नासिकायां सप्तवायुभ्यो नमः। चक्षुषोः शशिभास्कराभ्यां नमः। श्रोत्रयोः अश्विनीयदेवाभ्यां नमः। जिह्वायां सरस्वत्यै नमः। वाचि अग्नये नमः। दन्तेषु मरुद्भ्यो नमः। कण्ठे देवेभ्यो नमः। हृदि वरुणाय नमः। उदरे हव्यवाहनाय नमः। कुक्षौ पृथिव्यै नमः। कट्यां नवग्रहेभ्यो नमः। नाभौ मेरवे नमः। अस्त्रे जातवेदसे नमः। शिखायां आज्यस्थाल्यै नमः। शिरसि आज्याय नमः। नेत्रयोः ज्योतिषे नमः। कवचे बर्हिषे नमः। उद्यन्त शक्तिः। ज्वलन्तः प्रहरणं। बद्धगोधांगुलित्राणं।

(छ) यस्याः सिंहो रथे युक्तो व्याघ्रा यस्यानुगामिनः। तामिमां रुद्रसंयुक्तां दुर्गामावाहयाम्यहम् ॥ आयातु दुर्गा दुर्गरूपा अभयं मे ददातु। तां दुर्गां कुमारीमृषिभिश्च पूजितां शरणमहं प्रपद्ये। ॐ याम्यै., ॐ रौद्र्यै., ॐ आदित्यायै., ॐ कात्यायन्यै., ॐ गौर्य्यै., ॐ धात्र्यै., ॐ शक्त्यै., ॐ चामुण्डायै., ॐ

सरस्वत्यै., इति नवशक्तियुक्तायै दुर्गायै नमः । शङ्खं स्वेटं (खेटं) तथा बाणान् वामे चाभयदायिनीम् । धनुश्चक्रं तथा पात्रं दक्षिणे सुवरप्रदम्॥ चक्रं खड्गं शरञ्छूलं लोहमुष्टिं च तोमरम् । वलयं भिण्डिपालं च दधानां चोत्तरे भुजे ॥ परिघं चांकुशं चैव धारयन्तीं त्रिलोचनाम् । सिध्यन्ति सर्वकार्याणि निश्चितं हि द्विजोत्तम ।। ऋग्वेदसंस्तुतां देवीं कश्यपेन प्रकीर्तितां । जातवेदःप्रभां देवीं भुक्तिमुक्तिविधायिनीम् ।। मेरुपर्वतकुभां (?) व्याघ्रानुसारिणीं, सिंहचतुर्मुखवाहिनीमष्टादशभुजां, शुक्लवस्त्रां, शुक्तवासिनीं, सर्वाभरणभूषितां जातवेदसेदेवीं ध्यात्वा, मानसैरुपचारैः सम्पूज्य, तदेव देवीस्वरूपं स्वात्मानमित्यभेदभावनां कृत्वा रक्षाषडङ्गं कुर्यात् ।

(ज) ओं हरहरिणि मालिनि शूलिनि दुष्टग्रहनिवारिणिभ्यां स्वाहा हृदयाय नमः । अग्नितेजोज्वालामालिनि शिरसे स्वाहा । चन्द्रतेजोज्वालामालिनि शिखायै वषट् । ब्रह्मतेजोज्वालामालिनि कवचाय हुं । आदित्यतेजोज्वालामालिनि नैत्रत्रयाय वौषट्। विष्णुतेजोज्वालामालिनि सर्वतेजोज्वालामालिनि ज्वलज्वालामालिनि शूलिनि दुष्टग्रहनिवारिणि देवि दह जातवेदससम्भूते स्वाहा अस्त्राय फट्। इति षडङ्गं कृत्वा,

(झ) ॐ जातवेदसे सुनवाम सोमं सुरासरैर्द्विजगणैः पिशाचोरगराक्षसैः रात्रौ भये समुत्पन्ने अरातीयतो निदहाति वेदः राजद्वारे भये घोरे संग्रामे शत्रुसङ्कटे सर्वं रक्षति दुरितं सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा महद्भये समुत्पन्ने स्मरन्ति च पठन्ति सर्वं तरति दुर्गा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः इति पठन् स्वात्मानं स्वप्रकाशचिदानन्दमग्नं देवतामयं ध्यात्वा मूलषडङ्गं कुर्यात् । ॐ जातवेदसे सुनवाम हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनी बद्धगोधांगुलित्राणिनि हृदयाय नमः । सोममरातीयतो हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधांगुलित्राणिनि शिरसे स्वाहा । निदहाति वेदः हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधांगुलित्राणिनि शिखायै वषट्। स नः पर्षदति हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधांगुलित्राणिनि कवचाय हुं । दुर्गाणि विश्वा नावेव हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधांगुलित्राणिनि नेत्रत्रयाय वौषट् । सिन्धुं दुरितात्यग्निः हलाहलिनि ज्वलज्वालामालिनि बद्धगोधांगुलित्राणिनि अस्त्राय फट्। इति षडङ्गं कृत्वा मन्त्रेण सर्वाङ्गं व्याप्य,

(ञ) पूजनम् – स्ववामभागे कलशस्थापनं कृत्वा, स्वदक्षिणभागे शङ्खं संस्थाप्य, मध्ये अर्घ्यादिपञ्चपात्राणि संस्थाप्य, देवीसूक्तेन देवीमभिषिच्य, पीठपूजां कुर्यात्।

ॐ कालाग्निरुद्राय नमः । मण्डूकाय., आधारशक्त्यै., कूर्माय., अनन्ताय., वराहाय., पृथिव्यै. । एवमुपर्युपरि सम्पूज्य, क्षीरसमुद्राय नमः । श्वेतद्वीपाय., कल्पवृक्षाय नमः । रत्नवेदिकायै नमः, । रत्नसिंहासनाय नमः, आग्नेयादिषु धर्माय., ज्ञानाय., वैराग्याय., ऐश्वर्याय., एते पादरूपिणः ॥ अधर्माय., अज्ञानाय., अवैराग्याय, अनैश्वर्याय, एते सिंहासनगात्ररूपिणः, इति सम्पूज्य, तदुपरि ह्रीं मायायै., ह्रीं चिच्छक्त्यै. । तदुपरि आनन्दकन्दाय., संविन्नालाय., प्रकृतिमयपत्रेभ्यो., विकारमयकेसरेभ्यो., पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै । तदधः अं अर्कमण्डलाय., सं सोममण्डलाय., रं वह्निमण्डलाय., सं सत्त्वाय., रं रजसे., तं तमसे., अं अन्तरात्मने., आं आत्मने., पं परमात्मने., ह्रीं ज्ञानात्मने., आत्मतत्त्वाय., मायातत्त्वाय., विद्यातत्त्वाय., कलातत्त्वाय., मध्ये परमतत्त्वाय., इति सम्पूज्य केसरेषु पूर्वाद्यष्टदिक्षु मध्ये च पीठशक्तीः प्रपूजयेत् । ह्रीं जं जयायै., ह्रीं विं विजयायै., ह्रीं भं भद्रायै., ह्रीं भं भद्रकाल्यै., ह्रीं सुं सुमुख्यै., ह्रीं दुं दुर्मुख्यै., ह्रीं व्यां व्याघ्रमुख्यै., ह्रीं सिं सिंहमुख्यै., मध्ये- ह्रीं दुं दुर्गायै इति सम्पूज्य ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः, इति पीठं सम्पूज्य, तदुपरि मूलमन्त्रमुच्चरन् देवीयन्त्रं संस्थाप्यावाहनं कुर्यात् । यस्याः सिंहो रथे युक्तो व्याघ्रा यस्यानुगामिनः । तामिमां रुद्रसंयुक्तां दुर्गामावाहयाम्यहम् ॥ इत्यावाह्य आवाहिता भव, स्थापिता भव, सन्निरोधिता भव, सम्मुखीकृता भव, अवगुण्ठिता भव, सकलीकृता भव, परमीकृता भव, अमृतीकृता भव, इत्युच्चरन् तत्तन्मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥ ध्यानम् –

> विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
> कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
> हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखं चापं गुणं तर्जनीं
> बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां स्मरेत् ॥

इति ध्यात्वा, मूलमन्त्रेणार्घ्यपाद्याचमनीयमधुपर्कादि [पुष्पान्तां] पूजां कृत्वा **आवरणपूजामारभेत्** । यथा –

(1) षट्कोणे- [देव्याः] आग्नेयकोणे जातवेदसे सुनवाम हृदयाय नमः । - ईशानकोणे सोममरातीयतः शिरसे स्वाहा । नैऋत्ये निदहाति वेदः शिखायै वषट् । वायव्ये स नः पर्षदति कवचाय हुं । मध्ये दुर्गाणि विश्वानावेव नेत्रत्रयाय वौषट् । पूर्वादिचतुर्दिक्षु सिन्धुं दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट् । इति षडङ्गपूजा**प्रथमावरणम्** ॥

(2) ततो अष्टदलेषु पूर्वादिप्रादक्षिण्येन-जातवेदसे नमः, सप्तजिह्वाय नमः, हव्यवाहनाय., अश्वोदरजाय., वैश्वानराय., कौमारतेजसे., विश्वमुखाय., देवमुखाय नमः । इति **द्वितीयावरणम्** ॥

(3) ततः पत्राग्रेषु पूर्वादिचतुर्दिक्षु-ॐ पृथिव्यात्मने., सलिलात्मने., अग्न्यात्मने., वाय्वात्मने. । आग्नेयादिकोणेषु निवृत्त्यै., प्रतिष्ठायै., विद्यायै., शान्त्यै नमः । इति **तृतीयावरणम्** ॥

(4) ततः पूर्वादिकोणेषु [भूपुरस्येत्यनुमीयते] (दिग्विदिक्षु) प्रादक्षिण्येन - (1) वचनात्मिकाभिमुखीभ्योऽधोमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः., - ॐ जां जागरायै., ॐ तं तपनायै., ॐ वें वेदगर्भायै., ॐ दं दहनरूपिण्यै., ॐ सें सेन्दुखण्डायै. । (2) शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यङ्मुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः- ॐ शु शुम्भहन्त्र्यै., ॐ नं नभश्चारिण्यै., ॐ वां वागीश्वर्यै., ॐ मं मन्दवाहायै., ॐ सों सोमरूपायै.। (3) षाट्कोशिकमयात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यङ्मुखीभ्यः क्लीबदेवताभ्यो नमः- ॐ मं मनोजवायै., ॐ मं मरुद्वेगायै., ॐ रां रात्र्यै., ॐ तीं तीव्रकोपायै., ॐ यं यशोवत्यै., ॐ तों तोयात्मिकायै. । (4) षडूर्म्यात्मिकाभिमुखीभ्यः ऊर्ध्वमुखीभ्यः क्लीबदेवताभ्यो नमः- ॐ निं नित्यायै., ॐ दं दयावत्यै., ॐ हां हारिण्यै., ॐ तिं तिरस्क्रियायै., ॐ वें वेदमात्रे., ॐ दं दमनप्रियायै. । (5) सप्तधात्वात्मिकाभिमुखीभ्य उभयमुखीभ्यः क्लीबदेवताभ्यो नमः- ॐ सं समाराध्यायै., ॐ नं नन्दिन्यै., ॐ पं पराक्यै., ॐ रं रिपुमर्दिन्यै., ॐ षं षष्ठ्यै., ॐ दं दण्डिन्यै., ॐ तिं तिग्मायै. । (6) पञ्चभूतात्मिकाभिमुखीभ्यस्तिर्यङ्मुखीभ्यः क्लीबदेवताभ्यो नमः - ॐ दुं दुर्गायै., ॐ गां गायत्र्यै., ॐ णिं निरवद्यायै., ॐ विं विशालाक्ष्यै., ॐ श्वां श्वासोद्वाहायै. (7) कर्मेन्द्रियात्मिकाभिमुखीभ्य ऊर्ध्वमुखीभ्यः स्त्रीदेवताभ्यो नमः — ॐ नां नान्दिन्यै., ॐ वें वेदनायै., ॐ वं वह्निगर्भायै., ॐ सिं सिंहवाहाह्वयायै., ॐ धुं धुर्यायै. । (8) ज्ञानेन्द्रियात्मिकाभिमुखीभ्यः ऊर्ध्वमुखीभ्य स्त्रीदेवताभ्यो नमः — ॐ दुं दुर्विषयायै., ॐ रिं रिरंसायै., ॐ तां तापहारिण्यै., ॐ त्यं त्यक्तदोषायै., ॐ ग्निः निःसपत्नायै । एताः [सर्वाः देवताः] प्रज्वलत्केशवदना भीमदंष्ट्रा भयापहा ध्येयाः । इति **चतुर्थावरणम्** ॥ [**वसु.** — (क) यहाँ 1 से 4 पूर्वादिचार में और 5 से 8 अग्नि आदि चार में रखे जाएँ अथवा 1 से 8 पूर्वादि प्रादक्षिण्य से रखें । (ख) इन आठ (दिग्विदिक्) स्थानों में प्रत्येक स्थान में देवताओं की संख्या पाँच से सात तक की है, जिनको किस पद्धति से रखा जाए, इसकी स्पष्टता नहीं है । यहाँ प्रादक्षिण्यक्रम उचित लगता है ।]

(5) ततस्तद्बहि: पूर्वादिदलेषु–लं इन्द्राय., रं अग्नये., मं (टं) यमाय., क्षं निर्ऋतये., वं वरुणाय., यं वायवे., सं कुबेराय., हौं ईशानाय. । इति **पञ्चमावरणम्** ॥

(6) ततस्तद्बहि: – वं वज्रायुधाय., शं शक्त्यायुधाय., दं दण्डायुधाय., खं खड्गायुधाय., पां पाशायुधाय., क्रों अंकुशायुधाय., गं गदायुधाय., शूं शूलायुधाय. । इति **षष्ठावरणम्** ॥ एवं सम्पूज्य सौभाग्यद्रव्यादि–नैवेद्यान्तं कृत्वा दृष्टे सूर्यार्धबिम्बे अतिप्रज्वलिते, पूजिते वह्नौ जुहुयात् [अष्टमंगलनामाग्नि: दुर्गाहोमे इति मेरुतंत्रे, पुरश्चर्याणवे–पृ. 1178] ।

(ट) तत: आसूर्यास्तं आज्यहोमं ब्रह्मभोजनं च समाप्य, देवतायै आचमनादिकं दत्वा, धूपाद्युपचारान् दत्वा, होमोत्तरांगानि समाप्य, युग्मसंख्यद्विजै: पुण्याहं वाचयित्वा, तान् दक्षिणादिभि: सन्तर्प्य, वैष्णवदम्पतीमाहूय, पत्यौ नारायणं पत्न्यां लक्ष्मीं चावाह्य, संपूज्य, भोजयित्वा, वस्त्रादिभि: सन्तोष्य, कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा सहृद्युतो भुंजीत ।

[**वसु.** – उपबाहु = The Lower arm; आप्टे का शब्दकोश । इस अर्थ के अनुसार उपबाहु का स्थान कूर्पर और मणिबन्ध के मध्य में है, परंतु यहाँ बाहुमूल, उपबाहु और कूर्पर ऐसा न्यास–क्रम होने से यह स्थान बाहुमूल और कूर्पर की मध्य का प्रतीत होता है।]

[4] नारायणीमयी सुभगा यक्षिणी का साक्षात्कार

(क) अनुष्ठान के नियमादि – (1) यह अनुष्ठान पूर्णिमा से शुरू करके 30 रात्रि का है, जो द्वितीय पूर्णिमा को समाप्त होता है। (2) शुक्ल चतुर्दशी के दिन [प्रायश्चित्त एवं] उपवास करें। (3) घनी सुन्दर वाटिका में [स्ववामे] (घृत) दीपक और [स्वदक्षमें] जलपूर्ण कुंभ [विधि सहित स्थापित कर] के मध्य में आसन पर बैठ कर, प्रतिदिन (क) दश हज़ार मंत्रजप, (ख) एक हज़ार का तर्पण (ग) 100 की संख्या में [गोघृत का] होम करके (घ) पक्व शाली –चावल में दूध, घी एवं गुड मिश्रित करके यक्षिणी को बलिदान दें । (ङ) और सुलक्षणा स्त्री [में यक्षिणी का आवाहन करके उस] की पूजा करके, उसे भोजन, वस्त्र, दक्षिणादि से सन्तुष्ट करें । (च) फिर एक ही बार, रात्रि के समय हविष्यान्न [गेहूँ, यव, चावल, घी, दूध, शक्कर आदि] का आहार करें। [अर्थात् दिन में उपवास करें । रात्रि के आठ–नौ दरम्यान सुवासिनी–भोजन हो

जाए, ऐसा क्रम अनुकूल रहेगा।] (4) यह अनुष्ठान ब्रह्मचर्यपालन सहित तीस रात्रि तक अविच्छिन्न रूप से चलाना चाहिए, एक रात्रि भी तूटना न चाहिए। (5) अन्त में द्वितीय पूर्णिमा के दिन व्रत (उपवास) रख कर इस अनुष्ठान को समाप्त करें - [42-64 से 71]।

(ख) अनुष्ठान —

(1) मंत्र - ह्रीँ सुभगे स्वाहा। [षडक्षरमंत्र] - [42-63; 64; पृ. 504]।

(2) ध्यान — द्विभुजा नारायणी के दोनों हाथों में कमल हैं। बीसतंतु जैसी उनकी आभा है। नेत्रों के प्रान्त भाग काले हैं। घुंघराले काले बाल हैं। मुख स्मितपूर्ण [आनन्दित] है। सभी प्रकार के आभरण एवं उत्तम दुकूलवस्त्र धारण किये हुए हैं। वह शुभा है, कमनीया है एवं सौभाग्यवती है। ऐसा ध्यान करते हुए जप, तर्पण, होमादि करें - [42-66 से 68]।

(3) प्रत्यक्ष दर्शन — द्वितीय पूर्णमासी को वह जब प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो जाए, तब उनके साथ माता, बहन या मित्रता का संबंध रखे, पत्नी का कभी भी नहि।

(4) मोक्ष की इच्छा हो तो उसके स्थूल, सूक्ष्म एवं पर-रूप की क्रम से उपासना करे और पर-रूप की [निष्काम] उपासना करते करते, [अपनी योग्यता को बढाते हुए] अन्त में दिव्य विष्णुपद को प्राप्त करें - [42-64 से 76; पृ. 504-6]। [विष्णुपद प्राप्ति के लिए ही परिश्रम करें, नाशवंत सांसारिक सुखों के लिए नहि। जब तक फल-प्राप्ति न हो जाए तब तक इस अनुष्ठान को सन्तत चालू रखें, प्रमाद न करें]।

[**वसु.** — भाषान्तरकारेण (क) 'आसीनो मध्यतः सम्यक् पूर्णकुंभप्रदीपयोः'- [42-65], इत्यस्य अर्थः 'दो प्रदीपयुक्त पूर्ण कुंभ के मध्य में' इति कृतः तदर्थो अशुद्धः। यदि एषोऽर्थः अभिप्रेतः स्याच्चेत् 'सदीपपूर्णकुंभयोः' इति विधानं कृतं भवेत्। (ख) असितापांगीम् - [42-66] इत्यस्य 'नीले अंगवाली' इति अर्थः कृतः सोऽपि नितरामशुद्धः, ['अपांगो नेत्रयोरन्तः'] इति अमरकोशवचनात्। न च पण्डितः मालवीय-महोदयः अपांगपदस्यार्थो न जानातीति शंकनीयम्, पदस्यास्यातिप्रसिद्धेः। अतः अनेन विदुषा अन्यद्वारा भाषान्तरं कारितमित्यनुमीयते।]

3 श्रीं आदि बीजमंत्र

ह्रीं देवी की पाँच रश्मियाँ हैं – श्रीं, ऐं, क्लीं, औः, क्ष्म्रीं - [26 = 42]।
श्रीँ—श्रीँ और ह्रीँ दोनों शक्तियाँ नारायणी का शरीर हैं। दोनों शक्तियाँ दिव्य, परानिष्ठा, एवं विष्णुप्रिया हैं। दोनों सभी कामनाओं को पूर्ण करती है एवं परम गति देनेवाली है। दोनों में उच्च अवच कक्षाभेद ही है, जैसे कि परं ब्रह्म में ॐकार रहता हैं। ब्रह्म के भवद्-भावात्मक उन्मेष में ह्रींकार स्थित है और ब्रह्म के शान्तरूप (प्रथम) अवरोह में श्रीं का निवास है - [26-2 से 11; पृ. 253-54]।

ऐं – (1) ऐं में चार स्वर हैं अ, आ, इ, ई, । इनकी सन्धि करने से ऐ बनता है, फिर बिन्दु का संयोजन है। (2) अकार रूप अप्रमेय, अनादि, अनन्त एवं व्यापक परमात्मा की शक्तिस्वरूपा कमला (= ऐं) जगत का उत्पत्ति-स्थान हैं। वह त्रैलोक्य के सभी [बद्ध, मुक्त एवं नित्य] जीवों को ऐश्वर्य प्रदान करती है। आ = आकार रूप आनन्द से परिपूर्ण यह शक्ति सर्व प्राणियों की रक्षिका है। इ = वह इकार से उत्पन्न इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया से युक्त है। ई = ईकार-वर्ण इन्धन, दीपन, ज्ञान एवं इच्छा रूप है। रति एवं क्रीडा इस शक्ति की क्रिया है। (3) ऐं रूपा शक्ति अकार द्वारा भुवनाध्वारूप में लोकों को विस्तृत करके आखिर बिन्दुरूप परमात्मा में स्थित हो जाती है। यह वाणी की जननी है। [अतः उसे वाग्बीज कहा है।] - [26-16 से 25; पृ. 255-56]।
[वसु. – (1) ऐं का सम्बन्ध भुवनाध्वा के साथ है। (2) परशुराम-कल्पसूत्र में श्रीक्रम में यागमन्दिर प्रवेश के बाद सभी मंत्रों के आदि में ऐं ह्रीं श्रीं [त्रितारी] मंत्र की योजना करने का विधान है - [परशु., 3-8; पृ. 91]। वृत्तिकार रामेश्वरजी स्पष्टता करते हैं कि, त्रितारी मंत्र से इन मंत्रों का संस्कार होता है। लक्ष्मीतंत्र में श्रीं और ऐं से ह्रीं की कक्षा उच्च बताई है अतः यहाँ ऐसा अनुमान हो सकता है कि, प्रधानभूत ह्रींकार के अधिप्रत्यधि देवता के रूप में ऐं और श्रीं हो सकते हैं, ऐसा प्रतीत होता है। (3) मंत्रादि में ऐँ बीज धर्मप्रद है।]

क्लीँ – इसमें क्, ल्, ई और बिन्दु हैं। इसे कामबीज कहते हैं। इन वर्णों में क परा प्रकृति है। वह पुरुषेश्वर लकार के साथ संयुक्त होकर सृष्टि की रचना करती है। ईकार [माया] श्री है। इसके तीन रूप हैं - (1) अव्यक्त, (2) पुरुष और (3) ईश्वर। यह विद्या कामनाओं की जन्मदात्री है, प्रद्युम्न की

परम शक्ति है, जो सत्त्व एवं तमो गुण को अल्पभोग से रंजित करती है। इसे रजोगुणी पश्चिमानन भी कहते हैं। [अपना कार्य समाप्त करके] आखिर में यह ई शक्ति बिन्दु में स्थित हो जाती है - [26-26 से 30; पृ. 257]।

औं – इस बीज में अ, आ, उ, ऊ और बिन्दु ये पाँच वर्ण हैं। इन में ऊकार स्वयं नारायणी है, जो विष्णु की प्रज्ञाप्रसू है। **अकार** [अप्रमेय] से उदित होकर आवर्ण रूपा महान् आनन्दमयी वह देवी प्रज्ञा का आधारभूता बनकर उकार से संयुक्त होकर आखिर बिन्दु में स्थित हो जाती है। [इस तरह **औं** बीज बनता है।]

औः – फिर वही देवी विसृष्टि [सर्जन] के लिए विसर्ग में आ जाती है। [इस तरह **औः** बीज बनता है।]। [**वसु.** – पुनर्विसृष्टियोगाय परमेश्वरमागता- लक्ष्मी. 26-34, । दुर्गापाठ में 'विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं,' मंत्र में चतुर्धरीकारने सृष्टिकाले ऐसा अर्थ किया है और 'उत्पादने विषये' कहकर शान्तनवीकार ने इस का समर्थन किया है- दुर्गा; पृ. 70]

शब्द और अर्थ की दृष्टि से इस विद्या के दो भेद बनते हैं। तीन बीजोंवाली [ऐं क्लीं औः ये तीन बीज हो सकते हैं] इस विद्या को **त्रिपुरा** कहा गया है, जिसका अनुलोम, विलोम प्रयोग से आत्मा की समता [आत्मसाम्यप्रदापि च] प्राप्त होती है। जप होम आदि से की गई साधना से यह विद्या कामनाओं की पूर्ति करती है। स्वर व्यंजन के संयोग से इसके अनेक भेदप्रभेद बन सकते हैं - [लक्ष्मी. 26-30 से 36]।

[**वसु.** – (1) ऐं क्लीं औः अनुलोम है, जबकि औः क्लीं ऐं विलोम हैं। (2) बाला में ऐं क्लीं सौः है। इसमें स् व्यंजन का संयोग किया गया प्रतीत होता है। इस तरह अनेक प्रभेद बन सकते हैं। (3) श्लोक 26-33 में अनुवादक ने व्योमेश का अर्थ बिन्दु किया है, जबकि विमर्शिनीकारने एक ओर 26-33 में व्योमेश का अर्थ विसर्ग बताया है, तो दूसरी ओर 26-34 में व्योमेश का अर्थ बिन्दु बताया है, जो विचारणीय है। अन्ते व्योमेशः बिन्दुः। पुनर्विसर्गः। एषां योगे **औः** इति भवति। यहाँ औः में बिन्दु को भी जोड दिया हैं। यदि औंः [बिन्दु और विसर्ग दोनों का संयोजन] ऐसा लिखा जाए तो उसका उच्चारण कैसे हो सके? औम्हू अथवा औहूम् ऐसा उच्चारण करना पडे, जो

आज तक कहीं भी नहीं सुना गया, विद्वद्गण इसका निर्णय करे। (4) व्योमेश का अर्थ 26-24, 29 श्लोकों में और पारिभाषिक शब्दसूचि में बिन्दु ही है और परमेश्वर का अर्थ 26-34 आदि में विसर्ग है। इस लिए औ को बिन्दु भी लगाना है और विसर्ग भी लगाना है। इसका सुझाव ऐसा हो सकता है कि औ बीज प्रज्ञा का आधार है अर्थात् प्रज्ञाप्राप्ति के लिए **औं** सारस्वत बीज से उपासना करें और वर्णात्मिका सृष्टि के लिए **औः** सारस्वत बीज बनता है, अर्थात् शब्द-अर्थजन्य विद्वत्ता प्राप्ति के लिए **औः** सारस्वतबीज से सरस्वती की उपासना की जाए। दूसरा सुझाव ऐसा भी हो सकता है कि, सारस्वत बीज का सूक्ष्मरूप **औं** है जबकि **औः** स्थूलरूप है। सूक्ष्म की कक्षा ऊँची है, जबकि स्थूल की कक्षा नीची है। प्रज्ञाप्राप्ति के लिए विद्वान् होना जरूरी नहीं है।]

क्ष्म्रीँ (महालक्ष्मीविद्या) –

क्, ष्, म्, र्, ई और बिन्दु मिला के **क्ष्म्रीं** बीजमंत्र बनता है। इस बीजमंत्र से महालक्ष्मी की उपासना करने से चारों पुरुषार्थों का विस्तार और संक्षेप हो सकता है। यह विद्या सभी कार्यों को सिद्ध करती है – [26-37 से 41; पृ. 259-60]।

नारायणी के विविध अवतार

यद्यपि नारायण और नारायणी के बीच अविनाभावसंबंध है, फिर भी कभी कभी अकेली नारायणी भी असुरवधार्थ अवतार धारण करती है।

(1) चतुर्भुजा महालक्ष्मी – चतुर्भुजा महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती का विस्तृत वर्णन स्वतंत्र रूप से किया गया है।

(2) महिषमर्दिनी और शक्रादिस्तुति – वह चतुर्भुजा महालक्ष्मी स्वायंभुव मन्वन्तर में महिष-मर्दिनी बनी। देवों के शरीरों में महालक्ष्मी की जो जो शक्तियाँ थीं, वे शक्तियाँ एक साथ मिलकर महिषमर्दिनी का रूप बना। देवताओं के आयुध उसी आकार में इस देवी के पास आ गए। जब महिषासुर का वध किया, तब देवों ने महिषान्तकरी सूक्त [शक्रादि-स्तुति] का साक्षात्कार किया। महिषमर्दिनी देवी की उत्पत्ति, युद्धकथा और शक्रादि-स्तुति द्वारा देवी की प्रार्थना करने से, ध्यान एवं प्रणाम करने से स्थिर आधिपत्य मिलता है – [9-8 से

14; पृ. 92, 93] । [**वसु.** – (क) दुर्गा सप्तशती के 2 से 4 अध्यायों में यह वर्णन है । (ख) स्थिर सत्ता की प्राप्ति के लिए और सत्ता चली जाने का भय हो, तब इस मध्यम चरित से महिषमर्दिनी का अनुष्ठान किया जाए । **'एकेन वा मध्यमेन'** इस नियम भी केवल मध्यम चरित की उपासना का समर्थक है । (ग) लक्ष्मी प्राप्ति के लिए इसका उपयोग करके देखो । अनुभव हमें लिखो । (घ) प्रत्येक मंत्रान्ते पाठक एवं यजमान दोनों प्रणाम करें । फल त्वरित मिलता है ।]

(3) महाकाली और रात्रिसूक्त – योगनिद्रा महाकाली है । योगनिद्रा से मधु-कैटभ को मोहित किया और विष्णु ने उन दोनों का वध किया । उस समय ब्रह्मा ने योगनिद्रा की स्तुति के लिए **विश्वेश्वरीसूक्त [रात्रिसूक्त]** का साक्षात्कार किया । इस वैष्णवी माया महाकाली की स्तुति करने से चर-अचर जगत वश में आ जाता है । प्राणीमात्र के हित के लिए इस देवी की उत्पत्ति, चरित और स्तोत्र को धारण किया जा सकता है - [9-15 से 19; पृ. 93-94] । [**वसु.** – दुर्गा सप्तशती के प्रथम चरित में यह वर्णन विस्तार से है ।]

(4) कौशिकी और नारायणी स्तुति – परा महाविद्या-रूपा महालक्ष्मी तामस मन्वन्तर में गौरी के देह से कौशिकी नाम से उत्पन्न हुई । यह अवतार दुष्ट दैत्यों एवं शुंभनिशुंभ के वधार्थ था । उस समय श्रेष्ठ देवताओं में महालक्ष्मी की जो जो शक्तियाँ थीं, उन शक्तियों ने उन उन देवताओं के रूप लेकर कौशिकी की सहायता की । उन शक्तियों के द्वारा दुष्ट दैत्यों का विनाश करके, उन शक्तियों को अपने में समेट लिया और उसके बाद शुंभनिशुंभ का वध किया । उस समय अग्नि आदि देवों ने नारायणी स्तुति [दुर्गा. अध्याय 11] का साक्षात्कार किया । कौशिकी की प्रसन्नता के लिए उत्पत्ति, युद्धकथा और स्तुति ये तीन अंग अनिवार्य हैं । कौशिकी नारायणी की उपासना सर्वकामप्रदा है और सर्वज्ञता भी देती है - [9-20 से 27] । [**वसु.** – दुर्गा सप्त. के उत्तम चरित में यह कथा विस्तार से है ।] गौरी के शरीरकोश से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम कौशिकी हुआ - [दुर्गा - 5-87] ।

(5) सुनन्दा – वैवस्वत मन्वन्तर में जब शुंभ-निशुंभ जन्म लेंगे तब महालक्ष्मी स्वयं नन्द-यशोदा के घर विन्ध्यवासिनी सुनन्दा के रूप में अवतरित होकर उन दोनों उपद्रवियों का वध करेगी - [9-28, 29; पृ. 95-96] ।

[**वसु.** – शान्तनवी टीकाकार का कहना है कि, जिस शुंभ-निशुंभ का वध हुआ, उनसे भिन्न शुंभ-निशुंभ उत्पन्न होंगे - दुर्गा. 11-37; पृ. 252] ।

(6) रक्तदन्तिका – महालक्ष्मी इसी वैवस्वत मन्वन्तर में अत्यंत घोर रूप धारण करके वैप्रचित्त असुरों का वध करेगी । उस समय उनके दांत रक्तवर्ण के होंगे, अतः रक्तदन्तिका नाम होगा - [9-30 से 32; पृ. 96] । [**वसु.** – विरुद्धा प्रजासु चितिर्ज्ञानं यस्य सः विप्रचित्तिः । तस्य दानवस्य अपत्यानि पुमांसः वैप्रचित्ताः इति शान्तनवी-दुर्गा.; 11-39; पृ. 253]

(7) शाकंभरी-शताक्षी, दुर्गा – उसी (वैवस्वत) मन्वन्तर के चालिसवें युग में 100 वर्षों तक वृष्टि नहीं होगी । कहीं भी जल नहीं रहेगा । तब (लोकसंरक्षणार्थ) मुनिगण महालक्ष्मी का स्मरण करेंगे । तब महालक्ष्मी स्वयंभू जन्म लेकर अपने 100 नेत्रों से निरीक्षण करेगी । इसलिए मानवसमुदाय उसे शताक्षी कहेंगे । उस समय वह देवी अपने शरीर से विविध शाक [शाकं दशविधं स्मृतम्] उत्पन्न करके प्राणियों का पोषण करेगी । अतः देवगण शाकंभरी नाम से उनकी स्तुति करेंगे । उसी अवतार में दुर्गम नामक असुर का वध करने से उनका नाम दुर्गा होगा । शाकंभरी की स्तुति, ध्यान, पूजा और प्रणाम करने से खाने-पीने की अक्षय्य तृप्ति बनी रहेगी - [9-33 से 38; पृ. 96-97] । [**वसु.** – अनुवादक ने दुर्गम् आख्यं ऐसा समझकर असुर का नाम दुर्ग बताया है, परंतु दुर्गासप्तशती की चतुर्धरी, शान्तनवी और नागोजीभट्टी टीका में दुर्गम नाम बताया है - [दुर्गम-आख्यम्], जो बलवान पक्ष है - [दुर्गा. 11-45; पृ. 255] । शान्तनवी में ऐसा भी कहा है कि, 'दुर्गम इति आख्या यस्य सः । दुःखेन गम्यते इति दुर्गमः, दुःखेन गच्छति अत्र इति दुर्गः । दुर्ग एव दुर्गमः । दुर्गासुरो हन्तव्येन यस्याः सा दुर्गा इति - [दुर्गा. 11-45, 46] । इस तरह शान्तनवीकार दोनों नामों का स्वीकार करते हैं ।]

(8) भीमा – उसी [वैवस्वत] मन्वन्तर के पचासवें चतुर्युग में मुनियों के रक्षणार्थ हिमाचल में, सुन्दर होने पर भी भयंकर रूप धारण करके राक्षसों का भक्षण करेगी, तब विनम्र मुनिगण भीमा देवी की स्तुति करेंगे - [9-39 से 41; पृ. 97-98] । [**वसु.** – दुर्गा. में यही कथा है - दुर्गा. - 11-50 से 52] ।

(9) भ्रामरी – उसी (वैवस्वत) मन्वन्तर के 60 वें युग में अरुणदैत्य मुनिगण को पीडा पहुंचाएगा। तब महालक्ष्मी असंख्य भ्रमरात्मक रूप धारण करके उसका वध करेगी। इसलिए लोकसमुदाय भ्रामरी देवी के नाम से उनकी स्तुति करेंगे - [9-41 से 43; पृ. 97-98]। [**वसु.** – दुर्गा सप्तशती के टीकाकारों ने भ्रामर -रूप को इस तरह समझाया है - (क) भ्रमर-समूहात्मकं रूपम्। असंख्येयाः भ्रमराः यस्मिन् रूपे तत् इति चतुर्धरी। (ख) भ्रामरं रूपं=भ्रमर-सम्बन्धिनीं मूर्तिं कृत्वा - इति शान्तनवी। (ग) भ्रामरं=पाणिधृतभ्रमरम्। असंख्येयाः षट्पदाः यस्मिन् रूपे तत् इति नागोजीभट्टी – दुर्गा स. 11-49; पृ. 256]।

नमो देव्यै. स्तुति [देवीसूक्त] – इन अवतारों की मूल देवी चतुर्भुजा महालक्ष्मी है, जिनकी स्तुति के लिए, ब्रह्मादि देवों ने **नमो देव्यै.** सूक्त का साक्षात्कार किया। यह सूक्त श्रेष्ठ एवं सर्वकामप्रद है। इस सूक्त से महालक्ष्मी की स्तुति करने से क्लेशों का विनाश होता है, ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है - [9-46 से 48]। [**वसु.** – वैकृतिक रहस्य में भी इसी स्तोत्र से महालक्ष्मी की पूजा का विधान है - [वै. र. 23]। दुर्गा सप्तशती के तेरहवे अध्याय में कहा है कि, सुरथ वैश्य ने देवीसूक्त का जप करते करते तपस्या करके देवी का साक्षात्कार किया - [दुर्गा. 13-10 से 13]। इसका अर्थ यह हुआ कि शतचंडी आदि सभी चंडीयज्ञों में, देवीपूजन में एवं लक्ष्मी उपासना में श्रीसूक्त के अलावा देवीसूक्त का भी उपयोग अत्यावश्यक है। इसके अलावा अन्य तीन सूक्तों का भी उपयोग कहीं न कहीं करना जरूरी है।]

महालक्ष्मी के अवतार, कर्म और स्तोत्र – स्वारोचिष मन्वन्तर में ऋषि वसिष्ठ ने राजा सुरथ और समाधि वैश्य को [चतुर्भुजा] महालक्ष्मी के अवतार, कर्म और स्तोत्र बताए थे। इसका [दुर्गा सप्तशती का] ब्राह्मण के मुख से श्रवण एवं स्वयं अध्ययन करने से (क) माया को हटाकर ज्ञान मिलता है। (ख) सर्व प्रकार की संपत्तियाँ मिलती हैं, आपत्तियाँ नष्ट होती हैं (ग) सौभाग्य एवं कीर्ति प्राप्त होती है - [9-49 से 54]। [**वसु.** – (क) अध्ययन का अर्थ है मन लगाकर, समझकर दुर्गापाठ करें, तोते की तरह केवल रट न जाए। अलबत, अश्रद्धा से भी किये गए दुर्गापाठ से फल मिलने का अनुभव है। अध्ययन शैली से दुर्गापाठ करने से शीघ्र एवं अधिक फल मिलता है। (ख) यहाँ ब्राह्मण के मुख से दुर्गापाठ सुनने का विधान है, जो अत्यंत महत्त्वपूर्ण

है। दुर्गापाठ के बारहवे अध्याय में श्रवण करने का और पाठ करने का बार बार विधान किया गया है। अतः श्रीसूक्त के अनुष्ठान में महालक्ष्मीपूजन के अवसर पर प्रार्थना के समय ब्राह्मणमुख से दुर्गापाठ सुने और इसके बाद स्वयं पाठ करें। प्रत्येक मंत्र के अंत में प्रणाम करने का अधिक फल है।]

महालक्ष्मी और विष्णु – यद्यपि ये अवतार अकेली चतुर्भुजा महालक्ष्मी के हैं, भगवान् विष्णु इन के साथ अवतरित नहीं हुए हैं, फिर भी इन दोनों में अविनाभाव संबंध होने से महालक्ष्मी में विष्णु स्थित हैं और भगवान् विष्णु में महालक्ष्मी स्थित हैं। ये सभी अवतार कोशपंचक में अर्थात् मायाकोश से लेकर जीवदेहकोश में हुए हैं। भवद्भावात्मक अवतार शुद्धकोश [शक्तिकोश] में हुए हैं - [9-54 से 58]।

[**वसु.** – (क) विष्णु और लक्ष्मी के अविनाभाव संबंध का अर्थ यह हुआ कि (1) श्रीसूक्त से जब लक्ष्मी की उपासना करना हो तब अकेली लक्ष्मी की मूर्ति नहीं, परंतु लक्ष्मीनारायण की मूर्ति की पूजा की जाए। श्रीसूक्त का यंत्र रखकर उस यंत्र की पूजा करनी हो, तब भी यंत्र-गत लक्ष्मी के साथ नारायण की भी कल्पना की जाए और पूजा भी दोनों की एक साथ की जाए। (2) श्रीसूक्त पाठ का निश्चित संख्या में आवर्तन करें। परंतु पूजा के अवसर पर पुरुषसूक्त का भी उपयोग करें। प्रार्थना के अवसर पर विष्णुसहस्र का पाठ करके फिर दुर्गापाठ करें।] **(ख) मन्वन्तर** - मनुस्मृति में स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और वैवस्वत इस क्रम से सात मन्वन्तर के नाम हैं - [मनु. 1-61 से 63, पृ. 17-18 और आप्टे-कृत सं. इंग्लीश डिक्षनरी]। वर्तमान समय में वैवस्वत मन्वन्तर का अट्ठाइसवाँ कलियुग चल रहा है - (हेमाद्रिप्रोक्त स्नानसंकल्प)।

(ग) शाकंभरी और भीमा का समय – भाषान्तरकार मालवीयजी ने शाकंभरी - [9-33] और भीमा का अवतार - [9-39] तामस मन्वन्तर में भूल से बताया हैं। (1) लक्ष्मीतंत्र में महिषमर्दिनी का अवतार स्वायंभुव मन्वन्तर में है - [9-8]। यह प्रथम मन्वन्तर है। कौशिकी अवतार तामस में बताया है। - [9-20] और सुनन्दावतार वैवस्वत मन्वन्तर में होनेवाला बताया है - [9-28; 29] (2) महिषमर्दिनी और कौशिकी के बीच में योगनिद्रा का वर्णन है - [9-15 से 19]। अतः योगनिद्रा को स्वायंभुव मन्वन्तर में माना जाए।

(3) कौशिकी के पश्चात् सुनन्दा का वर्णन है। सुनन्दावतार वैवस्वत मन्वंतर में हुआ - [9-28, 29]। सुनन्दावतार के बाद रक्तदन्तिका-अवतार-वर्णन में पुनश्च - [9-30]; शाकंभरी वर्णन में तस्मिन्नेवान्तरे - [9-33], भीमावतार वर्णन में चतुर्युगे च पंचाशत्तमे - [9-39], भ्रामरीवर्णन में युगे षष्टितमे - [9-41] शब्दप्रयोग किये हैं, जिनका संबंध सुनन्दावतार के समय [वैवस्वत मन्वन्तर] के साथ ही हो सकता है। इन चारों अवतार-वर्णन में भविष्यकाल का प्रयोग किया गया है। शास्त्र के नियमानुसार पूर्व की अनुवृत्ति होती है। (4) महिषमर्दिनी - [9-8 से 14], योगनिद्रा - [9-15 से 19] और कौशिकी वर्णन में - [9-20 से 27] भूतकाल का प्रयोग किया गया है। यदि शाकंभरी और भीमा तामस मन्वन्तर में होते, तो उनके वर्णन में भी भूतकाल का ही प्रयोग होता। अतः निश्चितरूप से कह सकते हैं कि, शाकंभरी और भीमावतार का समय वैवस्वत मन्वन्तर ही है। (5) दुर्गा सप्तशती के टीकाकारों ने भी रक्तदन्तिका, शाकंभरी, भीमा और भ्रामरी अवतार वैवस्वत मन्वन्तर में ही बताए हैं - (वैवस्वत-मन्वन्तरे एव चत्वारिंशत्तमे युगे शताक्षी-शाकंभरी-अवतारः। तस्मिन्नेवान्तरे शक्र चत्वारिंशत्तमे युगे इति लक्ष्मीतंत्रोक्तेः इति नागोजीभट्टी - [दुर्गा. 11-44; पृ. 255]; भीमावतारस्तु नाद्यापि जातः। वैवस्वते एव मन्वन्तरे पंचाशत्तमे चतुर्युगे भविष्यति इति लक्ष्मीतंत्राददिति केचित्। वस्तुतस्तु रक्तदन्त्यादयः षड्पि अवताराः भाविनः एव इति गुप्तवती - [दुर्गा. 11-48; पृ. 256]। डो. मालवीयजी लक्ष्मीतंत्र की द्वितीयावृत्ति में अपनी उस क्षति को सुधार लें।)।

(घ) सुनन्दादि देवियों की संख्या – तंत्र परंपरा में सुनन्दा (नंदा), रक्तदन्तिका, शाकंभरी, दुर्गा, भीमा और भ्रामरी की संख्या के संदर्भ में दो पक्ष हैं- एक पक्ष शाकंभरी और दुर्गा को अभिन्न मानता है, जबकि दूसरा पक्ष इन दोनों को भिन्न मानता है।

(1) शाकंभरी, शताक्षी और दुर्गा की अभिन्नता – लक्ष्मीतंत्र - [9-33 से 38], दुर्गा सप्तशती - [दुर्गा. 11-47 से 50] और दुर्गापाठ का मूर्ति रहस्य इन दोनों को अभिन्न मानते हैं। [शाकंभरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता - मूर्ति. 15] इस तरह इस पक्ष में इन देवियों की संख्या पाँच की बनती है।

(2) शाकंभरी और दुर्गा की भिन्नता – (क) दुर्गा सप्तशती के चरितों

के विनियोगों में प्रथम, मध्यम और उत्तर चरित की शक्तियाँ क्रम से नन्दा, शाकंभरी एवं मीमा है और बीज-रूप में रक्तदन्तिका, दुर्गा और भ्रामरी हैं। (ख) नवार्ण मंत्र के विनियोग में भी यही स्थिति है - [मं. महो. 18-108, पृ. 164]। (ग) नवार्ण यंत्र के आवरण देवताओं में शाकंभरी और दुर्गा का स्थान भिन्न बताया है - (मं. महो. 18-151)। (घ) एकादश न्यास के चतुर्थ न्यास में शाकंभरी को पुष्प-पल्लव से युक्त बताया है और दुर्गा को धनुषबाणयुक्ता बताया है। इस तरह इन दोनों के स्वरूप भी भिन्न हैं - [मं. महो. 18-121]। इस तरह यह पक्ष इन देवियों की संख्या छः की मानता है। छः की संख्यावाला पक्ष पीछे के कालका प्रतीत होता है। फिर भी इस में छः की संख्या से ही आवरण देवताओं की व्यवस्था बनी है, अतः चंडीपूजन में छः की संख्यावाले पक्षका स्वीकार करना युक्ति संगत है। अस्तु।]

***

जातवेदसे मंत्र का सायण सम्मत अर्थ

विनियोगः — अस्य श्रीजातवेदसे. इति एकर्चषष्ठ-सूक्तस्य मरीचिपुत्रकश्यपऋषिः, त्रिष्टुभ् छन्दः, जातवेदगुणविशिष्टोऽग्निः शुद्धाग्निर्वा देवता, अक्षय्यातिधन-प्राप्तये न्यासे, (जपे) होमे च विनियोगः।

अर्थ — **जातवेदसे** = सभी उत्पन्न (पदार्थों के) ज्ञाता, (अथवा धनवान, या प्रज्ञावान्, या प्राणियों द्वारा ज्ञात) अग्नि के लिए, (हम) **सोमम्** = सोमरस, **सुनवाम** = छानते हैं। सः = वह (अग्नि), **अरातीयतः** = शत्रु के, **वेदः** = धन को, **नि दहाति** = भस्मीभूत करे। **सिन्धुं नौ इव** = जिस तरह (दुष्ट प्राणियों से व्याकुल नदी) नौका द्वारा पार कराई जाती है, ठीक उसी तरह, **सः** = वह (अग्नि), **नः** = हमको, **विश्वा** = सर्व, **दुर्गाणि** = असह्य दुःखों से, **अति पर्षत्** = पार उतारे (अर्थात् पार उतार कर दुखःरहित सुख दे) और **अग्निः** = अग्निदेव, (हमें) **दुरिता** = दुःख के हेतुभूत पापों से, **अति** = पार करे।

पदपाठः — जातऽवेदसे। सुनवाम। सोमम्। अरातिऽयतः। नि। दहाति। वेदः॥ सः। नः। पर्षत्। अति। दुःऽगानि। विश्वा। नावाऽ इव। सिन्धुम्। दुःऽइता। अति। अग्निः। [यह (दुर्गा सावित्री) मंत्र पापनाशक है - विष्णु. 56-9; पृ. 654]

प्रथम प्रकरण

उपासक के विचार, आचार और योग्यता

[वसु. – उपासक को चाहिए कि वह सर्वप्रथम आत्मसाक्षात्कारी सद्‌गुरु का शिष्य बन कर उनके श्रीचरणों में पूर्ण रूप से समर्पित बन कर, अपने विचार और वर्तन आदि की स्थिति स्पष्ट करे। शिष्य की योग्यता के अनुसार उसके लिए कौन सी कक्षा के देवता की उपासना हितकर है, इसके बारे में निश्चय करके, वह सद्‌गुरु अपने मार्गदर्शन में ही शिष्य से उपासना कराएँगे।]

(क) गुरु – शिष्य को चाहिए कि सद्‌गुरु से सूचित उपासना में इतनी श्रद्धा रखे कि बृहस्पति भी उसे हिला सके नहीं। फिर भी अपनी गुरुपरंपरा से भिन्न दर्शनों की निन्दा भी न करे। अपने ही गुरु में दृढ़ विश्वास रखे। दूसरा गुरु न बनाए। यदि उपासना के बल से या किसी अन्य कारणवशात् शिष्य की कक्षा उच्च हो जाए और वह गुरु अपने शिष्य की शंकाओं का समाधान करने में असमर्थ लगे, तब प्रथम गुरु की विवेकपूर्वक अनुमति लेकर उच्चतर कक्षावाले अन्य गुरु की शरण में वह शिष्य जा सकता है। [ऐसी स्थिति में भी प्रथम गुरु के प्रति पूर्ववत् आस्था, श्रद्धा, प्रेम, भक्ति और सेवा बनाए रखे।] गुरु खास ध्यान रखे कि, जो शिष्य परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाए, उसे ही उपासना का रहस्य बताए - [परशु. 1-14 से 16, 20; रामे. परशु. पृ. 34 से 37]।

जब गुरु और परमगुरु एक ही जगह में एक साथ निवास कर रहे हो, तब शिष्य परम गुरु को दंडवत् प्रणाम करके गुरु को मानस नमस्कार करे - [परशु. 10-71; रामे. पृ. 284]। उपासना शरू करने से पहले उपासना से संबंधित आचार विचार और योग्यता को पूरी तरह से समझ लेना जरूरी है जैसे कि-

(ख) विश्व – शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, विद्या, माया, अविद्या, कला, राग, काल, नियति, जीव, प्रकृति (चित्त), मन [इस में रजोगुण प्रधान है और सत्त्व एवं तमोगुण गौण हैं], बुद्धि [इस में सत्त्वगुण प्रधान है एवं रजस्-तमस् गौण हैं], अहंकार [इस में तमोगुण प्रधान है और अन्य दो गुण गौण रूप से हैं], श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना [जिह्वा], नासिका, वाक् [जिह्वा], हाथ,

पैर, गुदा, मूत्रेन्द्रिय, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी । इन छत्तीस तत्त्वों का संघात (समुदाय) यह विश्व है – [परशु. 1-4; रामे.] ।

जीव और परशिव – [जैसे एक ही स्त्री माता भी है और पत्नी भी है । जब उस में केवल मातृभाव ही प्रधान हो, तब वह माता है और जब उसमें पत्नीभाव ही प्रधान हो, तब वह पत्नी है । उसी तरह] शिव [चैतन्य] जब तक शरीर से [आणव, मायिक और कार्मिक मलों से – रामे. परशु.; पृ. 25] कंचुकित (आवृत) हो, तब तक वह जीव है और वही शिव जब निष्कंचुक [उपर्युक्त तीन मलों से रहित] हो जाता है तब वह परशिव है – [परशु. 1-5] । [**वसु.** – सरल भाषा में कहा जाए तो जब तक 'अहम्' पद का अर्थ शरीरपरक है, अर्थात् भेददृष्टि है, तब तक चैतन्य को जीव कहते हैं और जब 'अहम्' पद का अर्थ केवल आत्मापरक हो जाता है अर्थात् सर्वत्र अभेददर्शन ही बना रहता है ('**सर्वं खलु इदं ब्रह्म**') और यह अनुभव चौबीसों घंटे टिके, तब वही चैतन्य परशिव है ।]

'मैं परशिव हूँ [अहं ब्रह्मास्मि]' इस अनुभव की सार्वकालिक स्थिति मोक्ष का साधन बनती है – [परशु. 1-6, रामे.; पृ. 26] । परशिव तत्त्वातीत है । वही उपनिषदों का ब्रह्म है । इसकी विभावना सकल शास्त्र के अभ्यास का फल है । [इस रहस्य को बुद्धि में दृढ करे]–[रामे. परशु. 10-73; पृ. 285] ।

(ग) आत्मा श्रेष्ठ और जगत् गौण है – जगत के सभी पदार्थों में आत्मबुद्धि का अनुभव हो जाए और वह अनुभव [अद्वैत स्थिति] दृढ़ बन जाए [चौबीसों घंटे टिके] तब निग्रह और अनुग्रह का सामर्थ्य [आज्ञासिद्धि] प्राप्त होता है – [परशु. 1-13, रामे; पृ. 30)] ।

[**वसु.** – समग्र जगत के दो विभाग हैं - एक में केवल आत्मा है और दूसरे विभाग में स्वबुद्धि आदि एवं शरीर से लेकर जगत के सभी पदार्थ हैं। प्रायः मनुष्य जागतिक पदार्थों को श्रेष्ठ समझ करके उन पदार्थों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बना करता है, परंतु उसकी बुद्धि में जब आत्मा की श्रेष्ठता और जागतिक पदार्थों की गौणता दृढ़ बन जाती है, तब धीरे धीरे वह जागतिक

पदार्थों में आत्मदर्शन [ब्रह्मदर्शन] करने लगता है और आगे चल कर जब '**सर्वं खलु इदं ब्रह्म**' का अनुभव हो जाता है, तब आज्ञासिद्धि मिलती है ।

हमारे विचार और वर्तन आत्मा को श्रेष्ठ मानकर चलते हैं या नहि, इसकी परीक्षा यह है कि, यदि दिन-रात की सभी प्रवृत्तियाँ आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए ही की जाती हो और जागतिक पदार्थों के प्रति अल्पतम भी मोह-ममता न रहती हो तो ऐसी स्थिति आत्मप्राधान्य का समर्थन करती है । इस अवस्था में उसके सभी कर्म निर्मोह, निष्काम, ईश्वरप्रीत्यर्थ और समत्वभाव से होते रहते हैं । यदि यज्ञ, दान एवं तपस्या आदि शुभ कर्म भी किसी कामनापूर्ति के लिए किए जाते हो तो, ऐसी स्थिति जागतिक पदार्थों की श्रेष्ठता और आत्मा की गौणता का समर्थन करती है ।

शुरू शरू में आत्मा की प्रधानता और जागतिक पदार्थों की गौणता अल्प समय के लिए बनती है, फल स्वरूप '**शिवोऽहम्**' की अनुभूति भी अल्प समय तक ही ठहरती है । ऐसी अनुभूति को बढाने का सन्निष्ठ प्रयत्न किया जाए तो स्वप्नावस्था में भी 'शिवोऽहम्' की अनुभूति होती रहेगी । यही सच्ची साधना है । जप, अर्चन आदि उस स्थिति की प्राप्ति के साधन हैं ।]

जब शिवोऽहम् की स्थिति में टिकना कठिन प्रतीत हो, तब अपने इष्टमंत्र का मानस-अर्थानुसन्धान करे - [परशु. 1-17, 18; रामे. पृ. 32-33] । [मानस जप करने में कोई नियम या निषेध नहीं है ।]

(घ) जप — वर्ण समुदायात्मक शब्द मंत्र है, [शब्द नित्य है अतः] मंत्र नित्य है । मंत्रों में अचिन्त्य शक्ति है अर्थात् मंत्रो में दुर्निवार माया का भी निवारण करने की शक्ति है, [इससे भी अधिक शक्ति है]; मंत्र अपने अधिष्ठाता देवता के समान हैं।

यदि (1) (क) अपनी गुरुपरंपरा का सुचारु रूप से अनुसरण किया जाए और (ख) '**मुझे अवश्य ही फलप्राप्ति होगी**' ऐसा दृढ़-अचल विश्वास इष्ट-मंत्र में हो, तो सर्वसिद्धि मिलती है अर्थात् उपासक का सर्व इच्छित पूर्ण होता है । (इसका अर्थ यह हुआ कि, एक ही मंत्र का उपयोग सभी प्रकार की कामना-पूर्ति करने में समर्थ है, अन्य मंत्र की आवश्यकता नहीं रहती ।)

(2) (अ) मंत्र की देवता और मंत्र में, (आ) आत्मा और देवता में,

(इ) मन और पंचप्राणों में, एवं (ई) गुरु, मंत्र और देवता में ऐक्य (एकता) दृढ़ता पूर्वक मानने से अन्तरात्मा का ज्ञान होता है। रामेश्वरजी स्पष्टता करते हैं कि उमानन्दनाथ ने गुरु आदि को दो साधनों के रूप में माना है, जैसे कि गुरु, मंत्र, देवता एवं आत्मा की ऐक्य-भावना एक साधन है, और मन एवं प्राण की ऐक्य-भावना दूसरा साधन है। उमानन्दनाथ का यह मत चिन्त्य है। (इस तरह परशुरामजी के मत में जप भुक्ति-मुक्ति दोनों देता है।) - (परशु. 1-7 से 11)।

(ङ) आत्मज्ञान प्राप्त करने के उपाय – इससे पहले बताए गए उपायों के अतिरिक्त ये उपाय भी हैं, जैसे कि (1) (क) सर्व कामनाएँ, (ख) क्रोध, (ग) लोभ, (घ) मोह, (कर्तव्य और अकर्तव्य का विवेकभान न होना)। (ङ) मद (गर्व), (च) मात्सर्य [द्वेषभाव से गुणवान के उपर दोषारोपण करना], (छ) हिंसा, (ज) चोरी और (झ) समाज में अस्वीकृत बातें [परस्त्री आकर्षण, माता-पिता का त्याग आदि] इन नौ बातों का सर्वथा त्याग किया जाए। (2) सभी प्राणी एवं पदार्थों में अपरिग्रहवृत्ति [ममत्वरहित वृत्ति] रखें । (3) शास्त्रविहित कर्म भी निष्काम भाव से करें, अर्थात् फल की आशा न रखें [मा फलेषु कदाचन ।] । **निष्काम भक्तों को ही श्रीविद्या की सिद्धि मिलती है, सकाम भक्तों को नहीं** - (निष्कामानामेव श्रीविद्या-सिद्धिः, न कदापि सकामानामिति-सौभाग्यलक्ष्मी. श्री. वि. पृ. 22)। (4) अपने से अधिक ज्ञानी का आदर करे। गुरु के स्त्रीपुत्रादि का भी आदर गुरु की तरह पूज्यभाव से करे। (5) स्नान, संध्या, देवपूजा, तर्पण, वैश्वदेव आदि नित्यकर्म कभी छोडें नहि। विपरीत परिस्थिति में यदि न हो सके, तो प्रायश्चित्त करके लुप्त-कर्म पुनः करे। (6) पूजा में किसी वस्तु न मिलने पर उसकी प्रतिनिधिभूत वस्तु का उपयोग करे। (7) सभी प्राणी एवं पदार्थों सहित अपने को परशिवरूप में अनुभव करे। (8) ऐसा विरागी बने कि, किसी प्रकार का भय न रहे [सर्वथा सर्वदा निर्भय रहे ।], (9) इस आध्यात्मिक यज्ञ में सभी जागतिक वस्तुएँ हवनीय द्रव्य हैं। इन्द्रियाँ स्त्रुक् हैं । शक्तियाँ ज्वालाएँ हैं । उपासक स्वयं हवनकर्ता यजमान है और परशिव अग्नि है, ऐसी दृढ भावना करे। [यह प्रक्रिया अन्तर्याग में होती है ।] जिस तरह हवनीय-द्रव्य अग्नि में जलकर अग्निरूप हो जाते हैं, उस तरह सभी ज्ञेय-तत्त्व जब परशिव रूप बन जाते हैं, तब उपासक

निर्विकल्प दशा में पहुँच कर, आत्मलाभ कर लेता है, जिसको आखरी मंज़िल माना गया है। इससे आगे कुछ भी प्राप्तव्य नहीं हैं - [परशु. 1-18 से 28; रामे. 10-60]। (10) अपने आश्रितों की कामनाएँ पूर्ण करे। (11) प्राणियों से वैर न करें, फिर भी दुष्टों का निग्रह अवश्य करें - [परशु. 10-57 से 59]। (12) सुवासिनी एवं कुमारियों के समूह, मदिरापूर्ण कुंभ, मंत्रसिद्ध योगियों के चिह्न, खेल में व्यस्त बालिकाओं के समूह, आम्रवृक्ष, अशोकवृक्ष, एकतरु [असाधारण वृक्ष, यो वा को वा अद्वितीयः नेत्रसंचार-पर्यन्तं तरुः इति रामे.; पृ. 280], श्मशान, मदोन्मत्त वेश्या, यौवनपूर्णा तरुणी, रक्त वस्त्र पहनी हुई स्त्री और मदमत्त हाथी को मानस नमस्कार करे। (13) श्लेष्मातक [लिसोडे का वृक्ष], करंज [औषधि वृक्ष), आम्र, निम्ब [नीम], कदम्ब, अश्वत्थ [पीपल], बिल्व [बेल का वृक्ष], वट, उदुम्बर [गूलर] और तिन्तिणी [इमली] इन दश कुल-वृक्षों को काटे नहीं - [परशु. 10-66, 65, रामे., परशु. हिन्दी भाष्य पृ. 262]। (14) किसी भी स्त्री के साथ प्रतिकूल आचरण न करे। (15) घृणा, संशय, भय, लज्जा, उपासना की सामग्री में जुगुप्सा, कुल, जाति, और स्वभाव [शील] ये आठ अविद्याजन्य हैं, अतः इन का क्रमशः त्याग करें - [परशु. 10-69, 70, रामे. पृ. 283]। [घृणा, शंका, भयं, लज्जा, जुगुप्सा चेति पंचमी। कुलं, शीलं, तथा शक्तिरष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः- मेरौ. पुरश्च. पृ. 43]। (16) पूर्णिमा, संक्रान्ति और कृष्ण पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी एवं अमावास्या इन पाँच पर्वों में श्री का विशेष अर्चन करें - [परशु. 10-67, रामे. पृ. 280]। (घृणा = दया, जुगुप्सा - अमरकोश)।

(च) अर्चन में मद्य आदि के विकल्प – (1) **मद्य** के विकल्प कांस्य -पात्रगत नारिकेल जल, या ताम्रपात्रगत दूध, अथवा गुड मिश्रित तक्र (छाँछ), अथवा गुड मिश्र जल या चंदन मिश्र जल हैं। (2) **मांस** का विकल्प मालपूडा है। (3) **मत्स्य** के विकल्प कदली (केले), या चने के आटे से बनी मत्स्याकृतिवाली बडियाँ (वटकं) हैं। (4) **मुद्रा** के विकल्प-योगिनी तंत्र के अनुसार चने, उडद, गेहूँ या चावल के आटे से मुद्रा के आकृतिवाले पदार्थ, जो घी या तेल में पकाए गए हो, नमक आदि के संस्कार किये गए हो, जिनका आकार सुन्दर हो और जो स्वादिष्ट हो। (5) (प्रत्यक्ष) **मैथुन** - केवल स्वपत्नी के साथ ही स्वीकृत है। दूती से मैथुन सदाशिवस्तरीय, संसार से पर, अद्वैत

अवस्था में रममाण सिद्ध योगी के लिए ही है । [सामान्य साधक पापभागी बनकर पतित होता है ।] अथवा लाल करेण के पुष्प पर वीर्य-बुद्धि से चन्दन लगाकर और काले अपराजिता पुष्प में रेतोबुद्धि से काश्मीर लगाकर देवी को अर्पण करें । [मत्स्य के अभाव में मांस का स्पर्श कर के त्र्यम्बक मंत्र का जप करें] - [परशु. और रामे. 10-62, 63 और परशु. हिन्दी भाष्य पृ. 261] ।

(छ) उपासक की अवस्थाएँ – परशुराम कल्पसूत्र में निर्दिष्ट सात उल्लास की विचारणा, उपासना के क्रमिक विकास को स्पष्ट करती है । जैसे कि, (1) **आरंभोल्लास** – इस अवस्था में उपासना करने की इच्छा जगती है। [**वसु.** – इष्टकृपा और पुण्यकर्मों के प्रभाव से ही ऐसी इच्छा जगती है ।] (2) **तुरुणोल्लास** – इस में योग्य गुरु की प्राप्ति के बाद उनसे दीक्षा मिलती है । इसके बाद तंत्रशास्त्र पढने की इच्छा जगती है । (3) **यौवनोल्लास** – तंत्रशास्त्र का ज्ञान होता है । (4) **प्रौढोल्लास** – [इष्टकृपा से] तंत्रशास्त्र का रहस्य मिल जाने के बाद तंत्र-प्रतिपादित ध्यान करने की इच्छा जगती है । (5) **तदन्तोल्लास** [प्रौढान्तोल्लास] – ध्यान का अभ्यास करते करते ध्यानावस्था मिलती है। (6) **उन्मनोल्लास** – ध्यान की सहायता से अल्पकालिक मनोलय की शक्ति मिलती है । (7) **अनवस्थोल्लास** – पूर्णारूढ की अवस्था प्राप्त होती है अर्थात् मन की निश्चलता मिलती है ।

परमानंदतंत्र में प्रौढोल्लास आदि पीछली चार अवस्थाओं की स्पष्टता इस प्रकार है - (4) प्रौढोल्लास में [अल्पकालीन] बिना प्रयास मनोलय होता है। (5) प्रौढान्त में मन की चंचलता और मनोलय दोनों चलते रहते हैं। (6) उन्मन में चांचल्य प्रयत्न-साध्य है। [अर्थात् सहज मनोलय अधिक समय तक रहता है, इसमें चांचल्य के लिए प्रयत्न करना पडता है । (7) और अनवस्थोल्लास में मन की सदा निश्चलता है – रामे. परशु. 10-68, पृ. 282 [अर्थात् तैलधारावत् सतत मनोलय है। यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता - भ. गीता 6 =19] । [**वसु.** – यहाँ अल्पमनोलय से पूर्णमनोलय की विकास यात्रा बतायी है ।]

वीर और अवीर – प्रथम से चौथे उल्लास तक के उपासक को अवीर कहते हैं। अवीर साधक के लिए समयाचारों का पालन अनिवार्य है । यदि वह

स्वेच्छाचार करे तो पतन निश्चित है। पाँच से सातवें उल्लास में स्थित वीर उपासक [परिपक्व होने के कारण] अपनी इच्छा के अनुसार चल सकता है - [परशु. रामे. 10-68; पृ. 283]। [अर्थात् मनोलय की स्थिति में समयाचार का पालन कठिन है। जितने समय तक मनोलय न हो, उतने समय में समयाचार का पालन किया जाए ।]

रामेश्वरजी ने कर्मत्याग के संदर्भ में उपासक की छः कक्षाएँ बताई हैं - (1) **प्रथम भूमिका** में कौन से कर्म करणीय हैं और कौन से अकरणीय (विकर्म) हैं, इनकी छानबीन होती है। (2) **द्वितीय भूमिका** में अकरणीय कर्मों के त्याग की इच्छा जगती है। (3) **तीसरी भूमिका में** इन कर्मत्यागार्थ आवश्यक साधनों को जुटाया जाता है। (4) **चौथी में** उन साधनों के साथ साथ प्रयत्न भी किया जाता है। (5) **पाँचवीं में** उन अकरणीय कर्मों का मन से त्याग होता है, बाह्य त्याग नहीं। (6) **छठ्ठी भूमिका में** उन कर्मों का मन से एवं बाह्य रूप से सर्वथा त्याग होता है - [रामे. परशु. 10-70; पृ. 283] ।

[वसु. — यहाँ भगवद्गीता की विचारणा को याद करना आवश्यक है - किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ॥ कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः - 4-16, 17 ॥ यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव च। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥, नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ॥, एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च, कर्तव्यानि, - 18-5 से 7 ॥ कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन-18-9; नियतं कुरु कर्म त्वम् -3-8; तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर - 3-19; काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः - 18-2; यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन। कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते - 3-7 ॥]

(ज) लक्ष्मीप्रीति-ऐश्वर्यवृद्धि — पू. श्री आद्य जगद्गुरुरचित प्रपंचसारतंत्र-[12-61 से 65, पृ. 167-68], शारदातिलक-[8-161 से 67, पृ. 246-47], राघवकृत शारदाव्याख्या-(शा. पृ. 246-47), और सारसंग्रह-[श्रीविद्या. श्वास. 22; पृ. 133-34] में बताए गए लक्ष्मीप्रीति एवं ऐश्वर्यवृद्धि के नियम संक्षेप में इस प्रकार हैं —

श्री के उपासक - [अपने परिवार सहित] सत्यवादी, [हितभाषी],

[मितभाषी], स्मितभाषी, मृदु-मधुरभाषी, पुण्यशाली, सुशील, लोकप्रिय [निःस्वार्थ भाव से लोगों को सहायता करने से], अमलिन, दयार्द्र एवं निर्मल चारित्र्यशील बनें। बुद्धि, आचार, [विचार], नख, दाँत, शरीर, अनुलेपन, आभरण, पुष्प और वस्त्रों को शुद्ध रखें । नग्नस्नान, असत्य भाषण, मलिनता (तन-मन की) और कुत्सित अन्न का त्याग करें । मुख को दुर्गन्धरहित करके सुगन्धयुक्त बनाएँ, सुगंध लगाएँ। मुख के उपर हलदी न लगाएँ। शरीर को गंध, पुष्प एवं अलंकार आदि से सजाएँ । श्वेत वस्त्र पहनें । वैष्णवी दीक्षा लेकर, नियमपालन करते हुए, विष्णुभक्त बनकर, भक्तिभाव से श्रीमंत्रों का जप करें, परंतु उसके साथ श्रीसूक्त-जप भी अवश्य करें। प्रतिदिन स्नान करें और तीनों संध्याकाल में बिल्व को प्रणाम करें । बिल्व, द्रोणपुष्प (द्रोण पुष्पी = गूमा; गुज. में कूबो) और कमल को मस्तक पर धारण न करें, उल्लंघन भी न करें । सहदेवी = (गुज. सदोरी) इन्द्रवल्ली, श्रीवल्ली (श्रीलता), विष्णुवल्लभा (विष्णुक्रान्ता), कन्या (ग्वार पाठा, गुज. कुँवारपाठा) और प्रवाल को मस्तक में धारण करें । देव, आचार्य अतिथि और अग्नि की पूजा करें। बिल्व तोडे नहीं, कमल सूंघे नहीं । सदा पश्चिम में मुख रखकर [हविष्यान्न का] भोजन करें ।

[**हविष्यान्न** - चावल, यव (जौ), गेहूँ, मुंग, उडद, मुनि जो जो अन्न ग्रहण करते हैं वे अन्न, ऋतु ऋतु के शाक, सूंठ, काली मीरच, हिंग, गुड, शक्कर, खाने का कपूर, सैन्धव नमक, पनस, नारियल, केले, बेर, गाय का दूध, दहीं, घी, खीर, मध, पा.गृ. पृ. 419]। पूर्णिमा के दिन पायस का आहार करें । अभ्यंग करके (बिना नहाए) भोजन न करें । नागतिथि = अष्टमी - [मुहूर्त. विवाह प्र.; श्लो. 20 में नाग=आठ की संख्या है ।] के रोज लवण का और द्वादशी के रोज आँवले का त्याग करें। तिल से निर्मित चीजें अकेली न खाएँ और केवल लवण न खाएँ । कमल बीज भी केवल न खाएँ।

शरीर को पवित्र बना करके ही निर्मल एवं रुचिर शय्या में शयन करें । भूमि के उपर सोए नहीं । [भूमौ शयीत न-इति नारायणीये, राघव. शा. पृ. 247; यद्यपि उपासना-काल में भूशयन आवकार्य है, फिर भी लक्ष्मी उपासना में भूशयन को क्यों त्याज्य कहा, इसका कारण विद्वद्गण खोजें ।] स्वपत्नी से ही पूर्ण संतुष्ट रहें । उसको सदा प्रसन्न रखें । निम्न कक्षा की स्त्री, राजरानी और रजस्वला का स्पर्श न करें । [पत्नी-भिन्न सर्व स्त्रियों को स्पर्श न करने से उपासना में अधिक अनुकूलता रहेगी ।] [**वसु.** — पाठकों को सूचना है कि, इस को पढने से पहले भूमिका को ध्यान से पढ लें ।]

(झ) नारायण [नारायणी] के स्थूल, सूक्ष्म, पर आदि विविध रूपों की उपासना का अधिकार –

अहंता-ममता, पुण्यपाप, ईश का अनुग्रह और विवेक के [वेदान्तसार के अनुसार नित्य एवं अनित्य वस्तु को स्पष्ट रूप से समझ कर नित्य का स्वीकार करने को विवेक कहते हैं ।] न्यून अधिक प्रमाण के कारण जीवों की योग्यता के अनेक भेद बनते हैं । इन अनेक भेदों को मुख्यतः तीन विभागों में विभक्त किया है, जैसे कि (1) सिद्ध-योगतत्त्व-दिव्यविवेकी उपासक नारायण [नारायणी] के पर-रूप की उपासना के अधिकारी हैं । (2) मिश्रयोग युक्त मध्यम विवेकी जीव वासुदेव आदि चतुर्व्यूह देवदेवियों की उपासना के अधिकारी हैं और (3) मन्दविवेकी एवं अविवेकी जीव पद्मनाभादि विभव वगैरह देव-देवियों की उपासना के अधिकारी हैं - [11-44 से 50; पृ. 116-17] । [संसिद्ध-योगतत्त्वानामधिकारः परात्मनि ॥ व्यामिश्र-योगयुक्तानां मध्यानां व्यूहभावने । वैभवीयादिरूपेषु विवेकविधुरात्मनाम् - [11-48, 49, पृ. 116] ॥

[**वसु.** – विवेकविधुर के दो अर्थ हैं - मन्द (=अल्प) विवेकी, और सर्वथा विवेकशून्य । लक्ष्मीतंत्र में विवेक के तीन भेद बताए हैं - दिव्य, मध्यम और मन्द - (11-46) । इनमें दिव्यविवेकी का संबंध संसिद्ध योगतत्त्व जीवों के साथ और मध्यम विवेकी का संबंध मिश्रयोगतत्त्व जीवों के साथ सरलता से जुट सकता है, परंतु मंद विवेकी जीवों का सबंध शून्य विवेकी से नहीं जूट सकता-) क्योंकि मन्दविवेकी (= विवेकविधुरात्मनाम्) में थोडा सा भी विवेक तो रहता है, जबकि विवेकरहित (विवेकशून्य) जीवों में विवेक का सर्वथा अभाव रहता है । अर्थात् मन्दविवेकी और शून्यविवेकी भिन्न भिन्न हैं और दोनों की कक्षा भी अलग अलग है । इनमें मन्दविवेकी की कक्षा शून्यविवेकी से ऊँची है, अर्थात् शून्यविवेकी की कक्षा निम्नतम है । इसलिए (क) मन्दविवेकी-(विवेकविधुर) उपासक पद्मनाभ आदि विभव देव-देवियों की उपासना कर सकता है । (और (ख) विवेकशून्य उपासक जगतहितेच्छु सिद्ध-नर-पितृ आदि विभवान्तर देवताओं की उपासना कर सकता है ।)

'देवो भूत्वा देवं यजेत्' का सिद्धान्त भी उपासक और उपास्य की प्रायः समान कक्षा का निर्देश करता है, अर्थात् उपासक अपने उपास्य देवता की कक्षा

से अत्यंत नीची कक्षा का नहीं होना चाहिए । यदि उपासक शून्य विवेकी है तो वह सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए उपासना भले करे, परंतु उसका खास प्रयत्न अपनी योग्यता को बढाने के लिए होना चाहिए । जब उपासना, प्रार्थना एवं सद्गुणों के बल से उसकी योग्यता बढ़े, तब वह मन्दविवेकी साधक पद्मनाभ आदि की उपासना शुरू करें ।

उपासक की योग्यता बढ़ाने के उपाय – उपासना की योग्यता बढ़ाने की अनिवार्य शर्त है कि, वह अपने विचार, वाणी और वर्तन में थोडी सी भी भिन्नता न रखें । विचार में कुछ, वाणी में दूसरा और वर्तन में तीसरा कुछ, ऐसा न होने दे । इन तीनों की एकवाक्यता होनी चाहिए । जो भाव विचार में हैं, वही वाणी और वर्तन में होने चाहिए ।

इन तीनों को उच्च दिव्य कक्षा में ले जाने के उपाय (1) भगवद्गीता के स्थितप्रज्ञ (2-55 से 72); भक्त (12-13 से 19); ज्ञानी (13-7 से 11), त्रिगुणातीत (14-22 से 27) और सात्त्विकता (अध्याय 17 और 18) के सद्गुणों और वेदान्तसार में (पृ- 2-4) वर्णित चार साधनों के ((क) नित्य एवं अनित्य वस्तुओं को पहचानने का विवेक, (ख) इस लोक एवं परलोक विषयक फलों के प्रति दृढ़ वैराग्य, (ग) शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान एवं श्रद्धा रूप षट्संपत्ति और (घ) मोक्ष की इच्छा रूप चार साधन) अनुसार अपनी जीवनचर्या बनाते हुए, उन सद्गुणों को क्रमशः आत्मसात् करें । (2) विविध प्रकार की दुन्यवी जिज्ञासाओं को कम करते करते एक ब्रह्मजिज्ञासा को ही अपनी दिनचर्या में रखे। (3) निष्काम कर्म करते करते अपनी चित्तशुद्धि करता रहे । (4) अपने परिवार का रक्षण, पोषण करते हुए, किसी भी जीव को कष्ट न पहुँचाएँ। धीरे धीरे पूर्ण अहिंसा में स्थित हो जाने का सन्निष्ठ प्रयत्न करता रहे । (5) गीता के सत्रहवें अध्याय में वर्णित त्रिविध श्रद्धा का अभ्यास करते हुए, अपना जीवन सात्त्विकी श्रद्धामय बनाता रहे (6) सोलहवें अध्याय में वर्णित दैवी सद्गुणों को (16-1 से 3) एक एक करके दृढ़ता से आत्मसात् करता रहे और आसुरी दुर्गुणों को (16-4 से 22) एक एक करके निकालता रहे। (7) जब तक सर्वोच्च योग्यता की प्राप्ति न हो, तब तक वेदान्त सम्मत श्रवण, मनन, निदिध्यासन और समाधि का सतत अभ्यास करता रहे । (क) श्रवण = ब्रह्मप्रतिपादक वाक्यों को सुनते हुए, उन वाक्यों के तात्पर्य का

निर्णय करना। (अर्थात् सांसारिक वाक्यों को न सुने।) (ख) मनन = सुने हुए उन वाक्यों का निरन्तर चिन्तन करता रहे। (अर्थात् सांसारिक भोग विलासों का चिन्तन न करे।) (ग) निदिध्यासन - आत्मा से भिन्न तत्त्वों (देह, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, इन्द्रियों के विषय और अन्य सांसारिक पदार्थों) का ज्ञान विजातीय है, जबकि आत्मा (ब्रह्म) का ज्ञान सजातीय है। इस सजातीय ज्ञान के प्रवाह को निदिध्यासन कहते हैं। (विजातीयदेहादिप्रत्ययरहित-अद्वितीयवस्तुसजातीय-प्रत्ययप्रवाहो निदिध्यासनम् - वेदान्तसार, पृ. 42) (घ) समाधि के दो भेद हैं - सविकल्पक और निर्विकल्पक। सविकल्पक समाधि में ब्रह्मतत्त्व-ज्ञान के साथ साथ सांसारिक पदार्थ का ज्ञान भी रहता है, अर्थात् दो ज्ञान रहते हैं, (जैसे - किसी स्त्री में स्त्रीत्व- ज्ञान के साथ साथ ब्रह्म का ज्ञान भी रहता है) जबकि निर्विकल्पक समाधि में (स्त्रीत्व का ज्ञान बिलकुल नहीं रहता, उस स्त्री में केवल ब्रह्म का ही दर्शन होता है। अर्थात्) एक ही ज्ञान रहता है। इस समाधि की प्राप्ति के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान का निरन्तर सन्निष्ठ अभ्यास करते रहना आवश्यक है - (वेदान्तसार - पृ. 38-42)।

इन उपायों के आचरण से जब उपासक मिश्रयोगयुक्त मध्यम विवेकी बन जाए, तब वह केशव आदि व्यूहान्तर देव-देवियों की उपासना करते करते अपनी योग्यता को बढाते हुए अनिरुद्ध (व्यूहदेवता) की उपासना शुरू करें। इसके बाद अपनी योग्यता को बढाते हुए वह क्रम से प्रद्युम्न और तत्पश्चात् संकर्षण की उपासना शुरू करें। जब उसकी जीवनचर्या में स्थितप्रज्ञ, ज्ञानी, भक्त और सात्त्विकता के सभी लक्षण साहजिक हो जाए, तब वह वासुदेव की उपासना शुरू करें।

इष्टमंत्र के बल से, विश्वासपूर्ण सच्ची प्रार्थना से और नारायण-नारायणी की कृपा से वह उपासक क्रम से षडध्वों को पार करता हुआ, त्रिगुणातीत (शुद्ध अध्वा) की कक्षा में पहुँच कर, निरन्तर निर्विकल्पक समाधि में रहता हुआ, नारायण के पर-रूप की उपासना का अधिकारी बनते ही उसके उपर नारायण की दृष्टि पडेगी, जिसे सालोक्य मुक्ति कहते हैं। इसके बाद सामीप्य और सारूप्य मुक्तिलाभ करता हुआ, वह उपासक अन्त में सायुज्यमुक्ति को प्राप्त होता है॥ अस्तु।]

द्वितीय प्रकरण

श्रीसूक्त की ऋचासंख्या

(1) पुरुषसूक्त और श्रीसूक्त की उत्पत्ति – लक्ष्मीतंत्र के अनुसार परम व्योम में स्थित नारायण और नारायणी के चित्त में लोगों के सुख, कल्याण एवं उद्धार के लिए संकल्प उत्पन्न हुआ कि, इन लोगों के लिए सुखप्राप्ति के साथ हमारी [नारायण-नारायणी की] प्राप्ति का भी कोई उपाय खोजना चाहिए। तब उन दोनों में से शब्दब्रह्म-रूप तेज निकला। उन दोनों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद-रूप उस शब्दब्रह्म-महोदधि का मंथन किया और दहीं में से घी की तरह दो सूक्त-रूप अमृत निकला। ये दोनों सूक्त असंदिग्ध, सुस्पष्ट, अविनाशी एवं एक दूसरे की शक्ति से सम्पन्न और सर्व ऐश्वर्य एवं सर्वगुण सम्पन्न हैं। दोनों एक दूसरे के अक्षरों से मिश्रित हैं - [लक्ष्मी. 36-70 से 73 और 50-10 से 16]।

इन में से पुंलक्षण सूक्त [पुरुषसूक्त] में नारायण की महिमा होने के कारण उसको नारायण ने और स्त्रीलक्षण सूक्त [श्रीसूक्त] में नारायणी की महिमा होने के कारण उसको नारायणी ने स्वीकार किया। (क) पुरुषसूक्त के ऋषि नारायण है और (ख) श्रीसूक्त की ऋषिका नारायणी है - [लक्ष्मी. 50-17, 18 और 36-74]। पुरुषसूक्त की ऋचाएँ 18 हैं, जबकि श्रीसूक्त की ऋचाएँ 15 हैं और उपचार भी 15 हैं। [(अ) अष्टादश ऋचः प्रोक्ताः पौरुषे सूक्तसत्तमे - [लक्ष्मी. 36-76; पृ. 412]। (आ) पंचदश्या नमस्क्रिया। तारिका- मनुतारं च प्रयुंजीयादथान्ततः - [50-29; पृ. 609]। (इ)पुरुषसूक्त की 18 ऋचाओं से 18 उपचार करने का विधान है - लक्ष्मी. 36-77 से 79; पृ. 413]।

[**वसु. – (क) 18 उपचार** – आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, उत्तरीय-सहित यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, दीप, धूप, मधुपर्क, प्रापण (नैवेद्य), कर्पूर-सहित तांबूल, पुष्पांजलि, आत्मसमर्पण और उद्वासन - [यथेष्टस्थानचिन्तनम् - [लक्ष्मी. 36-77 से 79]। इस से सिद्ध होता है कि लक्ष्मीतंत्र के काल में 18 और 15 उपचार अस्तित्व में थे। **(ख)** ढुण्ढिराज के अनुसार 'अठारह ऋचात्मक पुरुषसूक्त तैत्तिरीय शाखा में है'- [पृ. 44]।

[उपरांत अन्य शाखाओं में भी हो सकता है ।] लक्ष्मीतंत्र में पुरुषसूक्त की ऋचाएँ नहीं दी गई हैं, इसलिए लक्ष्मीतंत्रोक्त पुरुषसूक्त कौन सी शाखा से संबंधित था यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । इसका स्वतंत्र शोधपत्र हो सकता है । परंतु अभी इतना कह सकते हैं कि लक्ष्मीतंत्र और तैत्तिरीयशाखा के पुरुषसूक्त की ऋचा-संख्या (18) समान है । (वेदाहमेतमित्यादि-विद्यत इत्यन्तम् ऋग्द्वयं तैत्तिरीय पुरुषसूक्तेऽधिकं दृश्यते । एवमष्टादशर्चं तैत्तिरीयपुरुषसूक्तम् - ढण्ढि. पुरु. टि. पृ. 44] ।

(2) श्रीसूक्त खिलसूक्तों में है – (क) ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ हैं - शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और माण्डूकायन । डा. टी. आर. चिन्तामणिजी ने सिद्ध किया है कि, शांखायन शाखा और कौषीतकिशाखा परस्पर भिन्न हैं । इस तरह छः शाखाएँ बनती हैं । किसी विद्वानों के मत में 21, 25 या 27 शाखाएँ हैं । इन सभी शाखाओं में शाकल शाखा सर्वत्र प्रसिद्ध है । अन्य शाखाओं से शाकल शाखा की कैसी भिन्नता है, इसका निर्णय अभी शक्य नहीं है । फिर भी बहुत समय से अन्य शाखागत अधिक सूक्त एवं मंत्र खिल संज्ञा से प्रसिद्ध हैं, जो परंपरागत लिखित पुस्तकों में उपलब्ध हैं - [का. पृ. 908] ।

(ख) श्रीसूक्त शाकलशाखा की ऋग्वेदसंहिता में खिलसूक्तों के द्वितीय अध्याय का छठा खिल-सूक्त है - [ऋग्- पृ. 927-33] । यह सूक्त और उसके बाद के पाँच खिलसूक्त ऋग्वेद के पाँचवे मण्डल के अन्त में पठनीय हैं - [का. पृ. 930] ।

(ग) खिलगत श्रीसूक्त के स्वरचिह्न – (अ) शाकलशाखासंहिता की काश्मीरी हस्तप्रत में स्वरलेखन-पद्धति प्रचलित पद्धति से भिन्न है । प्रचलित पद्धति में प्रायः स्वरितचिह्न उपर होता है और अनुदात्तचिह्न नीचे रहता है । परंतु काश्मीरी प्रत के खिलसूक्तों में उदात्त और जात्य स्वरित दो ही बताए गए हैं । उदात्तचिह्न उपर हैं और जात्यस्वरित '८' जैसे चिह्न से उपर बताए गए हैं । इन सूक्तों में यह जात्य स्वरित-चिह्न दो बार ही आए हैं - जैसे (1)....रुहन् स्र्वः - [1-11-4] (2) वृक्य॑ 1-12-7 [ऋग. पृ. 922-23] । (आ) ग्रंथारंभ में दिये गए श्रीसूक्त के स्वरचिह्न संस्कार भास्कर अनुसारी हैं ।

(घ) श्रीसूक्तगत ऋचाओं की संख्या – भिन्न भिन्न प्रतों में भिन्न भिन्न संख्या पाई गई हैं, जैसे - 15, 16, 19, 23, 27, 28, 29, 30 ॥

[अ] 15, 16 और 19 ऋचाएँ

(1) पंद्रह ऋचाएँ – उपर्युक्त सभी परंपराओं में एक से पंद्रह ऋचात्मक भाग का निर्विवाद स्वीकार हैं। इन परंपराओं में से शान्तिमयूख, शान्तिकमलाकर, प्रयोगरत्न, आह्निकचन्द्रिका, संस्कार-कौस्तुभ, ब्रह्मकर्म-समुच्चय - (का.) के उपरांत पू. आद्य शंकराचार्यजी - [प्रपंच. 12-38, 39; पृ. 165], [सूक्तमिदं पंचदशर्चात्मकं श्रौतम् - इति पद्मपादविवरणे - प्रपंच; पृ. 165], श्रीविद्यार्णवतंत्र -[श्वास 22, पृ. 132-33], संस्कार भास्कर - [पृ. 179-80] आदि ग्रंथ पंद्रह ऋचात्मक श्रीसूक्त का ही स्वीकार करते हैं।

यह परंपरा प्राचीन है, क्योंकि-(क) सूक्तं पंचदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् - [श्रीसूक्त ऋचा 16], (ख) लक्ष्मीतंत्र में नारायणी के 53 नाम (नाममंत्र) एक से पंद्रह ऋचाओं के ही हैं, इन से आगे की ऋचाओं के नहीं हैं - [लक्ष्मी. 50-36 से 204] और पंचदश्या नमस्क्रिया - [लक्ष्मी. 50-29], (ग) सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत् में - 'अथ पंचदशऋगात्मकस्य श्रीसूक्तस्य.... [श्री. वि. पृ. 21] आदि विधान; (घ) विद्यारण्य और पृथ्वीधर भाष्य पंद्रह ऋचाओं का ही है। (ङ) शतानंद [पंचदशर्चस्य सूक्तस्य - (श्री.वि. पृ. 3], (च) श्रीकण्ठभाष्य - [सूक्ते ऋचः पंचदश; श्री. वि. पृ. 2,] (छ) मंत्र-कल्पार्णव - [इति पंचदशीऋग्विवृता, इति श्रीसूक्तभाष्यम् - श्री. वि. पृ. 19]; और (ज) विनियोग भी पंद्रहऋचाओं का ही है। ये सभी प्रमाण पंद्रह की संख्या का समर्थन करते हैं।

(2) सोलह ऋचाएँ – श्रीसूक्तविधान., पू. नथुराम शर्माजी, आथवले दादाजी और वर्तमानकाल के पुस्तकों में उपर्युक्त पंद्रह ऋचाओं के बाद **'यः शुचिः'** सोलहवीं ऋचा है। यद्यपि विद्यारण्य और सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत् में श्रीसूक्त को पंद्रह ऋचात्मक ही कहा है, फिर भी इन दोनों में 'यः शुचिः' ऋचा को अन्त में स्थान भी दिया है, जैसे कि - (क) विद्यारण्य ने न्यास एवं होम में **'यः शुचि.'** को लिया है - श्री वि. पृ. 20; (ख) सौभाग्य लक्ष्मी. में यंत्र में 'यः शुचि.' का स्वीकार किया है - [...तद्बहिः यश्शुचिरिति मातृकया च श्रियं

यंत्रांगदशकं विलिख्य- श्री.वि. पृ. 21]। इस का अर्थ यह हुआ कि ये दोनों परंपराएँ सोलह ऋचात्मक श्रीसूक्त की उपासना मानती हैं। [मैं भी इसी मत का समर्थक हूँ।] फिर भी उपासक अपनी अपनी गुरुपरंपरा में निर्दिष्ट संख्या के अनुसार श्रीसूक्त का जप, होम, आदि कर सकते हैं।

(3) उन्नीस ऋचाएँ – खिलों के संपादक श्री काशीकरजी का कहना है कि, काश्मीर में शारदालिपि में लिखे खिलग्रंथ में श्रीसूक्त उन्नीस ऋचात्मक है, जो इस तरह है – [इसमें प्रारंभ की पंदह ऋचाओं के बाद चार ऋचाएँ अधिक हैं।] यह श्रीसूक्तम् ऋग्वेद संहिता [भाग-4; खिलसूक्त अध्याय 2, सूक्त 6; पृ. 927-33] के अनुसार है –

(1) हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह ॥ 1 ॥

(2) तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥ 2 ॥

(3) अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥ 3 ॥

(4) कांस्यस्मि तां हिरण्यप्रावारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥ 4 ॥

(5) चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मनेमिं शरणं प्र पद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणोमि। ॥ 5 ॥

(6) आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥ 6 ॥

(7) उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिं वृद्धिं ददातु मे ॥ ॥ 7 ॥

(8) क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥ 8 ॥

(9) गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥ 9 ॥

(10) मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥ 10 ॥

(11) कर्दमेन प्रजा भूता मयि सं भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥ 11 ॥

(12) आपः स्रवन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥ 12 ॥

(13) पक्वां पुष्करिणीं पुष्टां पिंगलां पद्ममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह ॥ 13 ॥

(14) आर्द्रां पुष्करिणीं यष्टीं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह ॥ 14 ॥

(15) तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्यो विन्देयं पुरुषानहम् ॥ 15 ॥

(16) य आनन्दं समाविशदुपाधावन् विभावसुम् ।
श्रियः सर्वा उपासिष्व चिक्लीत वस मे गृहे ॥ 16 ॥

(17) कर्दमेन प्रजा स्रष्टा संभूतिं गमयामसि ।
अदधादुपागाद्येषां कामान् ससृज्महे ॥ 17 ॥

(18) जातवेदः पुनीहिं मा रायस्पोषं च धारय ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चत्वंहसः ॥ 18 ॥

(19) अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन् द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम
ता तरेम तवावसा तरेम ॥ 19 ॥ – [ऋग् खिल.; पृ. 927-30]

श्रीकाशीकरजी ने उद्धृत किये हुए पाठान्तर –

(1) हिरण्यवर्णाम् – स्रजाम्; स्रजम् । ममा; म आ ।

(2) तां म – लक्ष्मीमनप; लक्ष्मीमलप । गामश्वं; गामश्वान् ।

(3) अश्वपूर्वां – अश्वपूर्वां; अश्वपूर्णां । प्रमोदिनीं; प्रबोधिनीं । देवी; देवीः ।

(4) कांस्यस्मि – कांस्यस्मि तां; कांसोस्मितां । प्रावारां; प्राकारां ।

(5) चन्द्रां – पद्मनेमिं; पद्मनेमीं; पद्मनीमीं । शरणं प्र; शरणमहं । अलक्ष्मीः; ऽलक्ष्मी । वृणोमि; वृणे ।

(6) आदित्यवर्णे – तस्य; यस्य । मायान्तरा; या अन्तरा; ममान्तरा ।

(7) उपैतु – ऽस्मि राष्ट्रे; सुराष्ट्रे । कीर्तिं वृद्धिं ददातु; कीर्तिमृद्धिं ददातु; श्रीः श्रद्धां दधातु ।

(8) क्षुत्पिपासा – मला ज्येष्ठामलक्ष्मीं; मलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं, मलां ज्येष्ठामलक्ष्मीर्; मला ज्येष्ठा अलक्ष्मीर्, मलं ज्येष्ठामलक्ष्मीर्। गृहात्, पाप्मानं।

(9) गन्धद्वारां – पाठान्तर नहीं है ।

(10) मनसः – माकूतिं, माकूतं । अन्नस्य, अन्नं च, अन्यस्य ।

(11) कर्दमेन – भव, भ्रम । कुले, गृहे ।

(12) आपः – स्रवन्तु, सृजन्तु, स्रजन्तु ।

(13) पद्मां – पक्वां; आर्द्रां । पुष्टां; पुष्टिं; पुष्टीं; यष्टिं; यष्टीं । पिंगलां पद्ममालिनीं; सुवर्णां हेममालिनीं । सूर्यां; चन्द्रां । ममा; म आ । ऋग्वेदमंत्रपाठादिषु त्रिषु पुस्तकेषु त्रयोदश-चतुर्दशमंत्रयोः व्यत्यासः ।

(14) आर्द्रां – पुष्करिणीं, यः करिणीं, यष्करिणीं । यष्टीं; यष्टिं; पुष्टीं; पुष्टिं । सुवर्णां हेममालिनीम्, पिंगलां पद्ममालिनीम् । चन्द्रां, सूर्यां । ममा; म आ ।

(15) तां म – प्रभूतं, प्रभूतिं । विन्देयं; ऽश्वान् विन्देयं ।

(16) य आनन्दं – पाठान्तर नहीं है ।

(17) कर्दमेन – द्येषां; द्यस्मै (?) ।

(18) **जातवेदः** - पाठान्तर नहीं है ।

(19) **अच्छा नो** - पाठान्तर नहीं है - [ऋग् खिल - पृ. 930-31] ।

[आ] अट्ठाइस ऋचाएँ

काशीकरजी कहते हैं कि उन्नीस मंत्र केवल काश्मीरी प्रत में ही मिले हैं। अन्य पुस्तकों में मिले अट्ठाइस मंत्र इस प्रकार हैं —

एक (हिरण्यवर्णा) से लेकर, 'पुरुषानहम्' तकके पंद्रह मंत्रों के बाद के तेरह मंत्र '**यः शुचिः**' से लेकर '**आनन्द**' तक हैं, वे इस प्रकार हैं -

[इतर-पुस्तकेषु वर्तमानाः पंचदशोत्तरा मंत्रा अत्रोद्ध्रियन्ते - का. पृ. 931]। काशीकरजी ने उन्नीस मंत्रों के बाद के मंत्रों में स्वरचिह्न नहीं दिए हैं - [मया तावदधिकानि खिलानि स्वररहितमेव मुद्रापितानि, यतस्तेषां स्वरविषये मुद्रित-पुस्तकानां लिखितपुस्तकानां च एकमत्यं नास्ति - का. पृ. 909]। यह क्रम ऋग्वेद मंत्रपाठ के अनुसारी है - [का. पृ. 931] ।

[**सूचना** — ऋचाके आरंभ में दीए गए 16 से 28 क्रमांक आ विभाग की ऋचाओं का क्रम सूचित करते हैं और ऋचान्त दिये गए 20 से 32 क्रमांक सर्व ऋचाओं का क्रम सूचित करते हैं । ऐसा आगे भी समझें ।]

(1) **हिरण्यवर्णां... से- तां म. (15) मंत्रों के बाद के मंत्र इस प्रकार हैं-**

(16) यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पंचदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥ 20 ॥

(17) पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षी पद्मसंभवे ।
तन्मे भजसि पद्माक्षी येन सौख्यं लभाम्यहम् ॥ 21 ॥

(18) अश्वदायै गोदायै धनदायै महाधने ।
धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे ॥ 22 ॥

(19) पुत्रपौत्रं धनं धान्यं हस्त्यश्वादिगवे रथम् ।
प्रजानां भवसि माता आयुष्यन्तं करोतु मे ॥ 23 ॥

(20) धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः ।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमुत्सृजे ॥ 24 ॥

(21) वैनतेयः सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा ।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ॥ 25 ॥

(22) न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत् ॥ 26 ॥

(23) सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥ 27 ॥

(24) श्रीवर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधाच्छुभमानं महीयते ।
धान्यं धनं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥ 28 ॥

(25) विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम् ।
लक्ष्मीं प्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ॥ 29 ॥

(26) महालक्ष्मी च विद्महे विष्णुपत्नी च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥ 30 ॥

(27) पद्मानने पद्मिनि पद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि ।
विश्वप्रिये विश्वमनोनुकूले त्वत्पादपद्मं हृदि सं नि धत्स्व ॥ 31 ॥

(28) आनन्दः कर्दमः श्रीतश्चिक्लीत इव विश्रितः ।
ऋषयः श्रियः पुत्राश्च श्रीर्देवी देवदेवता ॥ 32 ॥

श्री काशीकरजी ने उद्धृत किये हुए पाठान्तर

(16) **यः शुचिः** – यः, स । सूक्तं, श्रियः ।

(17) **पद्मानने** – पद्मानने, पद्मासने । पद्मऊरू; पद्मऊरु; पद्मरूपे । पद्माक्षी; पद्माक्षि । तन्मे; यन्मां; त्वं मां । भजसि; भजस्व । पद्माक्षी; पद्माक्षि ।

(18) **अश्वदायै** – (1) अश्वदायै गोदायै धनदायै; (2) अश्वदायी, गोदायी, धनदायी; (3) अश्वदायी गोदायी धनदायि; (4) अश्वदायि, गोदायि, धनदायि ॥ जुषतां, लभतां । देवि; देवी; देवीं । सर्वकामाँश्च देहि मे; सर्वकामार्थ-सिद्धये ।

(19) **पुत्रपौत्रं** – पुत्रपौत्रं, पुत्रपौत्र । श्वादिगवे रथं; श्वाश्वतरैः रथैः; श्वाश्वतरीरथं; श्वाजाविगोरथं । भवसि, भवसी, भजसि, भवतु । मे, मां ।

(20) **धनमग्नि** – र्वरुणं; र्वरुणो । मुत्सृजे; मश्नुते; मुच्यते; मस्तु मे; मस्तु ते; मश्विना ।

(21) **वैनतेयः** – सोमिनो मह्यं; सोमिनः सोमं; सोमिनो मिहं । सोमिनः, सोमिनि । [**वसु.** – यहाँ '**सोमिनो मिहं**' पाठ विचारणीय है ।]

(22) **न क्रोधो** – भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत्; भक्त्या श्रीसूक्तजापिनां । जपेत्; जपेत् सदा ।

(23) **सरसिज** – शुकगन्ध, शुभगन्ध । माल्यशोभे, माल्यशुभे । भूतिकरि, भूतिकरी ।

(24) **श्रीवर्चस्व** – श्री; श्रीर् । वर्चस्वं; वर्चस्यं । विधाच्छुभमानं; विधाच्छोभमानं; विधात्पवमानं; युधात्पवमानं । धान्यं धनं, धनं धान्यं; । बहुपुत्र; पुत्र; पशुपुत्र ।

(25) **विष्णुपत्नीं** – लक्ष्मीं प्रियसखीं; लक्ष्मी प्रियसखी; विष्णोः प्रियसखीं । देवीं, भूमिं ।

(26) **महालक्ष्मी** – महालक्ष्मी, महादेव्यै । विष्णुपत्नी, विष्णुपत्न्यै ।

(27) **पद्मानने** – पद्मिनि, पद्मवि, पद्मनि । पद्मप्रिये, पद्मालये । विश्वमनो, विष्णुमनो । हृदि, मयि ।

(28) **आनन्दः** – श्रीत, श्रीद । विश्रितः, विश्रुतः, विश्रुताः । श्रियः पुत्राश्च, श्रियपुत्राश्च । देवी देवदेवता, देवीर्देवता श्रिया, श्रीर्देवीर्देवता मताः । - [ऋग्-खिल.; पृ. 931-33] ।

[इ] उन्तीस ऋचाएँ

मेक्समुल्लर प्रकाशित सभाष्य ऋग्वेदसंहिता में श्रीसूक्त की 29 ऋचाएँ इस प्रकार हैं –

1 से 28 – आ विभाग में बताई गई ऋग्वेदमंत्रपाठ की [हिरण्यवर्णां से 15 और यः शुचिः से आनन्दः कर्दमः तक की] 28 ऋचाओं के बाद 29 वीं ऋचा '**ऋणरोगादि**'. है । [ऋग्वेदमंत्रपाठ और मेक्समुल्लर संपादित ऋचाओं के क्रम में भिन्नता है, जिसकी विचारणा यहाँ अप्रस्तुत है ।]

(29) ऋणरोगादिदारिद्र्यं पापक्षुदपमृत्यवः ।
भयः शोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ॥ 33 ॥
पाठान्तर - ऋणरोगादिदारिद्र्य । भयशोक ।
— [ऋग्-खिल. - पृ. 933]

[उ] तीस ऋचाएँ

काशीकरजी के अनुसार '**पंचामृताद्यभिषेक-सूक्तम्**' और अन्य [हस्त] लिखित पुस्तकों में 30 मंत्र इस प्रकार हैं -

1 से 15 – '**हिरण्यवर्णां.**' से '**तां म.**' तक के और

16 से 22 – आ विभागगत '**यः शुचिः.**' से '**न क्रोधो न च.**' तक के, बाद

23 से 30 – '**चन्द्राभां.**' से '**सर्वमंगल.**' तक की ऋचाएँ इस तरह हैं - [पंचामृताद्यभिषेक.-पुस्तके केषुचिल्लिखितपुस्तकेषु च 23-30 मंत्राः सर्वथा विभिन्ना, अतोऽत्र लिख्यन्ते - का. पृ. 933 ।]

(23) चन्द्राभां लक्ष्मीमीशानां सूर्याभां श्रियमीश्वरीम् ।
चन्द्रसूर्याग्निवर्णाभां महालक्ष्मीमुपास्महे ॥ 34 ॥

(24) वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः ।
रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ 35 ॥

(25) पद्मप्रिये पद्मिनि पद्महस्ते पद्मानने पद्मदलायताक्षि ।
विश्वप्रिये विष्णुमनोनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि सं नि धत्स्व ॥ 36 ॥

(26) या सा पद्मासनस्था विपुलकटितटी पद्मपत्रायताक्षी
गम्भीरावर्तनाभिस्तनभरनमिता शुभ्रवस्त्रोत्तरीया ।
लक्ष्मीर्दिव्यैर्गजेन्द्रैर्मणिगणखचितैः स्नापिता हेमुकुम्भैर्
नित्यं सा पद्महस्ता मम वसतु गृहे सर्वमाङ्गल्ययुक्ता ॥ 37 ॥

(27) लक्ष्मीं क्षीरसमुद्रराजतनयां श्रीरंगधामेश्वरीं
दासीभूतसमस्तदेववनितां त्रैलोक्य-दीपाङ्कुराम् ।
श्रीमन्मन्द-कटाक्ष-लब्धविभव-ब्रह्मेन्द्रगंगाधरां
त्वां त्रैलोक्य-कुटुम्बिनीं सरसिजां वन्दे मुकुन्दप्रियाम् ॥ 38 ॥

(28) सिद्धलक्ष्मीर्मोक्षलक्ष्मीर्जयलक्ष्मीः सरस्वती ।
श्रीर्लक्ष्मीर्वरलक्ष्मीश्च प्रसन्ना मम सर्वदा ॥ 39 ॥

(29) वराङ्कुशापाशमभीतिमुद्रां करैर्वहन्तीं कमलासनस्थाम् ।
बालार्ककोटिप्रतिभां त्रिनेत्रां भजेऽहमाद्यां जगदीश्वरीं ताम् ॥ 40 ॥

(30) सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ 41 ॥

काशीकरजीने बताए पाठान्तर

(23) **चन्द्राभां.** – श्रियमैश्वरीं ॥ वर्णाभां, संकाशां, सर्वाभां । महालक्ष्मी, श्रीमहालक्ष्मी, श्रियं लक्ष्मी ।

(24-25) पाठान्तरं नास्ति । (**वसु.**- वर्षन्तु ते. (24) ऋचा खिल के 2-5-1 अनुसारी है ।)

(26) **या सा.** – भरनमिता; भरणमिता ॥

(27) **लक्ष्मीं.** – पाठान्तरं नास्ति ॥

(28) **सिद्ध.** – प्रसन्ना मम सर्वदा; प्रसन्नवरदा भव ।

(29) **वरा** – वराङ्कुशौ । मभीतिमुद्रां, मुपैतिमुद्रां । कोटिप्रतिभां, कोटिप्रतिमां । भजेऽहमाद्यां, भजे हिमाद्यां, भजेऽहमम्बां ।

(30) **सर्व** – पाठान्तरं नास्ति । – [ऋग्. खिल. - पृ. 933]

[ए] 23 और 27 ऋचाएँ

(क) **23 मंत्र** – काशीकरजी ने बताया है कि, क्रियमाण-प्रयोगसंग्रह, (अहमदाबाद), आउफ्रेखट् महोदय प्रकाशित ऋग्. संहिता एवं जुनागढ लिखित पुस्तक में 23 मंत्र हैं ।

(ख) **27 मंत्र** – ऋग्वेदीय ब्रह्मकर्म समुच्चय (मुंबई), आह्निकचन्द्रिका एवं सभाष्य ऋग्वेदसंहिता (मुंबई में मुद्रित) में 27 मंत्र हैं - (का. 930) । इन मंत्रों में एक से बाइस तक के मंत्र मेक्समुल्लर के अनुसार हैं । **23 वाँ** मंत्र भिन्न है ।

24 वा मंत्र – वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः ।
रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्मद्विषो जहि ॥

– [ऋग्. खिल 2-5-1; पृ. 927]

25 वा मंत्र – पद्मानने पद्मिनि पद्मपत्रे. मंत्र अट्ठाइस ऋचा वाले (आ) विभाग में 27 वा है । **26** और **27** मंत्र भिन्न हैं । ये तीन भिन्न मंत्र नहीं दिये गए हैं । [**वसु.** - हिरण्यवर्णां से सर्वमंगल. तक (1 से 41) की सभी ऋचाएँ और **अच्छा नो** तक (1 से 19) के स्वर ऋग्. खिल. के अनुसार हैं।]

[ऐ] श्रीविद्यारत्नाकर में 27 मंत्र

श्रीकरपात्रस्वामिरचित श्रीविद्यारत्नाकर में 27 मंत्र इस प्रकार हैं - [पृ. 445-47]

1 से 16 - '**हिरण्यवर्णां.**' से '**यः शुचिः**' तक के 16 मंत्रो के बाद के मंत्र निम्नलिखित हैं –

(17) सरसिजनिलये.। (18) धनमग्नि. । (19) वैनतेयः सोमं. । (20) न क्रोधो. । (21) पदमानने पद्मऊरु.। (22) विष्णुपत्नीं । (23) महालक्ष्मीं च विद्महे. । (24) पदमानने पद्मिनि पद्मपत्रे. । (25) आनन्दः कर्दमः । (26) ऋणरोगादि. । (27) श्रीर्वर्चस्व. ।

ऋग्वेद खिलवाले श्रीसूक्तपाठ से करपात्रस्वामि-पाठ की भिन्नताएँ इस प्रकार हैं - [करपात्र. में देखे गए पाठभेद निम्न लिखित हैं -]

(18) **धनमग्नि.** – धनमुत्सृजे की जगह करपात्र. में धनमश्विनौ है, परंतु काशीकरजी ने धनमश्विना पाठान्तर बताया है ।

(21) **पद्मानने.** – करपात्र. में-पद्मऊरु । पद्माक्षि, पद्माक्षि दोनों जगह हैं।

(22) **विष्णुपत्नीं.** – 'लक्ष्मीं प्रियसखीं' की जगह करपात्र. में 'विष्णुप्रियसखीं पाठ है । परंतु काशीकरजी ने 'विष्णोः प्रियसखी' पाठभेद बताया है ।

(23) **महालक्ष्मीं च.** – खिलपाठ में महालक्ष्मी और विष्णुपत्नी है, जबकि करपात्र. में महालक्ष्मीं और विष्णुपत्नीं ऐसी द्वितीया विभक्ति है, जो पाठभेद काशीकरजी ने नहीं बताए हैं । संभव है करपात्र. में मुद्रणदोष हो ।

(24) **पद्मानने पद्मिनि.** — में खिलपाठगत हृदि की जगह करपात्र. में मयि है ।

(25) आनन्दः कर्दमः श्रीदः चिक्लीत इति विश्रुताः । ऋषयः श्रियपुत्राश्च मयि श्रीर्देवी देवता ॥ काशीकरजी ने 'मयि श्रीर्देवी देवता' पाठान्तर नहीं बताया है। संभव है प्रकाण्ड पण्डित पू. श्री करपात्र स्वामिजी के समक्ष किसी भिन्न परंपरावाला श्रीसूक्त हो, क्योंकि क्रम में भी अधिक भिन्नता है ।

(26) **'भयः'** की जगह करपात्र में 'भय' है ।

(27) **'च्छुभमानं'** की जगह करपात्र.में 'पवमानं' है और 'धान्यं धनं' की जगह करपात्र. में 'धनं धान्यं है ।

[ओ] पू. आथवलेजी रचित श्रीसूक्त में 26 मंत्र

1 से 15 — **हिरण्यवर्णा. से तां म.** तक की 15 ऋचाओं और यः शुचिः ऋचा (16) के बाद की ऋचाएँ -

17 से 26 — खिलसूक्तगत श्रीसूक्त की तुलना में आथवलेजी संपादित श्रीसूक्त के भिन्न पाठभेद यहा दिये हैं । आथवलेजी. में देखे गए पाठभेद निम्नलिखित हैं-

(17) **पद्मानने पद्मऊरु.** — आथवलेजी में - पद्मऊरु, पद्माक्षि और पद्माक्षि है - आथ. पृ. 249

(18) **अश्वदायै** — 'जुषतां' की जगह आथ. में 'लभतां' पाठ है - आथ. पृ. 257

(19) **पद्मानने पद्मवि.** — 'पद्मिनि पद्मपत्रे' (॥ 31 ॥) की जगह आथ. में 'पद्मवि पद्मपत्रे' है और 'हृदि' की जगह यहाँ 'मयि' पाठ है। — आथ. पृ.257

(20) **पुत्रपौत्रं** — पाठान्तर नहीं है । - आथ. पृ. 262

(21) **धनमग्नि** — 'वायुर्धनं' की जगह आथ. में 'वायुः धनं' है और 'धनमुत्सृजे' की जगह आथ. में 'धनमस्तु मे' पाठ है । - आथ. पृ. 265 ।

(22) **वैनतेयः** — पाठान्तर नहीं है । - आथ. पृ. 268

(23) **न क्रोधो.** — पाठान्तर नहीं है । - आथ. पृ. 270

(24) **सरसिज.** — पाठान्तर नहीं है । - आथ. पृ. 276

(25) **विष्णुपत्नीं** – पाठान्तर नहीं है । - आथ. पृ. 281

(26) **श्रीवर्चस्व.** – 'च्छुभमानं' की जगह आथ. में 'च्छोभमानं' पाठ है - आथ. पृ. 282

[औ] श्रीसूक्त के बाद पठनीय दो सूक्त

मेकसमुल्लर प्रकाशित ऋग्वेद संहिता में श्रीसूक्त में 29वीं अंतिम ऋचा 'ऋणरोगादि.' है । इस [श्रीसूक्त] के बाद पठनीय दो सूक्त यहाँ दिये गए हैं । [मेक्समुल्लर. पुस्तके श्रीसूक्तानन्तरं पठनीयं सूक्तद्वयं (मेक्स. 9, 10) प्रदत्तं तद्‌यथा - (का.) - पृ. 933] । [**वसु.** - इन में [नवम सूक्त में] शिव का और दसवे में विष्णु का चिन्तन है । ये दोनों सूक्त आवश्यक प्रतीत होते हैं। इस लिए श्रीसूक्त के जप-होम के बाद अन्त में इन दो सूक्तों का पाठ अवश्य करें, क्योंकि याज्ञिक संप्रदाय में कर्मकाण्डीय कर्म के अन्त में बोला जाता है कि- " प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति स्मृतिः ॥"

इस लिए कर्मान्ते विष्णुस्मरण अनिवार्य है । उसके पहले शिवस्मरण भी, ('पापनाशक होने से'), करना अधिक लाभप्रद है ।

काशीकरजी संपादित दो सूक्त इस प्रकार हैं -

[9]

(1) विश्वेश्वर विरूपाक्ष विश्वरूप सदाशिव ।
शरणं भव भूतेश करुणाकर शंकर ॥

(2) हर शंभो महादेव विश्वेशामरवल्लभ ।
शिव शंकर सर्वात्मन् नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥

(3) मृत्युंजयाय रुद्राय नीलकण्ठाय शंभवे ।
अमृतेशाय शर्वाय श्रीमहादेवाय ते नमः ॥

(4) एतानि शिवनामानि यः पठेन्नियतः सकृत् ।
नास्ति मृत्युभयं तस्य पापरोगादि किंचन ॥

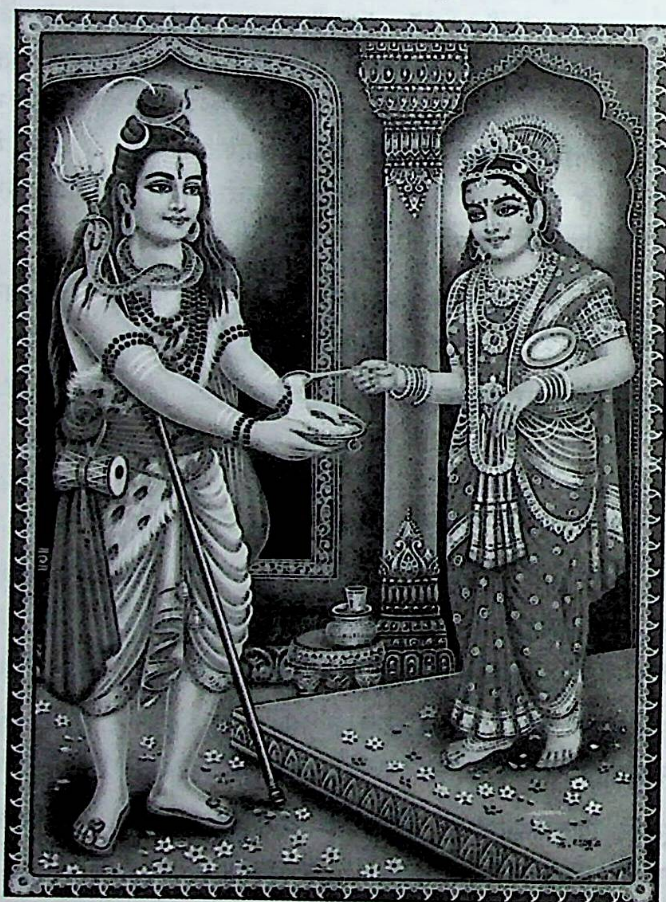
[10]

(1) यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव ।
कृष्ण विष्णो हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥

(2) कृष्णाय गोपिनाथाय चक्रिणे मुरवैरिणे ।
अमृतेशाय गोपाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

(3) एतान्यनन्तनामानि मण्डलान्ते (सदा) पठेत् ॥ - [ऋग्. पृ. 933]

* * *



श्री अन्नपूर्णामाताजी

तृतीय प्रकरण

श्रीसूक्तम् की ऋचाओं के अर्थ

[वसु. — इन ऋचाओं का क्रम एवं पाठ से मैं संमत हूं। यह पाठ एवं क्रम प्रायः विद्यारण्य. अनुसारी है।]

[1]

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्त्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्यमीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥

पाठभेद — (1) स्त्रजम् - लक्ष्मी. 50-52; का. ॥ (2) ममा - का. ॥

(1) हिरण्यवर्णाम् — हिरण्य = सुवर्ण । वर्ण = रंग । जिसके शरीर का रंग [कान्ति] सुनहरा है ऐसी - विद्या. श्रीकण्ठ.; शतानन्द. नथु. [आथ. पृ. 40]। आथवलेजी का कहना है कि, सौन्दर्य का सम्बन्ध ममत्व के साथ है। मंत्रद्रष्टा ऋषि को महालक्ष्मी में ममत्व है, अतः उन्हें यह माता आकर्षक लगती है । उनके प्रत्येक अंग एवं उपांग आकर्षक हैं । उनमें एक तरह का खिंचाव है- (आथ. पृ. 42) । लक्ष्मीतंत्र में 'हिरण्य' और 'वर्णा' दोनों का भिन्न अर्थ बताया है, जैसे कि, - (क) **हिरण्य** - हि + रण । **हि** = निहित = स्थित = सर्वभूतों में स्थित । **रण** - रण में भ्रमरी की तरह नाद करती हुई । निमेषउन्मेष के बीच के अत्यल्प समय में (हि =) स्थित होनेवाली । (ख) **वर्णा** - वर्णों की जननी । परा (शान्ता), पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के स्थान प्राप्त करके वर्णों को उत्पन्न करती है । (ग) **'ॐ हिरण्यवर्णायै नमः'** यह नवाक्षरमंत्र योगसाधक है - [लक्ष्मी. - 50-37 से 42; पृ. 611] ।

(2) हरिणीम् — (क) हरितवर्ण की - विद्या., पृथ्वी., (आथ. पृ. 47) (ख) हलदी जैसी आभावाली-पृथ्वी.; श्रीकण्ठ., शतानन्द. । अपने शरीर में हलदी लगाई होने से पीले वर्ण की-श्रीकण्ठ.। हल्दी की दुर्गामूर्ति बना करके पूजन करने का विधान गौरीव्रत-कल्प में है - श्रीकण्ठ. । (ग) हिरनी जैसी शीघ्रगति वाली - नथु. । हिरनी की तरह महालक्ष्मी योगियों के मन से दूर दूर चली जाती है। उसकी कान्ति हिरन जैसी है - [लक्ष्मी 50-43, 47]। हिरनी जैसी चंचल, सुंदर, डरी हुई - [आथ. पृ. 48]। हिरनी के रूपवाली-विद्या.,

श्रीकण्ठ., (यज्ञोऽग्निर्मृगरूपेण धावति स्म पुराध्वरे। रुद्रस्त्वाकृष्य तच्छक्ति मृगीं जग्राह वैष्णवीम् - इति वैवर्ते दक्षाध्वराध्यायोक्तेः- श्रीकण्ठ ।) । [मृगनयनी- लक्ष्मी. 50-45]। (घ) श्रीहरि की पत्नी - इति आथर्वणिकस्तुतौ - शतानंद. । (ङ) नित्ययुवती - [आथ. पृ. 48] । (च) लक्ष्मीतंत्र के अनुसार - (1) संयत योगीजन भक्ति द्वारा महालक्ष्मी को (दबाव डालकर) बाँध लेते हैं [हृ (प्रसह्य करणे, जुहोत्यादिगण) धातु से निष्पन्न ।] (2) 68 हज़ार योगीजन महालक्ष्मी का ध्यान करके प्रत्याहार को प्राप्त हो गए हैं। (वेदान्त के अनुसार प्रत्याहार का अर्थ है, इन्द्रियों को अपने अपने विषयों से वापस लाना - वेदान्तसार, पृ. 44) । (3) महालक्ष्मी मृगचर्म को ओढती भी है और बिछाती भी है। (4) जिस महालक्ष्मी के शरीर का मध्यभाग हरि से आश्लिष्ट है ऐसी ; हरि को कार्यों में लगानेवाली, और स्वयं हरि द्वारा कार्यों में लग जानेवाली । (5) सज्जनों के पापों को हरनेवाली [हृञ् 'हरणे'-भ्वादिगण] धातु से निष्पन्न। **'ॐ हरिण्यै नमः'** यह षडक्षर मंत्र योग का उत्तम साधन एवं सर्व- कार्यसाधक है - [लक्ष्मी. 50-43 से 48, पृ. 612-13] ।

(3) सुवर्णरजतस्त्रजाम् — (क) सुवर्णपुष्पों की एवं चाँदी के पुष्पों की मालाएँ पहनी हुई - विद्या., श्रीकण्ठ. । (ख) सुवर्ण और चाँदी से निर्मित कमलों की मालावाली - पृथ्वी.; शतानंद.; (आथ. पृ. 50-49; 51); लक्ष्मी. 50- 49; 51, । (ग) सुवर्ण जैसी पीली और चाँदी जैसी श्वेत मालावाली - शतानंद. (घ) सुवर्ण तैजस् है, इस अर्थ में लक्ष्मीजी ने तेजोमय गहने पहने हैं - आथ. पृ. 51-52; (ङ) विवेक-वैराग्यरूप पुष्पों की मालावाली-नथु. ।

(च) सुवर्णस्त्रजाम् — सु (शोभित) । वर्ण = अकारादिवर्णों का । स्त्रजाम्= सर्जन करनेवाली । [सृज् (विसर्गे तुदादि) धातु से निष्पन्न ।] (छ) विश्व (विष्णु) का वरण करनेवाली - [लक्ष्मी 50-49] ।

(ज) रजतस्त्रजाम् — जगतों का सर्जन करनेवाले देवता रूप मालाएँ लक्ष्मीजी से शोभायमान होती हैं - [लक्ष्मी 50-51; पृ. 614]। (झ) **'ॐ सुवर्णस्त्रजे नमः'**। कुबेरने मेरुपर्वत पर इस अष्टाक्षर मंत्र की उपासना करके धनेशत्व प्राप्त किया था । (ञ) **'ॐ रजतस्त्रजे नमः'** । रुद्रश्रेष्ठ महादेव कैलास पर्वत पर इस मंत्र की उपासना करके रजताधिपति बने । इन दोनों मंत्रों के जप से, ध्यान से एवं उनके द्वारा अर्चन करने से इष्टफल मिलता है - [लक्ष्मी. 50-50 से 53] ।

(4) चन्द्राम् – (क) चन्द्र की तरह प्रकाशित-विद्या.; शता.; श्रीकण्ठ; [चदि आह्लादने दीप्तौ च - श्रीकण्ठ), (ख) चन्द्र की तरह आह्लादक - श्रीकण्ठ., पृथ्वी.; । सर्वजनों को आह्लाद देनेवाली-पृथ्वी., श्रीकण्ठ.। (ग) चन्द्रमुखी-शतानंद । (घ) चन्द्र में विद्यमान चन्द्रिका - श्रीकण्ठ; । पूर्णिमा के दिन श्रीललिताम्बा का चन्द्र में ध्यान करें - श्रीकण्ठ। (ङ) जिस तरह चन्द्र में वृद्धि-हानि होती रहती है, उसी तरह लक्ष्मीजी धनवैभव देती भी है और छीन भी लेती है - आथ. पृ. 53। (च) शुक्लपक्ष में चन्द्रदर्शन में उत्सुकता रहती है और कृष्णपक्ष में उपेक्षा रहती है। लक्ष्मीजी ऐसी उत्सुकता से हर्षित नहीं होती और उपेक्षा से निराश नहीं होती - आथ. पृ. 54। (छ) लक्ष्मीतंत्र के अनुसार (1) चं = घुमती हुई, । लक्ष्मीजी अपने भक्तों के पापों को, द्रा = दूर करनेवाली; (2) चं = चन्द्र की तरह, भक्तों के चित्त को, द्रा = द्रवित करनेवाली। (3) योगियों की तुर्यावस्था को चन्द्र की तरह भासित (प्रकाशित) करनेवाली और (4) चन्द्रनाडी में स्थित है। महामुनि वसिष्ठ योगविघ्न के कारण योग में रुक गए थे, तब चन्द्रनाडी में स्थित लक्ष्मी का चिन्तन (उपासना) करने से फिर से योग को प्राप्त हुए। (ज) **'ॐ चन्द्रायै नमः'** यह षडक्षर मंत्र आनन्दजनक है और संसार की आग को बुझाता है - [लक्ष्मी. 50-54 से 58; पृ. 615]।

(5) हिरण्मयीम् – (क) सुनहरे रूपवाली; (हिरण्यस्वरूपाम् - विद्या., पृथ्वी., श्रीकण्ठ.। (ख) सुवर्ण स्वयं लक्ष्मी है - श्रीकण्ठ; शतानंद.; । सुवर्णनिर्मित देहवाली-विद्या.। (ग) धन एवं भाग्य से परिपूर्ण-श्रीकण्ठ., (घ) हिरण्यरेतस् शंभु की हिरण्मयी शक्ति - श्रीकण्ठ.। (ङ) हिरण्य पवित्र है, इस अर्थ में पवित्रतायुक्त-श्रीकण्ठ.। (च) लक्ष्मी देवी का शरीर षड्विकारयुक्त पंचभौतिक नहीं है, परंतु तैजस् है, इस लिए वह देवी हजारों वर्ष पहले जैसी थीं, वैसी ही आज है, अर्थात् उसके शरीर की एक ही अवस्था है - [आथ. पृ. 55-56] (छ) लक्ष्मीतंत्र के अनुसार-(1) मूलाधार से द्वादशान्त तक लक्ष्मीजी स्वयं हिरण्मयी के रूप में उदित रहती है। (2) लक्ष्मीजी प्रकृति से पर आकाशगत त्रयीमय हिरण्यमंडल में जगतहितार्थ स्थित रहती है, इस लिए उसे हिरण्मयी कहते हैं। (3) **'ॐ हिरण्मय्यै नमः'**। यह सप्ताक्षर मंत्र सर्व मनोरथों को पूरा करता है। इस मंत्र के द्वारा लक्ष्मी की स्तुति करने से योगियों ने योगप्राप्ति की है - (लक्ष्मी. 50-58 से 61; पृ. 615-16)।

(6) लक्ष्मीम् — (क) लक्षणयुक्त - विद्या.; श्रीकण्ठ. । (ख) लाभयुक्त - विद्या. । (ग) शोभा-संपत्ति रूप - श्रीकण्ठ. । ललिता, लक्ष्मी, शारदा और उमा एक ही है - श्रीकण्ठ. । (घ) ज्ञान, ऐश्वर्य, सुख, आरोग्य, धन, धान्य, जय आदि लक्ष्म (चिह्न) के कारण उसे लक्ष्मी कहते हैं । ज्ञानैश्वर्य सुखारोग्यधनधान्यजयादिकम् । लक्ष्म यस्याः समुद्दिष्टं सा लक्ष्मीति निगद्यते इति निरुक्तसारोक्तेः, - शतानंद; [आथ. पृ. 72] । (ङ) ब्रह्मविद्या - नथु. । (च); लक्ष्मीतंत्र के अनुसार - (1) सर्वभूतों के शुभ-अशुभों को देखनेवाली; [लक्ष् दर्शनांकनयोः; चुरादि धातु से निष्पन्न । लक्षयति इति लक्ष्मी] (2) श्रीहरि की लक्ष्मी [सर्व संपदा ऐसा अर्थ विमर्शिनीकार ने किया है ।] (3) वह सर्व प्रमिति का लक्ष्य है । (4) ल=देनेवाली-लेनेवाली; ला [आदाने-अदादि] धातु से निष्पन्न; चन्द्रव्याकरण के अनुसार यह दानार्थक अर्थ में है। क्षिप् प्रेरणे तुदाति = [फेंकनेवाली] प्रेरणा देनेवाली [अर्थात् दाता को प्रेरणा देनेवाली ।] (5) ल=लय [स्थिति एवं संहार] में प्रकृति को प्रेरणा देनेवाली। (6) अव्यक्त एवं व्यक्त सत्त्वों में स्थित होकर सदा प्रेरणा देनेवाली । (7) लक्ष तक पहुँचानेवाली । उसमें लीन होकर (ली [श्लेषणे-क्र्यादि और दिवादि] धातु से निष्पन्न) = प्रेरणा देनेवाली । (8) क्षमा देनेवाली अर्थात् क्षमास्वरूपा । (9) सज्जनों के पापों को नष्ट करनेवाली । (10) लक्ष्मी शब्द के क्ष् और म् के माध्यम से अर्थ — क्ष् = क्षम् [सहने-भ्वादि] धातु से । म् = भूतों को जाननेवाली (मन्-ज्ञाने)। सभी को नापनेवाली [मा (माने)] धातु से] ॥ (11) ऐसे विविध अर्थों को देखकर कपिल मुनि ने कहा कि, हे देवी ! मेरी ओर =(मा); । देखो = [लक्षय] । इससे इस देवी का नाम लक्ष्मी पड़ा। (12) **'ॐ लक्ष्म्यै नमः'** यह पंचाक्षर मंत्र पाताल में गति कराता है और दिव्य, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी के भोगों को देता है, उत्पन्न करता है - [लक्ष्मी. 50-62 से 68; पृ. 616-18] ।

(7) हे जातवेदः = अग्निदेव ! आ वह = भेजो ।

अर्थ — सुनहरे एवं पीले वर्णवाली, सुवर्ण पुष्पों एवं चांदी के पुष्पों की मालाएँ पहनी हुई, चन्द्र सी आह्लादक, सुवर्णमय देहवाली, लक्ष्मी को, हे सर्वज्ञ अग्नि देव ! मेरे पास लाओ-भेजो ।

[2]

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विंदेयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥

पाठभेद – (1) लक्ष्मीमलप - का. संभा. । (2) गामश्वान् - का. । [**वसु.**– यद्यपि लक्ष्मीतंत्र में '**अनपगामिनीम्**' पाठ का ही स्वीकार है, तथापि उससे आगे के समय में '**अनपायिनीम्**' पाठ भी होगा ऐसा प्रतीत होता है - लक्ष्मी. - 50-70 से 74] ।

(1) जातवेदः (क) जातप्रज्ञान-उवट-वा.सं. 27-7; महीधर 27-22 । (ख) सर्वज्ञ-नथु. । (ग) अग्नि देवताओं का **होता** [होतृ] है, इस लिए आवाहन प्रक्रिया उसके आधीन है, विद्या; नथु. । (घ) संतुष्ट अग्नि यजमान को लक्ष्मी देता है-श्रीकण्ठ. । (ङ) अग्नि रुद्र ही है; रुद्र ही पुरुष है, इस लिए रुद्रपत्नी उमा ही लक्ष्मी है । अग्निरूप परमेश्वर की उपासना करने से परमेश्वर की विभूतिरूपा महालक्ष्मी की प्राप्ति होती है - श्रीकण्ठ. ऋचा-1, [आथ, पृ. 233] [**वसु.**– होता=श्रौतयाग का एक ऋत्वक्] ।

(2) ताम् = उस ।

(3) अनपगामिनीम् – (क) अपगमन नहीं करनेवाली, अर्थात् स्थिर-विद्या. । (ख) मुझे [मंत्रद्रष्टा ऋषि को] छोड़कर कहीं भी अन्यत्र नहीं जानेवाली-पृथ्वी., (आथ.; पृ. 72) । (ग) भगवान को छोड़कर नहीं जानेवाली - लक्ष्मी. 50-70; नथु. (आथ., पृ. 72) । (घ) अविनाशी ऐश्वर्ययुक्ता-आथ. [पृ. 72] । **ॐ अनपगामिन्यै नमः** । यह नवाक्षर मंत्र सर्व आपत्तियों का निवारण करता है - [लक्ष्मी 50-74, 75, पृ. 619] ।

(4) लक्ष्मीम् = लक्ष्मी को । **अष्टलक्ष्मी** [आठ लक्ष्मी] इस प्रकार हैं - द्विभुजालक्ष्मी, गजलक्ष्मी, महालक्ष्मी, श्रीदेवी, वीरलक्ष्मी, द्विभुजा वीरलक्ष्मी, अष्टभुजा वीरलक्ष्मी और प्रसन्नलक्ष्मी-श्रीविद्यामहार्णव - पृ 1489-90] ।

(5) म आवह – मेरे पास = (मे) । आवह = बुलाओ, (भेजो) ।

(6) यस्याम् – (क) जब वह आवाहित होती है, तब - विद्या. । (ख) जब वह आ जाती है, तब - पृथ्वी.; चिद्विलास; नथु. । (ग) उस लक्ष्मी में - (आथ.; पृ. 77) ।

(7) हिरण्यम् — (क) सुवर्ण - विद्या., नथु., (आथ.; पृ. 77) । (ख) सुवर्ण; आदि चीजें - पृथ्वी. । यहाँ राजलक्ष्मी का वर्णन है - चिद्विलास. ।

(8) गाम् — (क) गाय - विद्या. । गाय महान धन है - (आथ. पृ. 79) । (ख) गाय आदि पशुओं को - पृथ्वी., (आथ.; पृ. 77) ।

(9) अश्वम् — (क) घोडा - विद्या. । (ख) घोडे आदि वाहन - पृथ्वी. ।

(10) पुरुषान् — (क) पुत्र, मित्र, दास आदि पुरुष - विद्या. नथु. । (ख) पुत्र आदि-पृथ्वी. । हितेच्छु मित्र, निष्ठावान् दास आदि (आथ.; पृ. 79) । अनुकूल पुत्र, मित्र, दास आदि - नथु. ।

(11) अहं विन्देयम् — (अहं) = मैं । (विन्देयं) = प्राप्त करूं ।

अर्थ — हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! स्थिर एवं अविनाशी लक्ष्मी को मेरे पास बुलाइए, कि जिसके आने के बाद मैं सोना, चाँदी, गाएँ घोडे आदि पशुसमूह और अनुकूल पुत्र, हितेच्छु मित्र, निष्ठावान दास आदि को प्राप्त करूं ।

[3]

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥

पाठभेद (1) अश्वपूर्वाम्- विद्या.। अश्वपूर्णाम्-का.; विद्या.; पृथ्वी.; संभा. । [विद्यारण्यभाष्य में अश्वपूर्वां और अश्वपूर्णां दोनो पाठ स्वीकृत हैं]
(2) -नादप्रमोदिनीम् - का.; संभा. । -नादविनादिनीम् - [लक्ष्मी 50-77]
(3) देवीर्जुषताम् - का. पृथ्वी. संभा. ।

[**वसु.** — यहाँ सेनारूपा लक्ष्मी का निरूपण है - विद्या- पृथ्वी. । आथवलेजी कहते हैं कि, इस ऋचा में संघर्ष का विधान है । राजलक्ष्मी, ज्ञानलक्ष्मी एवं आत्मलक्ष्मी युद्ध के द्वारा, संघर्ष के द्वारा प्राप्त होती हैं - (आथ.; पृ.; 86; 93)] ।

(1) अश्वपूर्वाम् — (क) जिसके आगे अश्व हैं, ऐसी सैन्यलक्ष्मी - विद्या., पृथ्वी. । ऐसी सेना - नथु. । ऐसी राजलक्ष्मी - (आथ.; पृ. 81-82) । (ख) जिसके प्रथम भाग में निष्काम कर्मरूप अश्व हैं, ऐसी ब्रह्मविद्या - नथु.। [**(ग) अश्वपूर्णाम्** - अश्वों से परिपूर्ण - विद्या.] (घ) लक्ष्मीतंत्र में अश्वपूर्वा

को दो प्रकार से समझाया है, जैसे कि -(1) अश्वपूर्वा = अश्व + पूर् + वा। **अश्व** = बुद्धि को विषयों की तरफ अश्व की तरह दौडानेवाली । **पूर्** = (प्राणरूप) पुरि में निवास करनेवाली अथवा प्राणों का निवासस्थान बनी हुई। वा=वाहनी=शरीर को वहन करनेवाली। (2) अश्वपूर्वा = अश्व + पूर्वा। **पूर्वा** =योग के आरंभ में। **अश्व** = अश्व की तरह हिनहिनानेवाली। [अर्थात् योगारंभ में प्रथम अश्वनाद सुनाई देता है।] (ङ) **ॐ अश्वपूर्वायै नमः** । यह अष्टाक्षर मंत्र है - लक्ष्मी. [50-75; 76; पृ. 619-20] ।

(2) रथमध्याम् – (क) जिसके मध्यभाग में रथ हैं, ऐसी सेनालक्ष्मी-विद्या.; नथु., । जिसके मध्यभाग में केवल रथ ही हैं, ऐसी सेनालक्ष्मी-पृथ्वी. । (ख) रथ के मध्यभाग में बैठी हुई - (आथ.; पृ. 81) । (ग) जिसके मध्यभाग में चित्त की एकाग्रता के साधनरूप रथ हैं, ऐसी मोक्षसाधनभूता ब्रह्मविद्या-नथु.। (घ) लक्ष्मीजी जब नाडी के मध्य में पहुँचती है, तब रथ जैसी आवाज़ करती है। (ङ) **ॐ रथमध्यायै नमः** । यह अष्टाक्षर मंत्र है - [लक्ष्मी. 50=77; पृ. 620] । [इस मंत्र के फल का निर्देश नहीं है।]

(3) हस्तिनाद प्रबोधिनीम् – (क) हाथियों की चिंघाड से [अपनी उपस्थिति का] ज्ञान करानेवाली [प्रकर्षेण ज्ञापिकाम्] - विद्या. । (ख) अपने आगमन-काल में हाथियों की आवाज का ज्ञान करानेवाली [ज्ञापयित्रीं] - पृथ्वीं. । (ग) हाथियों की आवाज द्वारा अपनी भव्यता को बतानेवाली - नथु. । (घ) हाथियों की आवाज से निद्रात्याग करनेवाली - (आथ.; पृ. 81) । (ङ) **हस्ति** =शम, दम आदि साधन । **नाद** = ध्वनि = उन साधनों का परिपाक । शम आदि साधनों के परिपाक से अपनी भव्यता को बतानेवाली ब्रह्मविद्या-नथु. ।
(च) हस्तिनादविनादिनीम् – व्योमरंध्र में जब लक्ष्मीजी पहुँचती है, तब हाथी जैसी आवाज़ करती है। '**ॐ हस्तिनादविनादिन्यै नमः**' यह एकादशाक्षर मंत्र है। ये तीनों मंत्र लक्ष्मीमय हैं और इच्छापूरक हैं - [लक्ष्मी 50-77] ।
[**वसु.** - (क) विनादिनी शब्द वि + नद् धातु से निष्पन्न हुआ है। आप्टे डिक्शनरी में विनद् शब्द आवाज़परक एवं प्रतिआवाज़परक अर्थ में है। (ख) इन तीनों नामों का संबंध योगोपासना से है, जैसे कि, **अश्वपूर्वा** का सम्बन्ध यतमान योगी की प्रारंभावस्था के साथ है और **रथमध्या** एवं **हस्तिनादविनादिनी** ये दोनों नाम योगयात्रा की उत्तरोत्तर प्रगति के सूचक हैं।
(ग) हस्तिनादप्रमोदिनी = हाथी की चिँघाड से प्रसन्न होनेवाली ।]

(4) देवीम् – (क) दीप्यमान =चमकदार-महीधर - वा.सं. 28-37,; 38; विद्या. । (ख) दीप्ति - महीधर; - वा.सं. 28-38; उवट-28-37 । (ग) दान आदि गुणवाली - उवट. वा.सं. 28 - 37 (घ) सामर्थ्यवती - (आथ.; पृ. 86;89) । (ङ) देवी = देव की पत्नी [लक्ष्मीदेवी]-[लक्ष्मी. 50-90;] श्री-देवी-पृथ्वी. । (च) लक्ष्मीतंत्र में देवी पद के दो हिस्से बताकर अर्थघटन किया गया है, जैसे कि दे+अवी । **दे** = सर्व कामनाओं को देनेवाली, दा -दाने धातु से निष्पन्न । **अवी** = सर्वकर्मों का रक्षण करनेवाली, अव् रक्षणे धातु से निष्पन्न। (छ) **'ॐ देव्यै नमः'** । यह पंचाक्षर मंत्र भोग और मोक्ष का दाता है - [लक्ष्मी. 50-90; 91; पृ. 623] ।

(5) श्रियम् – (क) लक्ष्मीदेवी को - पृथ्वी. । (ख) आश्रय करने योग्य, (ग) सैन्यलक्ष्मी-विद्या.; पृथ्वी., नथु.; । (घ) सामर्थ्ययुक्त संपत्ति - (आथ.- पृ. 81,) । (ङ) महाप्रतापी ब्रह्मविद्या - नथु. ।

(च) लक्ष्मीतंत्र में **श्रियं** पद को विविध रीति से, विविध अर्थों में समझाया गया है, जैसे कि - (1) (भक्तों की) करुण वाणी सुननेवाली, श्रु (श्रवणे-भ्वादि) धातु से निष्पन्न । शृणोति इति श्रीः । (2) सज्जनों के पापों को नष्ट करनेवाली, (शॄ (हिंसायाम्-क्र्यादि) धातु से निष्पन्न ।) (3) गुणों के द्वारा विश्व का विस्तार करनेवाली, (शॄ (विस्तारे) धातोः निष्पन्नः इति विमर्शिनीकारः) (4) (सभी की) शाश्वत शरणरूपा । (5) लक्ष्मीजी स्वयं हरि का शरीर है । (6) **श्री** = श्र् + ई । देवगण श्रद्धा से =(श्र)। जिसे चाहते हैं =(ई = ईप्सिता)। (7) **श्री** शब्दगत श् + र् + ई तीन वर्णों को भिन्न भिन्न अर्थों में समझाया गया है, जैसे की (क) श् = शान्ता, (मूलाधार में शान्ता वाक् (परावाक्) है। र् = रन्ती । (नाभि में) पश्यन्तीवाक् है । ई = प्रेरणी = बुद्धि की प्रेरणी मध्यमा वाक् और मुख में वर्णों की सृष्टि अर्थात् वैखरीवाणी स्वयं लक्ष्मी है । [**वसु.** - **श्री** इत्यत्र ईकारः प्रेरणीशब्दस्थ-णीकारगतः ईकारः अस्ति इति विमर्शिनीकारः 50-81 । परंतु तदीकारः ई गतौ दिवादि धातोरपि भवितुं शक्यते ।] ।(ख) श्री = [विष्णु का] आश्रय लेनेवाली । श्री = शक्तियों को आश्रय देनेवाली । र् = [आश्रितों के पापों का] नाश करनेवाली अथवा [आश्रितों की कामनाएँ] पूरी करनेवाली; (देनेवाली - रा (दाने अदादि) धातु से निष्पन्न।) । (ग) श् = (अपनी) शक्ति से प्रकाश करनेवाली अथवा शंतमा= महामंगलरूपा ।

र् = रति (प्रीति) स्वरूपा । ई = ईप्सित = जिसे सभी चाहते हैं ऐसी । ईश्वर एवं देवगण सहित का पूरा त्रैलोक्य, और लक्ष्मी की विभूतियाँ भी **श्री** शब्द की सोलहवीं कला के तुल्य नहीं है । (घ) श् = **श्रीं** । र् = **ह्रीं** । ई = **ॐ** ये तीन बीजमंत्र और '**ॐ श्रियै नमः**' यह पंचाक्षर मंत्र; ये चारों लक्ष्मीमय हैं, जो लक्ष्मीजी के शरीर को धारण करते हैं । प्रयत्नपूर्वक इन चार मंत्ररूप रत्नों का रक्षण करें । इन में से किसी भी एक, या दो, या तीनों, या चारों के जप से; होम से; ध्यान से और इन मंत्रों के द्वारा अर्चन करने से साधक की इच्छाएँ सफल होती हैं । जब इन चारों में से किसी भी एक के उपयोग से अन्यों का भी फल मिल जाता हो, तब चारों के उपयोग से तो सर्वाधिक फल मिलेगा ही – लक्ष्मी.; 50-79 से 87] ।

[**वसु.** – (क) लक्ष्मीतंत्र में **श्रीं; ह्रीं; ॐ** इन तीनों को लक्ष्मीमय बताया है- 50-85; परंतु इनके उत्पतिक्रम के संदर्भ में देखा जाए तो **ॐ; ह्रीं; श्रीं** ऐसा क्रम बनता है - [लक्ष्मी. 24-13 और 25-36 से 51 एवं 26-8 से 12] अतः अर्चन में - [लक्ष्मी. 50-86], **ॐ; ह्रीं; श्रीं** को लगाना आवश्यक है । परंतु परशुराम-कल्पसूत्र में अर्चन-मंत्रों की आदि में **ऐं; ह्रीं; श्रीं** लगाने का विधान है - [सर्वेषां मंत्राणामादौ त्रितारीसंयोगः । त्रितारी वाङ्मायाकमलाः - परशु. (3-8, पृ. 91) । (ख) (1) शारदातिलक-प्रोक्त श्रीमंत्रों में '**ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं**' चतुरक्षर मंत्र है - [शा. 8-30, पृ. 234] । परंतु राघव भट्ट ने स्पष्टता की है कि धर्मार्थं वाग्भवादित्वं, अर्थार्थं लक्ष्मीबिजादित्वं, मोक्षार्थं मायाबीजादित्वम् इति (शा.; पृ. 234) । अर्थात् इन चार बीजों का क्रम बदला जा सकता है । ह्रीं को आदि में रखने से मोक्षप्राप्ति होती है । (2) श्रीविद्यार्णवतंत्र में **ऐं; ह्रीं; श्रीं; क्लीं** क्रमवाला मंत्र है -(श्वास 22; पृ. 123) । (ग) **ॐ ह्रीं श्रीं** और **श्रीं ह्रीं ॐ** इन दो पक्षों में प्रायः **ॐ ह्रीं श्रीं**; क्रम प्रशस्त प्रतीत होता है, क्योंकि लक्ष्मीतंत्र ने श्रीसूक्त में **ह्रीं श्रीं** को इसी क्रम से जोडने का विधान किया है - [लक्ष्मी. 50-29] और **ॐ**कार का मंत्रादित्व तो प्रसिद्ध है [फिर भी अपनी गुरुपरंपरा के अनुसार चलना उचित रहेगा । अस्तु ।]

(6) उपह्वये – मेरे समीप में आने के लिए आवाहन करता हूँ - विद्या. पृथ्वी. ।

(7) देवी श्रीः = ऐसी श्री देवी । लक्ष्मी तंत्र में दो अर्थ हैं – (1) दे +

अवी, (क) कामप्रदा; दा दाने धातु से । (ख) सर्व कर्मों की रक्षिका; अव् रक्षणे धातु से । (2) देवी = देव विष्णु की पत्नी । **ॐ देव्यै नमः** । यह पंचाक्षर मंत्र भोग और मोक्ष देता है - लक्ष्मी. = 50-90, 91; पृ.623 ; ।

(8) मा जुषताम् = मेरा (मा=मां) । सेवन करें; मुझे मिले =(जुषताम्) । प्रीति करें । मेरे घर प्रीतिपूर्वक रहें । [जुषी प्रीति-सेवनयोः, तुदादि । जुष् परितर्कणे चुरादि; परितर्पणे इत्यन्ये ।]

मा = लक्ष्मीतंत्र में **मा** पद के अर्थ दो प्रकार से बताए हैं - (क) विशेषण के रूप में और (ख) सर्वनाम के रूप में । (क) विशेषण के रूप में इसे तीन प्रकार से समझाया है, जैसे कि - (1) [सभी को जहाँ तहाँ] प्रक्षिप्त करनेवाली (मिङ् प्रक्षेपणे धातु से); (2) [प्रलयकाल में] सर्व संहारक = [मीङ् हिंसायाम्-दिवादि धातु से]; (3) प्रलयकाल में सर्वजगत को नापनेवाली, अर्थात् अपने में समानेवाली [मा माने-भ्वादि धातु से] । (ख) सर्वनाम के रूप में इसे दो प्रकार से समझाया है, जैसे कि - (1) लक्ष्मीजी स्वयं आत्मा के रूप में अथवा ईश्वर के साथ रहती हुई सर्वत्र व्याप्त है, इस लिए 'यह मेरा = (मा) है' ऐसी बुद्धि होती है; (2) लक्ष्मीजी को जाननेवाले लोग उसे अपनी आत्मा की तरह चाहते हैं, अर्थात् 'अपने जैसा' ऐसा भाव ऊठता है [म इव मा इति भावः इति विमर्शिनी] । **ॐ मायै नमः** । यह पंचाक्षरमंत्र सभी कामनाओं को सफल करता है - [लक्ष्मी. 50-88; 89; पृ. 623] ।

अर्थ – जिसके आगे घोडे दौड़ रहे हैं, हाथियों की चिँघाड से जिसकी भव्यता प्रतीत होती है, और जो रथ के मध्यभाग में विराजमान है, ऐसी देदीप्यमान [सेनारूपा] राजलक्ष्मी को मैं बुलाता हूँ, जो देवी मुझ पर प्रीति करे;, मेरा सेवन करें; मेरे घर सप्रेम रहें ।

[4]

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

पाठभेद – (1) कां सोस्मितां - लक्ष्मी. 50-95; पृ. 624; विद्या.; पृथ्वी.; नथु.; आथ.; । कांस्यस्मि तां - ऋग्. । (2) प्रावारा - ऋग् । प्राकारा-का ।

(1) काम् – (क) जिसका ज्ञान वाणी एवं मन से नहीं होता ऐसी, अर्थात् अनिर्वचनीय स्वरूपवाली - विद्या. । (ख) ब्रह्मस्वरूपा विद्या.; आथ.; । अव्यक्त, अमूर्त (आथ.; पृ. 96;) । (ग) सुख स्वरूपवाली, परमानंद स्वरूपवाली - नथु; । (घ) चिन्मयी लक्ष्मी सर्व भूतों के अन्तःकरण में रहकर आवाज़ करती है - [कै शब्दे-भ्वादि धातु से] - [लक्ष्मी. 50-91] । वाणी, वाक्यरूपा अर्थात् वाग्देवी, वाक्लक्ष्मी-पृथ्वी; । (ङ) का = यह कौन है ? ऐसी जिज्ञासा लेकर सर्ववेद जिसे खोजते हैं, ऐसी । (च) क = ब्रह्मा । जटाकमण्डलुधर ब्रह्मा का रूपवाली । इस रूप में वह देवी स्वाध्याय-तत्पर भावों का सर्जन करती है। (छ) **ॐ कायै नमः** । यह पंचाक्षर मंत्र स्वाध्याय का फल दैता है - [लक्ष्मी. 50-91 से 94] ।

(2) सोस्मिताम् (क) स = (सहित) । आ (अल्प) । उत् = (ऊँचा उठा हुआ अर्थात् उत्कृष्ट । स्मिताम् = (स्मितवाली) - [आ = ईषत्, उत् = उद्‌गतं, स्मितं, तेन सहिताम्] = उत्कृष्ट मंद स्मितवाली - विद्या.; पृथ्वी.; (आथ; पृ. 96)। अर्थात् मनोहर मंद-स्मितवाली - नथु.। लक्ष्मीमाता के मन्द स्मित में सकामता, विनय, प्रसन्नता, भावशून्यता, उपेक्षितता और आत्मीयता का मिश्रण है । **जब तक भक्त की दृष्टि भोगों की ओर न चली जाए, तब तक सोस्मिता लक्ष्मी भक्त के घर आती रहती है** - (आथ.; पृ. 97-98) । आथवलेजी **काम्** पद को **सोस्मितां** का विशेषण मान कर अवर्णनीय (अनिर्वचनीय = काम्) स्मितवाली ऐसा भी अर्थ करते है - (आथ.; पृ. 114) । (ख) लक्ष्मीतंत्र के अनुसार स + उ + स्मिताम् । उ = उत् = ब्रह्म । स्मित = ब्रह्म का विकास ही स्मित है, जो (स्मित) लक्ष्मी के आधीन है । उस ब्रह्मस्मित के सहित (सोस्मिताम्) (ग) **ॐ सोस्मितायै नमः** । यह सप्ताक्षर मंत्र बडा विकास करता है - [लक्ष्मी. 50-94, 95; पृ. 624] ।

(3) हिरण्यप्राकाराम् – (क) सुवर्ण का आवरणवाली-विद्या. । अपने इर्दगीर्द सुवर्णवाली - नथु. । सुवर्ण की उत्कृष्ट आकृतिवाली - विद्या. । समग्र जगत का सुवर्ण ही लक्ष्मी है - (आथ; पृ. 102) । सुवर्ण की बैठकवाली-(आथ, पृ. 99); सुनहरी प्रभावाली-(आथ.; पृ. 101,) । (ख) सभी प्रकार की अनुकूलताओं से युक्त - नथु. । (ग) हि = हितकारी । रण्य = रमणीय। प्राकार = प्रकृतिवाली । लक्ष्मी की इस सात्त्विकी प्रकृति का ध्यान करके

मुनिगण पार हो जाते हैं। (घ) **ॐ हिरण्य-प्राकारायै नमः**। यह दशाक्षर मंत्र सभी कामनाओं को समृद्ध करता है - [लक्ष्मी. 50-96, 97, पृ. 625]।

(4) आर्द्राम् — (क) क्षीरसमुद्र से उत्पन्न होने के कारण भींगी हुई [=आर्द्रां] - विद्या; । मस्तक के अधोमुखपद्म से निकली हुई अमृतधारा से अभिषेक होते रहने के कारण सदा भींगी रहती है [=आर्द्रां] - [लक्ष्मी. 50-98; 99]॥ (ख) शीतल गुणवाली - पृथ्वी; । शीतल स्वभाववाली - नथु; । स्नेहपूर्णा - (आथ; पृ. 104-5) । दयार्द्र - [लक्ष्मी. 50-99;]। भक्त की ओर पुत्रवत् पक्षपात करनेवाली - (आथ; पृ. 103) । (ग) रुद्ररूपा-रुद्रशब्दो अत्र अमूर्धन्यस्वरादिः - विद्या. ॥ (घ) आर्+द्रा । आर्=आरात् = दूर तक । द्रा = द्राविणी = घुलानेवाली । उपासकों के सर्वदोषों को दूर करनेवाली लक्ष्मी, (अर्थात् नष्ट करनेवाली) । **ॐ आर्द्रायै नमः**। यह षडक्षर मंत्र शान्तिदाता है - [लक्ष्मी. 50-98; 101; पृ. 625]।

(5) ज्वलन्तीम् — (क) प्रकाशमान - विद्या; नथु; । ज्योति-स्वरूपा - पृथ्वी;। चैतन्य स्वरूपा - नथु. । सर्वभूतों के परम हृदयाकाश में सदा जलनेवाली (ज्योति-स्वरूपा) - [लक्ष्मी-50-99]। (ख) अपने भक्त की अति चिन्ता में सतत जलती रहनेवाली, अर्थात् भक्त की बहुत देखभाल करनेवाली (आथ. पृ. 105-6) । (ग) [काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर को] जलानेवाली। माता लक्ष्मी के दर्शन होते ही कामादि जल जाते हैं, जैसे किसी सुंदर स्त्री में माँ का दर्शन होते ही काम जल जाता है - आथ. [पृ. 108-12] । (घ) लक्ष्मीतंत्र में विविध अर्थ दिये गए हैं — (1) शुद्ध, निरंजन, सत्यरूप से अपनी कान्ति द्वारा जगत को भासित करनेवाली । (2) [**परा के रूप में**] शरीर में शिखारहित ज्वालारूपा; (3) [**पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरीरूप में**] तीन शिखाओं वाली, (4) (**क** से **म** तक के 25 वर्ण रूप) पचीस शिखाओंवाली । (5) (**य** से **स** तक के सात वर्णरूप) सात शिखाओंवाली। (6) (**ह, ल, क्ष** के रूप में तीन शिखाओंवाली । (ङ) **ॐ ज्वलन्त्यै नमः**। यह षडक्षर मंत्र उज्ज्वलता (तेजस्विता) प्रदान करता है - [लक्ष्मी.; 50-99 से 101; पृ. 625]।

(6) तृप्ताम् — (क) तृप्त (प्रीता) - विद्या. । भक्ति, पूजा आदि से तृप्त होनेवाली - पृथ्वी.। शाश्वत तृप्त = क्षुधाजन्य तृप्ति के बाद अतृप्ति आती है,

परंतु बुभुक्षारहित रुचिजन्य तृप्ति चिरन्तना (शाश्वत) रहती है - (आथ. पृ. 115-18]। निःस्पृह - नथु.। परिपूर्णकाम - नथु. । लक्ष्मीतंत्र के अनुसार प्राकृत भोगों के बिना सदा तृप्त रहनेवाली । भक्तों में सदा तृप्त रहनेवाली [तृप् - तृप्तौ धातु से निष्पन्न]। (ख) भगवान् विष्णु में प्रीतिवाली - (तृप् - प्रीतौ धातु से निष्पन्न) । (ग) **ॐ तृप्तायै नमः** । यह षडक्षर मंत्र (1) समग्र जगत को तृप्त करता है । (2) इस मंत्र में तृप्ता लक्ष्मी का ध्यान करने से वेदज्ञ मुनिगण ज्ञानमूलक परम अमृतमय नित्य-तृप्ति को प्राप्त हुए हैं - [लक्ष्मी. 50-102 से 4; पृ. 626]।

(7) तर्पयन्तीम् = तृप्त करनेवाली । (क) मनोरथों की पूर्ति द्वारा भक्तों को तृप्त करनेवाली - विद्या; नथु; । विशिष्ट वरदान, प्रसाद एवं अनुग्रह से भक्तों की कामनाएँ पूरी करनेवाली - पृथ्वी; । अपने पुत्रवत् भक्त को तृप्त करनेवाली। माता लक्ष्मी के हाथ से प्रसाद के रूप में मिली हुई संपत्ति से भक्त चिरन्तन तृप्तियुक्त बन जाता है। भोगानन्द में आद्या लक्ष्मी की ओर ध्यान नहीं जाता, जब कि आत्मानंद में अद्वैत स्थिति बनी रहने से लक्ष्मीमाता अपने भक्त से अलग नहीं रहती । इन दो आनंदों के मध्य में भावानन्द रहता है, उस भावानन्दी भक्त को लक्ष्मीदेवी तृप्त करती है । यह सूक्त भावानंदियों के लिए है - आथ. (पृ. 118-22) ।

(ख) लक्ष्मीतंत्र में इस विशेषण को विविध प्रकार से समझाया गया है, जैसे कि - (1) अपने गुणों से भगवान् विष्णु को तृप्त करनेवाली और भगवान् विष्णु के गुणों से अपने को तृप्त करनेवाली । (2) प्राणों के द्वारा बहते हुए रसों से बहत्तर हज़ार नाडियोंवाले देहरूप सागर को तृप्त करनेवाली । (3) जो योगीजन सुषुम्णा अध्वा द्वारा परम भाव को प्राप्त हो गए हैं, उनके योगरूप दर्पण में लक्ष्मीजी स्वयं बिम्बभाव को प्राप्त होती है । उस बिम्बभाव से उत्पन्न हुए चिन्मय अमृतरसों से उन योगियों के उत्तम सत्त्व को लक्ष्मीजी तृप्त करती है। (4) प्राणियों के अन्तःकरणों को प्राणों के आधान द्वारा तृप्त करनेवाली । (5) अपने संवित्रूप अक्षय रस से योगियों को तृप्त करनेवाली । (ग) **ॐ तर्पयन्त्यै नमः** । यह सप्ताक्षर मंत्र समग्र जगत को तृप्त करता है - [लक्ष्मी. 50-104 से 111]। [**वसु.** — उद्योगपति अपने कामदारों को तृप्त करने के लिए और सत्ताधीश अधिकारी अपनी प्रजा को सन्तुष्ट रखने के लिए इस मंत्र की उपासना स्वयं करें और ब्राह्मण द्वारा इसका अनुष्ठान भी कराएँ।]

(8) पद्मे स्थिताम् – (क) कमल में स्थित - विद्या; पृथ्वी; नथु; (आथ; पृ. 112), [पानी के साथ कमल का अनासक्त सम्बन्ध है । अतः] कमल अनासक्ति का द्योतक है, **इस लिए लक्ष्मीदेवी अनासक्त [केवल कर्तव्यपरायण] भक्तों को ही मिलती है, आसक्त को नहीं** - (आथ., पृ. 123-24) । यह सिद्धान्त लक्ष्मीतंत्र [और अन्य शास्त्रों का भी है] । (ख) कमल जैसा निर्लेप स्वभाववाली - नथु. । (ग) हृदयरूप कमल में प्रकटी हुई - नथु. । (घ) कालरूप पद्म में स्थित लक्ष्मी काल का कलन करती है । (ङ) **ॐ पद्मे स्थितायै नमः** । यह मंत्र कालातीत बनाता है- [लक्ष्मी. 50-111 से 12; पृ. 628] ।

(9) पद्मवर्णाम् – (क) कमल जैसी कान्तिवाली - विद्या; पृथ्वी; नथु; । (ख) श्वेत-अरुण मिश्र रंगवाली । निःस्पृह एवं निर्लोभी भक्त के प्रति लक्ष्मीमाता के स्नेहपूर्ण मुख का वर्ण श्वेत-अरुण होगा । जीव के साथ शिवमिलन के समय अरुण-श्वेत वर्ण होता है - आथ. [पृ. 124-25] । (ग) लक्ष्मीतंत्र के अनुसार (1) लक्ष्मीजी आत्मतेज से ईश्वर द्वारा वर्णवाली बनती है । (2) पद्माकार वर्णों द्वारा लक्ष्मी का शरीर सुशोभित बनता है । (घ) **ॐ पद्मवर्णायै नमः** । इस अष्टाक्षर मंत्र द्वारा स्तुति करने से शास्त्रों में निपुणता - मिलती है - [लक्ष्मी. 50-113-से 14; पृ. 628] ।

(10) तां श्रियम् = ऐसी उस लक्ष्मीजी को ।

(11) इह = मेरे पास - विद्या.; पृथ्वी.; नथु. ।

(12) उपह्वये = आवाहन करता हूँ - बुलाता हूँ ।

अर्थ – वाणी एवं मन से अनिर्वचनीय स्वरूपवाली, मन्दस्मितवाली, सुनहरा रंगवाली, [अथवा सुवर्णस्वरूपा], स्नेहपूर्ण, चिन्तातुर, शाश्वत तृप्त , अपने भक्त को चिरन्तन तृप्ति देनेवाली, कमल में स्थित एवं कमल जैसी कान्तिवाली लक्ष्मीदेवी को यहाँ मेरे पास बुलाता हूँ ।

[5]

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥

पाठभेद – (1) पद्मनेमिं. - ऋग्। पद्मनेमीं-ऋग्; लक्ष्मी.; संभा. (2) शरणं प्रपद्ये-ऋग्। (3) अलक्ष्मीर्मे - ऋग्। प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे - विद्या.। (4) वृणोमि - ऋग्.। (5) प्रभासाम् - लक्ष्मी. - (50-117); यशसाम्-लक्ष्मी. (50-120)।

(1) चन्द्राम् (क) चन्द्र की तरह प्रकाशमान - विद्या.। (ख) संतोषप्रद-पृथ्वी., (आथ.-पृ; 126)। (ग) चन्द्र की तरह संतोषकारक प्रकाशवाली - नथु.। अज्ञान एवं अगतिकताजन्य संतोष अपूर्ण होता है, जब कि ज्ञानजन्य संतोष परिपूर्ण होता है - (आथ, पृ; 126-27)। (घ) आह्लादक - आथ; (पृ; 126)। (ङ) लक्ष्मीतंत्र के अनुसार क्षीरसागर-मन्थन के समय जब लक्ष्मीजी उदित हो रही थी, तब उनकी चन्द्र नाम की किरण पहले उदित हुई। वह चन्द्र लक्ष्मीजी की किरणों के करोड़ों करोड़ों वे अंश से उत्पन्न हुआ है। उस समय ऋषियों ने लक्ष्मी को '**चन्द्रा**' कहा था। (च) **ॐ चन्द्रायै नमः**। यह षडक्षर मंत्र मन को निर्मल बनाता है- [लक्ष्मी.; 50-114 से 16; पृ. 629]।

(2) प्रभासाम् – (क) सुशोभित - आथ.; पृ. 127; (ख) परिपूर्ण प्रेमरूप वैभव की प्रभा से सम्पन्न - आथ.; पृ. 128; (ग) श्रेष्ठ ज्ञान स्वभाववाली - नथु. (घ) अतिकान्तिवाली - विद्या.; पृथ्वी.; नथु.; (आथ. पृ. 127)। (ङ) लक्ष्मीतंत्र में इसको दो रीति से समझाया गया है - **(1)** प्र+भासा =(अ) अति खिंचाववयुक्त प्रकाशवाली। अर्थात् सभी अवस्थाओं में लक्ष्मीजी का प्रकाश खिंचता रहता है। (आ) सदा उदित अति प्रकाशवाली अर्थात् वह प्रकाश अन्य सभी प्रकाशों को तिरोहित करता है। **(2)** प्रभा + अस = प्रभाओं को फेंकनेवाली। [असु- क्षेपणे (दिवादि) धातु से निष्पन्न]। लक्ष्मीदेवी अपनी श्रद्धा, सोम, जल, अन्न, वीर्य और हविरूप छः प्रभाओं [इन भोग्य-शक्ति-प्रभाओं] को क्रम से स्वर्ग, पर्जन्य, पृथ्वी, पुरुष, स्त्री और वैश्वानर रूप छः अग्नियों में प्रक्षिप्त करती है। ये स्वर्गादि छः अग्नि, लक्ष्मीदेवी की भोक्तृशक्ति की प्रभाएँ हैं। (च) **ॐ प्रभासायै नमः**। यह सप्ताक्षर मंत्र तेज और संतति देता है - [तेजःसंततिदायकः] - [लक्ष्मी. 50-117 से 21; और 124]

(3) यशसा ज्वलन्तीम् – (क) कीर्ति से देदीप्यमान - विद्या;। निर्मल कीर्ति से प्रकाशमान - नथु; (ख) पृथ्वीधराचार्यजी '**लोके**' [चौदह लोकों में]

पद यहाँ जोडते हैं । चौदह लोकों में ऐश्वर्य, उदारता, संपत्ति आदि कीर्ति से प्रकाशमान-पृथ्वी. । (ग) अपनी मनोवृत्तियों से लड कर भोगों को भक्ति में रूपान्तरित करके यशस्वी बने हुए अपने भक्तों को देख कर प्रसन्न होनेवाली - आथ.; पृ. 130-31; (घ) लक्ष्मीतंत्र में **यशसा** और **ज्वलन्ती** रूप दो अलग अलग मंत्र बताए हैं । (अ) **यशसाम्** - विद्या एवं दान आदि से उत्पन्न उज्ज्वल यश का भाजन लक्ष्मी देवी है । वह यश अनेक रूपों में विभाजित हुआ है। इस यशस्विनी लक्ष्मी को बुद्धिमानों ने '**यशसा**'= (यशस्विनी) ऐसा नाम दिया है । **ॐ यशसायै नमः** । यह सप्ताक्षर मंत्र यश देता है । (आ) **ज्वलन्तीम्** - अग्निभाव के रूप में जलती रहनेवाली । लक्ष्मीजी स्वयं अपने को स्वर्ग आदि छः अग्नियों में विभक्त करके अनुक्रम से श्रद्धा आदि छः हविष्यों को ग्रहण करती है । इस तरह अग्नि (स्वर्ग आदि) और सोम (श्रद्धा आदि) ऐसे दो विभागों द्वारा लक्ष्मीदेवी विश्व को प्राप्त होती है। (ङ) **ॐ ज्वलन्त्यै नमः**। इस मंत्र से इच्छित-प्राप्ति होती है - [लक्ष्मी. 50-121 से 26; पृ. 630-31] ।

(4) देवजुष्टाम् - (क) देवों से सेवित - [लक्ष्मी. 50-127] । स्वर्गलोक में इन्द्र आदि देवों से सेवित - विद्या; पृथ्वी; नथु;, । (ख) देव = सात्त्विक एवं पराक्रमी सज्जन मनुष्यों से । जुष्टां = सेवित । लक्ष्मी सज्जनों के ही पास रहनी चाहिए; क्योंकि दुर्जनों के पास रहने से जगत का अहित होता है - आथ. [पृ. 131]। (ग) पवित्र मुमुक्षुओं से सेवित - नथु. । देव = दाता; दीप्यमान-मही. - [वा.सं. 28-9;7] ।

(घ) लक्ष्मीतंत्र में इसको विभिन्न तरीके से समझाया है, जैसे कि - (1) देव = विष्णु के द्वारा । जुष्य = प्रीति प्राप्त [जुषी-प्रीति-सेवनयोः, तुदादि धातु से] । (2) देवगण = इन्द्रादि देवों से । जुष्टा = सेवित । (3) (लक्ष्मीजी का आश्रय करके) देव = इन्द्रियाँ । जुष्टा = (विषयों के प्रति) आसक्त होती हैं। लक्ष्मीदेवी की शुद्ध-विज्ञान-क्रियामयी शक्ति द्वारा श्रोत्र एवं मन आदि इन्द्रियाँ विषयों में प्रवृत्त होती हैं । **(ङ) ॐ देवजुष्टायै नमः** । सर्वशक्तिप्रदाता इस अष्टाक्षर मंत्र से देवों पर भी विजय मिलता है - [लक्ष्मी.; 50-127 से 30; पृ. 631-32] ।

(5) उदाराम् - (क) सर्वव्यापी - पृथ्वी. । (ख) प्रगल्भ - विद्या. [प्रगल्भ = निर्भय, विश्वासी, नीडर, तेजस्वी - आप्टे की डिक्शनरी] । (ग) कर्तृत्व और विश्वास का मिश्रण उदारता है । दोनों अनिवार्य हैं । विश्वास में आत्मविश्वास और ईशविश्वास दोनों आवश्यक हैं - [आथ.; पृ. 135]। (घ) उदार - विद्या; नथु; । (ङ) लक्ष्मीतंत्र के अनुसार महर्षियों का विज्ञान और मनुष्यों की ऊँची, नीची शक्तियाँ एवं क्रियाएँ लक्ष्मीजी से उत्पन्न हुई हैं । लक्ष्मीदेवी इन विज्ञान आदि को बिना किसी शर्त या रुकावट [विशृंखल] से उदारतापूर्वक दे देती है । आप्टेडिक्शनरी में विशृंखल का अर्थ - [Unfettered; Free from all moral bonds है] । [**वसु.** — मालवीयजीने गलत भाषान्तर किया है - लक्ष्मी. 50-131 से 32] । (च) **ॐ उदारायै नमः** । यह सप्ताक्षर मंत्र सभी प्रकार का इष्ट फल देता है - [लक्ष्मी.; 50-132] ।

(6) पद्मिनीम् + ईम् — (क) कमललता-रूपा; (ख) कमल के आकारवाली-विद्या. । (ग) हाथ में कमलवाली - पृथ्वी.; नथु. । (घ) कमल में बैठी हुई - आथ.; (पृ. 136) । (ङ) पद्मनेमीम् — लक्ष्मीतंत्र और [संस्कारभास्कर में- पृ. 179] पद्मनेमीं पाठ है । ऋग्वेद में काशीकर ने **पद्मनेमिं** पाठ का स्वीकार किया है । काशीकर ने वहाँ **पद्मनेमीं** और **पद्मीनीमीं** पाठों को भी बताया है। [प्रकृतिं पुरुषं चैव नयामि स्वेन तेजसा । कालाच्चापि बहिर्भूत्वा पद्मनेमीं ततो विदुः ॥ - [लक्ष्मी. 50-134; से 35; पृ. 633] ।

ईम् - (क) यह निपात है, यहाँ इसका कोई अर्थ नहीं है - विद्या; आथ; [पृ. 136] । (ख) ईकार द्वारा कही गई [ईकार-वाच्याम् - विद्या; पृथ्वी.] [**वसु.** — इस दीर्घ ईकार से पद्मनेमीं के दीर्घ ईकार को समझाया जाए ।]

[**वसु.** — (अ) विमर्शिनीकार ने यहाँ इस तरह समझाया है - **पद्म** के पद् (धातु) से 'नयामि' अर्थ मिलता है । **नेमि** पद द्वारा 'बाहर' ऐसा अर्थ मिलता है । परंतु उन्होंने दीर्घ ईकार के बारे में कुछ बताया नहीं है । (उन्होंकी) यह संगति विचारणीय है । (आ) इसकी संगति दूसरे प्रकार से भी हो सकती है - जैसे कि, पद्म + नेमि + ई । **पद्म** = काल । [कालं पद्मं प्रचक्षते - लक्ष्मी. 50-111; पृ. 628] । **नेमि** = रथचक्र का प्रान्त (छोर) भाग । **नेमि** पद से **'बहिर् भूत्वा'** अर्थ की संगति बन सकेगी । **ई** - इण् (गतौ अदादि) धातु से **'नयामि'** की संगति होगी । काल से बाहर रहकर प्रकृति और पुरुष को

ले जाने वाली । अर्थात् काल [=पद्म] से बाहर, [=नेमि] रहकर, लक्ष्मीजी अपने तेज से प्रकृति एवं पुरुष का नयन [इण् धातु] = [लेजाने की क्रिया] करती है, इसलिए उसे **पद्मनेमीं** कहा है । विद्वद्गण इस पर विचार करें ।] (च) **ॐ पद्मनेम्यै नमः** । यह सप्ताक्षर मंत्र सर्व संपत्ति को समृद्ध करता है - लक्ष्मी. (50-134, 35; पृ. 633) ।

(7) ताम् - (अ) वह = (श्रीदेवी) - विद्या.; पृथ्वी.; नथु.; [आथ.; पृ. 137] । (आ) लक्ष्मीतंत्र में **ताम्** को लक्ष्मीवाचक पद के रूप में बताया है, सर्वनाम के रूप में नहीं । **ता** शब्द दो धातुओं से निष्पन्न हुआ है - तनु (विस्तारे - तनादि) धातु से और तायृ (सन्तान पालनयोः - भ्वादि) धातु से निष्पन्न हुआ है । इस लिए दो अर्थ हैं - (क) विस्तार करनेवाली [लक्ष्मी देवी पाँच कृत्यों का विस्तार करती है ।] (ख) पालन करनेवाली [जगत्-रूप से पालन करनेवाली] । (ग) **ॐ तायै नमः** । यह पंचाक्षर मंत्र शुभ का विस्तार करता है - [लक्ष्मी. 50-133, से 34; पृ. 632] ।

(8) श्रियम् = लक्ष्मीदेवी को ।

(9) अहम् = मैं । [**वसु.** — उत्तरीय विद्वान '**अहम्**' पद का स्वीकार करते हैं, जबकि दाक्षिणात्य विद्वान '**अहम्**' का स्वीकार नहीं करते हैं ।]

(10) लोके = (क) इस जगत में - विद्या.; नथु; । (ख) चौदह लोकों में- पृथ्वी; ।

(11) शरणं प्रपद्ये = शरण में आया हूँ । शरणं=रक्षण करनेवाली—विद्या.; पृथ्वी.; नथु.; ।

(12) मे अलक्ष्मीः = (हे श्री!)। मे=मेरी । अलक्ष्मीः = अलक्ष्मी-[ऋचा-8 में वर्णित] (क्षुत्पिपासाआदि) ।

(13) नश्यताम् = नष्ट हो जाए । [इस लिए] ।

(14) त्वां वृणे = [मैं =अहं] । त्वां = आपका । वृणे = वरण करता हूँ। मैं तेरी शरण में आया हूँ - [आथ. पृ. 137] । मैं आपकी श्रेष्ठता का स्वीकार करता हूँ - नथु. ।

अर्थ - मैं यहाँ अत्यंत कान्तिमान, चौदहलोकों में कीर्ति से देदीप्यमान

(प्रकाशमान), देवों से सेवित, उदार, हाथ में कमल लिए हुए, एवं चन्द्र जैसी प्रकाशित (या आह्लादक) उस श्रीदेवी की शरण में आया हूँ, जो मेरी अलक्ष्मी को दूर करे। (हे जननी !) मैं आपका वरण करता हूँ (अर्थात् शरण में आया हूँ)।

[6]

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥

पाठभेद – (1) तस्य, यस्य; – का. । (2) मायान्तरा, मा या अन्तरा । ममान्तरा– का. ।

(1) आदित्यवर्णे = (क) सूर्य जैसा वर्णवाली हे लक्ष्मी ! – विद्या.; पृथ्वी.; नथु.; । तरुणसूर्य जैसा वर्णवाली – सारस्वत., (ख) आदित्य जैसी तेजस्विनी – आथ. [पृ. 143] । (ग) सूर्य से भी अधिक स्वयंप्रकाश स्वभाववाली – नथु. । (घ) लक्ष्मीतंत्र में इसको विभिन्न अर्थों में समझाया है, जैसे कि – (1) तेज, यश एवं श्री द्वारा आदित्य को वर्ण (रंग) देनेवाली अर्थात् तेजस्विता देनेवाली [आदित्यं वर्णयति इति], (2) आदित्य में वर्णात्मक वेद- स्वरूपा देवी बनकर, आदित्य में [अ से क्ष तक के] वर्णों के रूप में रहकर वह भूत एवं भविष्यकाल के अर्थों को प्रकाशित करती है, [आदित्यस्था वर्णात्मा इति]। (3) सभी में आदिभूत वर्ण प्रणव (ॐकार) है, जिसमें लक्ष्मीजी स्वयं शान्ता, उदिता एवं आनन्दा होकर आनन्दित रहती है । [विमर्शिनीकार ने त्य का अर्थ **सिद्ध** ऐसा किया है ।] उस प्रणव की सूक्ष्म शिखा लक्ष्मीजी का शब्दमय शरीर है, जो शिखा तैलधारा की तरह अविच्छिन्न और घण्टे की दीर्घ आवाज़ की तरह सतत प्रवाहित होती रहती है। उस शब्दब्रह्म में निष्णात साधक नारायणी को शीघ्र प्राप्त कर लेता है [शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ।] (4) वह शान्ता, पश्यन्ती से बाहर होती हुई वैखरी के रूप में प्रकट होकर, सभी प्रकार के अर्थ-रूप दूध को देनेवाली कामदुघा गाय है। (5) पितृ, देव एवं मनुष्यों का वह चक्षु है । (ङ) **ॐ आदित्यवर्णायै नमः**। यह नवाक्षर मंत्र सभी कामनाएँ पूर्ण करता है – [लक्ष्मी. 50-136 से 42,; पृ. 633-34]। [**वसु.** – माध्यन्दिन-यजुःसंहिता की 'चित्रं देवानां.' कण्डिका में सूर्य को मित्र, वरुण एवं अग्नि का चक्षु कहा है । [मा.वा. 7-42] महीधर स्पष्टता करते हैं कि, मित्र आदि उपलक्षण है, अतः सर्व देवों एवं मनुष्यों का वह चक्षु है ।]

(2) तव तपसो – तव = आपके । तपसो = इस पद को दो प्रकार से समझाया गया है, जैसे कि (क) तपसः = तपस्या के द्वारा, [तपस्या से] [तपसः नियमाद् हेतोः]-विद्या.; वामन पुराण । तपस्या के लिए [तपश्चर्यार्थम्]-पृथ्वी.; सारस्वत.; । (ख) तपसा उ=तपसो । यहाँ उ निश्चयवाचक है । 'आपकी तपस्या से ही' ऐसा अर्थ होता है । बिल्ववृक्ष के नीचे लक्ष्मीजी ने तपस्या की थी । -आथ.; [पृ. 146] ।

(3) वनस्पतिः बिल्वः वृक्षः अधिजातः – **वनस्पतिः** = जिसको फूल नहीं लगते हैं, परंतु सीधे फल लगते हैं, उसको वनस्पति कहते हैं, जब कि वृक्ष में पुष्प और पुष्प से फल उत्पन्न होते हैं। [अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः - मनु.-1-47; पृ. 15] विद्या., [आथ. पृ. 146] । **बिल्वः वृक्षः अधिजातः** - आपकी तपस्या के कारण, आप के हाथ में से बिल्ववृक्ष का जन्म हुआ - विद्या.; नथु.; (बिल्वो लक्ष्म्याः करेऽभवत् इति वामनपुराणात्) - विद्या. । आप की तपस्या के लिए, आप के निवास योग्य बिल्व वृक्ष उत्पन्न हुआ - पृथ्वी.,। [बिल्वारण्यं त्वत्तपसे जातम् इति] - सारस्वत.; [आथ.; पृ. 145] । लक्ष्मीजी ने अपने हाथों से इस वृक्ष को बोया है और उसके नीचे तपस्या की है - आथ. [पृ. 146] ।

[**वसु.** – यहाँ वृक्ष का अर्थ द्रुम प्रतीत होता है, अर्थात् 'यह छोटा पौधा नहीं है । वनस्पतिशास्त्री इसका अधिक विश्लेषण कर सकता है ।] हे देवी ब्रह्मविद्या ! संसार रूप वन में 'श्रेष्ठ शुभेच्छा-रूप वृक्ष' आपके स्वरूप से प्रकट हुआ प्रतीत होता है-नथु. । **बिल्व वृक्ष** - स्कंद-पुराणगत सनत्कुमार-संहिता के अनुसार श्री महाविष्णु ने जगत के रक्षणार्थ तपस्या की । उनके साथ महालक्ष्मी भी तपस्या करने लगीं। तब लक्ष्मीजी के दाहिने हाथ से बिल्ववृक्ष उत्पन्न हुआ, जो लक्ष्मी को प्रिय हो गया । इस के पत्रों से महाविष्णु ने शंकर की पूजा करके उन्हें प्रसन्न किया। तब शंकर ने महाविष्णु को सर्व देवों में श्रेष्ठता, सर्व (प्रकार की) स्वतंत्रता, सर्वपूज्यता एवं सर्व सिद्धियाँ दीं । लक्ष्मीजी की तपस्या के प्रभाव से बिल्वफल ज्ञान एवं संपत्ति देते हैं और अलक्ष्मी एवं दारिद्र्य नष्ट करते हैं । उपासक बिल्व वृक्ष की पूजा के प्रभाव से भाग्यवान् बनता है । इसका नाम श्रीवृक्ष हुआ, जिसकी पूजा सभी पुण्य क्षेत्रों में होती है - (सनत्कुमारसंहिता - उद्धृत श्री.वि. पृ. 10)] ।

(4) तपसा = (क) अनुग्रह से-विद्या.; नथु. । (ख) आपकी तपस्या के प्रभाव से - पृथ्वी. । (ग) आपकी तपस्या से शक्तिमान बने हुए फल- [सारस्वत]।

(5) तस्य फलानि - उस [बिल्ववृक्ष] के पके हुए छोटे फल - विद्या.; [आथ. पृ. 140]; पुष्प-फल - पृथ्वी. । आपकी तपस्या से शक्तिमान बने हुए फल - सारस्वत. ।

(6) मायांतरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः — इसको दो प्रकार से समझाया गया है, जैसे कि, - (क) माया अन्तरा । अन्तरा = भीतरी [अन्तरिन्द्रिय से संबंधित] । माया = अज्ञान एवं उसके कार्यजात । च = और । बाह्य = बाहर की [बाहर की इन्द्रियों से संबंधित] । याः - जो । अलक्ष्मीः = अलक्ष्मियाँ (दरिद्रता आदि) - विद्या., नथु. । [हैं, उन्हें] (ख) मा = मेरे आश्रित - पृथ्वी.; । मुझ में स्थित - सारस्वत.; । या अन्तरा अलक्ष्मीः । याः च=और जो । बाह्या = बाहर की । अलक्ष्मीः = अलक्ष्मियाँ। ताः = वे - पृथ्वी.

(7) नुदन्तु = [उनका] निवारण करें । (अलक्ष्मी को) दूर करनेवाले बनें ।

अर्थ — हे सूर्य-सी तेजस्विनी लक्ष्मी माता ! आपकी तपस्या के द्वारा, आपके हाथ से आपके निवासयोग्य बिल्व वृक्ष उत्पन्न हुआ है । उस वृक्ष के फल, आपके अनुग्रह से मेरे भीतरी अज्ञान एवं उसके कार्यजात और बाह्य (दारिद्र्य आदि) अलक्ष्मियों को दूर करें ।

[7]

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥

पाठभेद - (1) भूतोऽस्मि राष्ट्रे; भूतो सुराष्ट्रे-का. (2) कीर्तिमृद्धिं, कीर्तिं वृद्धिं, (3) 'कीर्तिं वृद्धिं ददातु' की जगह 'श्रीः श्रद्धां दधातु' ऐसा भी पाठ है - का. । लक्ष्मी तंत्र में 'ऋद्धिं' पाठ है - 50-147 । [सुराष्ट्रे; वृद्धिं - संभा.]

(1) देवसखः - (क) देव का मित्र कुबेर [देवस्य सखा] । देव = महादेव, उनका मित्र कुबेर है - विद्या.; पृथ्वी.; आंडवल्ली; नथु.; (आथ. - पृ. 154) । आथवलेजी का कहना है कि, सभी धनवानों को कुबेर नहीं कहा जाता, परंतु जो धनवान व्यक्ति देव का सखा हो, उसे ही कुबेर कहते हैं । समान स्थितिवालों

में ही मित्रता बनी रहती है। इस लिए धनवान को भी भगवान की तरह तेजस्वी, ज्ञानमय, एवं प्रेममय जीवन पसंद होना चाहिए। उसका मन परिपूर्ण बना रहे, किसी भी प्रकार की कमी महसूस न करे। उसमें अपने और पराये को समझने की बुद्धि होना आवश्यक है - आथ.; पृ. [154-55]। ईशान-संहिता के अनुसार कुबेर ने तपस्या करके शंकर को प्रसन्न किया। शंकर के खातिर देवी महालक्ष्मी कुबेर के वश में रहीं। इस लिए लक्ष्मीप्रदान के अधिकारी कुबेर हैं। भगवती लक्ष्मीजी जिस के उपर कृपा करती है, उसके पीछे पीछे कुबेर भागते रहते हैं - आंडवल्ली। (ख) देव का मित्र वायु है - लक्ष्मी. - [50-143]।

(2) कीर्तिः च - (क) यश - पृथ्वी; विद्या.; दिगंत यश - [आथ. -पृ. 161], (ख) कीर्ति की अभिमानी देवता = [दक्ष कन्या] - विद्या.। कीर्ति लक्ष्मी की दासी है - आंडवल्ली। [कीर्तिर्मतिर्द्युतिः पुष्टिस्समृद्धिस्तुष्टिरेव च। श्रुतिः स्मृतिर्बलं मेधा श्रद्धारोग्यजयादिकाः॥ देवताशक्तयः सर्वास्तत्तद्देवांशगा नृप। महालक्ष्मीमुपासन्ते तस्याः किंकर्य एव ता' इति भार्गवसंहिता-वचनात् - आंडवल्ली।) (ग) लक्ष्मीतंत्र के अनुसार किरणों को लोक में बिखेरनेवाली, कृ विक्षेपे, तुदादि धातु से] - (घ) देवसखा वायु और मूलाधारस्थ वह्नि [मणिना] के द्वारा लक्ष्मीजी वहाँ से लेकर बारह कमलों के पत्रों में थोडा थोडा विश्राम करती हुई, आखिर द्वादशान्त कमल में पहुँच जाती है। अतः योगज्ञ मुनिगण ने उनकी कीर्ति गायी है। (ङ) **ॐ कीर्त्यै नमः**। यह पंचाक्षर मंत्र योग को निर्मल बनाता है, अर्थात् योगगत विघ्नों को दूर करके योग में प्रगति कराता है - लक्ष्मी. - [50-143 से 145]।

(3) मणिना सह - (क) चिन्तामणि के साथ - विद्या., पृथ्वी., आंडवल्ली, नथु.। वह लक्ष्मीजी का अंश है और क्षीरसागर से उत्पन्न हुआ है - आंडवल्ली। (ख) कोशाध्यक्ष मणिभद्र के साथ - विद्या.। (ग) मूलाधारगत आधारवह्नि - लक्ष्मी. - [50-143], (घ) सद्गुरुभक्तिरूप चिन्तामणि अथवा ब्रह्मध्यानरूप चिन्तामणि - नथु.।

(4) माम् उपैतु - मेरे पास = (माम्)। आएँ = (उपैतु) अर्थात् मुझे मिलें।

(5) अस्मिन् राष्ट्रे प्रादुर्भूतः अस्मि - इस = (अस्मिन्)। राष्ट्रे = (क)

जनपद में - विद्या.; (ख) मृत्युलोक में - पृथ्वी., नथु., (ग) श्री आथवलेजी ने 'प्रादुर्भूतो सुराष्ट्रेऽस्मिन्' पाठ का स्वीकार किया है। इस अच्छे राष्ट्र में मेरा जन्म हुआ है। इन शब्दों में राष्ट्रप्रेम एवं राष्ट्रभक्ति हैं। यहाँ जो जो मांगें की गई हैं, वे सभी राष्ट्र के लिए हैं - आथ. (पृ. 155-72)। प्रादुर्भूतः अस्मि - उत्पन्न हुआ हूँ।

(6) मे = मुझे। [सः = वह कुबेर - विद्या., पृथ्वी.।]

(7) कीर्तिम् = कीर्ति। (इसके विविध अर्थ पहले (पूर्व) दिये गए हैं।)

(8) ऋद्धिम् - (क) सर्व वस्तुओं की समृद्धि - विद्या., नथु.,। भाग्यसमृद्धि - आथ. (पृ. 153)। आठों ऐश्वर्यों की समृद्धि - पृथ्वी.। (ख) ऋद्धि की जो अभिमानी देवी है, वह महालक्ष्मी की दासी है - आंडवल्ली। आथवलेजी कहते हैं कि, ऋद्धि में सात गुण हैं - (1) सत्य = (प्रामाणिकता), (2) ऋत = (सरलता में निष्ठा), (3) उग्रता =(वीरता, शौर्य, धैर्य), (4) दीक्षा = (सावधानी, अशिथिल कर्तव्य, काबिलेपन), (5) तप = (सहनशीलता), (6) ब्रह्म = (ज्ञान) और (7) यज्ञ = (श्रेष्ठों का आदर) - (आथ. - पृ. 161-64)। (ग) अंत:करण के सत्त्वगुण की वृद्धि करने की सामग्री - नथु.।

(घ) लक्ष्मीतंत्र में ऋद्धि का अर्थ वृद्धि करके उसे विभिन्न परिप्रेक्ष्य में समझाया है - (1) लक्ष्मीजी ने स्वयं भगवान् विष्णु के गुणों से वृद्धि प्राप्त की है। (2) (सुषुम्णा स्थित कमलों के पत्रों में) उत्तरोत्तर विस्तृत बनती जाती है। इसलिए योगियों ने उसे ऋद्धि कहा हैं। (3) योगीजनों को सम्मान देती है। (अर्घ्, भ्वादि-आप्टे.डिक्ष.) (ङ) ॐ **ऋद्ध्यै नमः**। इस मंत्र से योग मार्ग की स्पष्टता एवं योगमार्ग में वृद्धि होती है - लक्ष्मी.-(50-146 से 47 पृ. 635)।

(9) ददातु = दें।

अर्थ - कुबेर और कीर्ति, चिन्तामणि के साथ मेरे पास आए (अर्थात् मुझे मिलें)। मैं इस राष्ट्र में उत्पन्न हुआ हूँ। वे (कुबेर) मुझे कीर्ति और ऋद्धि दें।

[8]

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥

पाठभेद – (1) क्षुत्पिपासामलां - विद्या., का., । क्षुत्पिपासामला - ज्येष्ठामलक्ष्मीं ऋग्. - का., । क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीर् - का.। क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठा अलक्ष्मीर् - का., श्रीविद्या., सं.भा.। क्षुत्पिपासामलं ज्येष्ठामलक्ष्मीर् - का. (2) गृहात् इत्यस्य स्थाने पाप्मानं - तै. आ.,-का. ।

(1) क्षुत्पिपासामलाम् - (क) भूख-प्यास की तृष्णा से मलिन - विद्या.,। (ख) भूख-प्यास से मलिन (अर्थात् कृश शरीरवाली) - पृथ्वी., नथु., । (ग) मृत्युलोक एवं स्वर्गलोक के विषयों की तृष्णा से दुर्बल - नथु. । (घ) आथवलेजी का कहना है कि, अगली ऋचा में अपने अच्छे राष्ट्र के लिए कीर्ति एवं ऋद्धि की माँग की गई है, जब कि इस ऋचा में ऐसी माँग है कि, केवल मेरे घर से ही नहीं, अपि तु मेरे राष्ट्र से भी वह अलक्ष्मी दूर हो जाए - आथ. (पृ. 174) । वे विविध भूखों को समझाते हुए कहते हैं कि, भूख अनेक प्रकार की है, जैसे कि, सत्ता की, संपत्ति की, कीर्ति की, स्त्री की आदि। इन भूखों का कोई अन्त ही नहीं । वे बढती ही रहती हैं, रुकती ही नहीं । अंत में दुष्परिणाम ही आता है । जैसे कीर्ति की भूख में ऐसा होता है कि, पहले 'मेरा घर मेरा कहना माने' ऐसी भूख जगती है, वह आगे बढकर मेरा मुहल्ला, फिर मेरा गाँव, मेरा प्रदेश, मेरा राज्य, मेरा देश मेरे नियंत्रण में रहे । अन्त में पूरा जगत मेरा कहना माने ऐसी (भूख) जगती है। इस प्रकार का अमर्यादित भूखवाला मनुष्य स्वयं मरता है और दूसरों को भी मारता है । भूख से भीख का निर्माण होता है, जैसे कि सत्ता का भूखा मनुष्य वोट लेने के लिए घर घर याचना (भीख) करता रहता है । इस प्रकार विभिन्न प्रकार की भूखों से मनुष्य लाचार बन जाता है ।

क्षुत्पिपासा अमला - (आथ. कहते है कि,) यदि इन भूखों को निर्मल (अमला) बनाया जाए तो भूखों का रूप बदल जाता है, तब सद्गुणों की, भगवान से आत्मीयता की, भगवत्प्राप्ति की, भक्ति (शरणागति) की, आदि निर्मल (अमला) भूखें जगती हैं । आखिर में भगवान के अलावा कुछ नहीं चाहिए, ऐसी भूख जगकर साधक को केवलाद्वैत की स्थिति में पहुँचा देती है।

इसलिए क्षुत्पिपासा को अमला बनाना आवश्यक है - आथ. (पृ. 179 से 88) ।

(2) ज्येष्ठाम् - पहले उत्पन्न होने के कारण वह बडी बहन है - विद्या., पृथ्वी., (आथ. पृ. 174) ।

(3) अलक्ष्मीम् - (क) = अलक्ष्मी को - विद्या., पृथ्वी.,। अभाव, अज्ञान, अशक्ति, अकर्मण्यावस्था - आथ. (पृ. 178)। आसुरी संपत्ति - नथु.। भगवान से अलग रहने की अवस्था - आथ. पृ. 185 । (ख) समुद्रमंथन के समय सर्वप्रथम उत्पन्न हुए विष जैसी - नथु. ।

(4) अहं नाशयामि - (क) मैं नष्ट करता हूँ - विद्या., पृथ्वी । (ख) उद्यम आदि द्वारा दूर करता हूँ। दैवी संपत्ति से हटाता हूँ - नथु. । इसको हटाने की प्रक्रिया में प्रार्थना के साथ अपना सन्निष्ठ प्रयास भी अनिवार्य है - आथ. (पृ. 183) ।

(5) (हे श्रीदेवी) मे गृहात् = मेरे घर से - विद्या., पृथ्वी. ।

(6) अभूतिम् - जहाँ संपत्ति नहीं हो-विद्या. । जहाँ ऐश्वर्य न हो - पृथ्वी., अर्थात् अनैश्वर्य नथु.। असंतोष - नथु., (आथ. पृ. 188; 193) ।

(7) सर्वाम् असमृद्धिम् - (क) जहाँ किसी भी प्रकार की अभिवृद्धि नहीं है - विद्या.। सभी प्रकार के भोग्य पदार्थों की वृद्धि नहीं हो, उसे - पृथ्वी. (ख) अनुकूलता - वृद्धि का अभाव - नथु., (ग) अतृप्ति को - आथ. (पृ. 188; 193) ।

(8) निर्णुद = दूर करें - विद्या., पृथ्वी.। दूर करने की कृपा करें - नथु.। बिना बिचार, और बिना विवेक (उस अलक्ष्मी को) उठाकर फेंक दें - आथ. (पृ. 174) ।

अलक्ष्मी की पौराणिक कथा - बडी बहन अलक्ष्मी का जब तक ब्याह न हो, तब तक छोटी बहन लक्ष्मी का ब्याह हो सकता नहीं । इस लिए भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी को पाने के लिए अलक्ष्मी का ब्याह ऋषि उद्दालक के साथ किया । उद्दालक के घर अलक्ष्मी के आने के साथ साथ मदिरा, जुआ, कलह, कर्कशता, कठोरता, आदि अनेक दुर्गुण आ गए । तब ऋषि बहुत दुःखी हो

गए। आखिर एक दिन उन्होंने अपनी पत्नी अलक्ष्मी को पीपल (अश्वत्थ) के नीचे छोड दिया और स्वयं तपस्या करने के लिए चल पडे। पति के चले जाने से अति दुःखी अलक्ष्मी कल्पांत करने लगी। उसे देखकर व्यथित लक्ष्मी ने भगवान् विष्णु को बिनती की। फिर लक्ष्मी एवं नारायण दोनों हर शनिवार के दिन पीपल के नीचे अलक्ष्मी को मिलने के लिए आने लगे। अतः शनिवार के दिन पीपल की पूजा करने से लक्ष्मीजी प्रसन्न होकर वैभव देती है - आथ. (पृ. 174-75)। [**वसु.** — पीपल का पूजन, प्रदक्षिणा आदि करते समय स्त्रियाँ उसे स्पर्श न करें। लक्ष्मीतंत्र में इस ऋचा में कोई भी नाममंत्र (लक्ष्मीजी के) नहीं हैं।]

अर्थ — भूख प्यास से मलिन बडी बहन अलक्ष्मी को मैं नष्ट करता हूँ। (हे लक्ष्मी देवी, आप) सर्व असंपत्ति और असमृद्धि को मेरे घर से उठाकर फेंक दें।

[9]

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥

पाठभेद - पाठभेद नहीं है।

[**वसु.** - गन्धद्वारां आदि सभी विशेषण लक्ष्मीजी के हैं, लेकिन आथवलेजी के मतानुसार ये विशेषण पृथ्वी के हैं - (आथ. पृ. 194)]।

(1) गन्धद्वाराम् - (क) गन्ध = गन्ध गुण के। द्वाराम् = लक्षणवाली (गन्धः द्वारं लक्षणं यस्याः)-विद्या.; नथु.। सभी प्रकार की पुण्य-गन्धों की (पवित्र सुगन्धों) की द्वारभूता - लक्ष्मी. -(50-148)। (ख) पृथ्वी आदि पाँच महाभूतों के गन्ध, (रस, रूप, स्पर्श और शब्द) रूप द्वारों से ज्ञात होनेवाली। (ग) ॐ **गन्धद्वारायै नमः**। (यह मंत्र अष्टाक्षर है।) - लक्ष्मी. (50-148 से 49)।

(2) दुराधर्षाम् = (क) अपराजेय - विद्या., नथु.। सभी दैत्य, दानव, एवं राक्षसों के लिए वह दुराधर्षा है - लक्ष्मी. (50-149)। जिसे रोका नहीं जाता ऐसी लक्ष्मी - आथ. (पृ. 196)। दुःसह - पृथ्वी.। (ख) शुद्ध संवित् एवं क्रिया-रूपा नारायणी का बाध कोई भी न कर सके, ऐसी वह अबाधित है। (ग) और उसके ज्ञातृत्व एवं कर्तृत्व का अपनयन कोई भी नहीं कर सकता ऐसी - लक्ष्मी. (50-150 से 51)। (घ) प्रयत्न करने पर भी जिसे नहीं खींचा

जा सके, साथ में नहीं ले जाया सके; ऐसी - पृथ्वी, (आथ., पृ. 196-97)। आथवलेजी का कहना है कि, पृथ्वी के परमाणु संग्राहक, प्रेरक एवं वाचक हैं। पृथ्वी प्राणियों की ओर प्रेमपूर्ण निगाहें डालती रहती है । ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार प्राणियों में पारस्परिक आत्यन्तिक प्रेम को देखकर पृथ्वी का आन्तरिक दाह शान्त होता है - आथ. (पृ. 199-201) । (ङ) **ॐ दुराधर्षायै नमः** । यह अष्टाक्षर मंत्र तमोगति को दूर करता है - लक्ष्मी. - (50-153; पृ. 636) ।

(3) नित्यपुष्टाम् - (क) हमेशा सस्य आदि से समृद्ध (पुष्टां)-विद्या., पृथ्वी.। अन्न आदि से समृद्ध - नथु.। सर्व जीवों की पोषक सामग्री से युक्त - नथु. । (ख) आथवलेजी कहते हैं कि, यह पृथ्वी सभी प्राणियों को सदा पुष्ट करती है । वह सभी प्रकार की पुष्टि देती है, जैसे कि अन्न की, भाव की, बुद्धि की आदि । पृथ्वी की कृपा से मानव आनंदी एवं नित्यपुष्ट रह सकता है । अपने जीवन के दृष्टिकोण को बदलकर, अपने कर्तृत्व को काम में लगाने से नित्यपुष्टि मिलती है । पृथ्वी सभी को धारण करती है, इसलिए उसे धरित्री कहते हैं । पृथ्वी के प्रति माता जैसा भाव एवं आदर होना आवश्यक है । वर्तमान-कालिक औद्योगिक सभ्यता के कारण धरित्री का संबंध अत्यल्प हो गया है, इसलिए जीवन पुष्ट नहीं हो पाता । जिस खेत में यंत्रों से काम लिया जाता है, उसमें पाक कम मिलता है, जबकि जिस खेत में मानवी अपने हाथों से काम करता है; प्रेम रखता है; उसमें फसल अधिक मिलती हैं, उतना ही नहीं वह स्वादिष्ट भी होती है । योग्य रीति से यदि धरित्री एवं लक्ष्मी को समझा जाए तो नित्यपुष्टि मिलती है, परंतु यदि भगवान की विस्मृति हो जाए तो नित्यपृष्टि चली जाती है । गोमांस खानेवाले को नित्यपुष्टि नहीं मिलती - (आथ. पृ. 201 से 12) । (ग) लक्ष्मीतंत्र में चार अर्थ दिये हैं-(1) नित्य (शाश्वत) विष्णु से पुष्ट होनेवाली । (2) सद्गुणों से पुष्ट । (3) जिसका संवित्रूप-परशरीर विषयों के बिना ही पुष्ट होता है, ऐसी । (4) जिसकी संवित् अपनी चेतनाओं से जड विषयों को पुष्ट करती है, ऐसी । (घ) **ॐ नित्यपुष्टायै नमः** । यह अष्टाक्षर मंत्र उपासक की संवित् को पुष्ट करता है - (लक्ष्मी. - 50-154 से 56) ।

(4) करीषिणीम् - करीष = गाय के गोबर के सुखे कण्डे । (क) करीषिणीम् = सुखे कण्डों से युक्त, अर्थात् गाय, अश्व आदि बहुत पशुओं से समृद्ध -

विद्या., पृथ्वी., नथु.। (ख) मोक्षोपयोगी विवेक आदि सामग्रियों के समूहवाली – नथु. । (ग) ऋषि का कहना है कि, जिस पृथ्वी में गायों का सुखा गोबर बहुत प्रमाण में मिलता हो, ऐसी पृथ्वी मुझे चाहिए । यहाँ पशुसंपत्ति की माँग है – आथ. (पृ. 211-12) । (घ) लक्ष्मीतंत्र में भिन्न प्रकार के अर्थघटन हैं – (1) करी + इषिणी । करी = कर्ता, (कृ धातु से निष्पन्न)जो कर्ता मन, वाणी एवं कर्म में शुद्ध हो और यज्ञ, अध्ययन एवं दान में (सदा) तत्पर हो, ऐसे निर्मल कर्ताओं को, इषिणी = देखने की इच्छावाली (2) करिन् = हाथी। इषिणी = (इष् गतौ धातु से निष्पन्न) । हाथियों के उपर बैठकर गमन करनेवाली। ये हाथी हिमालय जैसे बडे बडे हैं । (3) (सृष्टि का) सर्जन करनेवाली – (कृ करणे धातु से) । (4) (सृष्टि का) अन्त करनेवाली । (कृ हिंसायाम् धातु से निष्पन्न) । (ङ) **ॐ करीषिण्यै नमः** । यह सप्ताक्षर मंत्र सर्व कामनाओं को समृद्ध करता है – लक्ष्मी. – (50-156 से 59) ।

(5) सर्वभूतानाम् ईश्वरीम् – (क) सर्व भूतों की स्वामिनी (ईश्वरी) – लक्ष्मी.। नियामिका अर्थात् स्वामिनी – पृथ्वी., नथु.,। (ख) सर्व प्राणियों की अधिष्ठाता – विद्या.। ईश्वरी के दो अर्थ हैं – समर्थ और अतिसुंदर । ऋषि का कहना है कि, मेरे घर आनेवाली लक्ष्मी सुंदर भी होनी चाहिए और वह नियंत्रण करने की शक्तियुक्त भी होनी चाहिए, जिससे कोई भी उसे परेशान न कर सके– आथ. (पृ. 212) । (ग) लक्ष्मीतंत्र में अन्य अर्थ भी दिये हैं – (1) ईश + वर = जो अपने प्रिय ईश (विष्णु) के साथ में रहती हुई, वरदान (=वर) देती है, ऐसी । (2) ईश + व = जो सर्वभुवनों की स्वामिनी (ईशाना) है और आदरणीय (वनिता) है, ऐसी । (3) (श् = विनाशक ।) पापों का विनाश करनेवाली (क्षपणी) । वर = अपनी एवं दूसरों की भी वृद्धि करनेवाली । (घ) **ॐ ईश्वर्यै नमः** । यह षडक्षर मंत्र सभी ऐश्वर्य एवं समृद्धि का प्रदाता है– लक्ष्मी. (50-159 से 61) ।

(6) तां श्रियम् = ऐसी उस लक्ष्मीजी को ।

(7) इह = (क) इस लोक में – विद्या., । (ख) इस प्रदेश में – पृथ्वी. । (ग) मेरे पास – नथु., (आथ. पृ. 211-12) ।

(8) उपह्वये = मेरे समीप आवाहन करता हूँ – विद्या. नथु. । मेरे समीप वापस आइए, ऐसा आह्वान करता हूँ – पृथ्वी. ।

अर्थ - सुगन्धित, अपराजेय, नित्यसमृद्ध, गाय-अश्वादि बहुत पशुओं से समृद्ध और सभी भूतों की स्वामिनी लक्ष्मीजी को मैं यहाँ बुलाता हूँ ।

[10]

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥

पाठभेद - (1) माकूतिं, माकूतं - का. । (2) मन्नस्य, मन्नं च; - का. । मन्यस्य सं.भा; का. । (मन्नस्य - वा. सं.) ।

[**वसु.** - (क) इस ऋचा से मिलती जुलती कण्डिका वाजसनेय संहिता में (39-4) है - **मनसः काममाकूतिं व्वाचः सत्त्यमशीय । पशूना गुं रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयताम्मयि स्वाहा ॥** प्रवर्ग्यभेद के प्रायश्चित्तहोम की पूर्णाहुति का यह अन्तिम मंत्र है । (ख) उवट और महीधरभाष्य के अर्थ भी यहाँ दिये गए हैं (ग) गुं का टाइप नहीं मिला ।]

(1) मनसः कामम् - मनसः = मन का । कामम् = काम, कामना । (क) मनोरथ - विद्या. नथु. । महामनोरथ - पृथ्वी. । (ख) ब्रह्मप्राप्ति-रूप मनोरथ -नथु. । कामप्राप्ति - उवट; । अभिलाषा - महीधर । (ग) लक्ष्मीतंत्रानुसार भूमि, अन्तरिक्ष एवं दिव्यलोकगत काम और अन्य अप्राकृत काम ये सभी सदा आनन्दमय हैं, वे सभी महालक्ष्मी में आश्रय लेते हैं । (घ) सभी मनोरथों की विश्रमस्थली महालक्ष्मी है । (ङ) भगवान विष्णु के मन का काम स्वयं महालक्ष्मी है । (च) **ॐ मनसः कामाय नमः** । यह नवाक्षर मंत्र सर्व कामनाओं की समृद्धि देता है - लक्ष्मी. - (50-162 से 64; पृ. 638-39) । (छ) आथवलेजी कहते हैं कि, आदिम शक्ति के पास ऋषि माँगते हैं, कि हे महालक्ष्मी ! तेरे प्रभाव से मेरे मन के मनोरथ दिव्य एवं भव्य बनें । मनुष्य-जीवन में मन का असाधारण स्थान है । इसलिए मन को शक्तिमान, सुसंस्कारी, तेजस्वी, स्थिर, दैवी और समाधानपूर्ण बनाना आवश्यक है । मन की पुष्टि के लिए कभी भी उपेक्षा नहीं रखनी चाहिए । मन का सामर्थ्य अद्भुत है । जन्म-जन्मान्तरीय संस्कारों का अक्षय स्मृतिभंडार ही मन है । मनोरथ और संकल्पों के उपर जीवनलक्ष्मी का प्रभाव है । संकल्प एवं मनोरथों से मानवजीवन बनता है । इस लिए देवों और ऋषियों की पसंद के मनोरथ करने चाहिए । जीवन का पचहत्तर प्रतिशत हिस्सा मन के द्वारा चलता है - (आथ.-पृ. 213-17) ।

(2) आकूतिम् - (क) संतोष - पृथ्वी., (ख) प्रयत्न - महीधर । (ग) आकवनमिति उवटः । (घ) संकल्प - विद्या.। शुभ संकल्प - नथु., । मोक्षप्राप्ति का निश्चय - नथु । श्री आथवलेजी का कहना है कि 'ऐसा होना ही चाहिए' ऐसी वृत्ति को संकल्प कहते हैं । इस जीवन को एवं मरणोत्तर जीवनयापन को तैयार करने की ताकत संकल्प में है । वे (संकल्प) मनुष्य को परलोक में ले जाते हैं । जो मनुष्य चार्वाक पद्धति (खाओ, पीओ, मजा करो) के अनुसार जीवनयापन करता है, उसे मरने के बाद वैसा ही पशुजीवन मिलता है, (और जो दैवीजीवन जीता है, उसे दिव्य पुनर्जन्म मिलता है ।) इस तरह मनुष्य के संस्कार, दृढविचार और संकल्प के अनुसार पुनर्जन्म मिलता है । वासना स्वयं महाशक्ति है । यह शक्ति ही मनोरथ एवं संकल्प है - (आथ - पृ. 215-17)।

वाचः आकूतिम् - लक्ष्मीतंत्र में 'वाचः' पद का सम्बन्ध 'आकूति' पद के साथ माना है । वहाँ आकूति का अर्थ अभिप्राय (अभिप्रेत्य) है । आगमजन्य जो लौकिकी, वैदिकी और बाह्य घोष-अघोष वाणी है, उसकी उच्चारण-प्रक्रिया महालक्ष्मी के उद्देश्य से (अभिप्रेत्य) होती है । **ॐ वाच आकूत्यै नमः** । यह अष्टाक्षर मंत्र सर्व शब्दों एवं अर्थों की सिद्धि देता है - लक्ष्मी. -(50-165 से 68; पृ. 639) ।

[**वसु. - शिवसंकल्प** - शुक्लयजु. संहिता में (34-1 से 6] महीधरभाष्य अनुसार श्रोत्र आदि इन्द्रियों का प्रकाशक मन है । वह ज्ञानजनक है । भूत, भविष्य एवं वर्तमानकाल का ज्ञान कर सकता है । वह अमृत, अजर, अविनाशी और अति वेगवान है। तीनों वेद मन में प्रतिष्ठित हैं । मन ही मनुष्यों को चलाता है । वह (मन) केवल कल्याणकारी (शिव) संकल्प करता रहे, ऐसी प्रार्थना प्रत्येक कण्डिका में की गई है । (तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु । शिव = कल्याणकारी, शान्त ।) वर्तमान मनोविज्ञान भी रोग, आरोग्य, सुख, दुःख के मूल में मन के असर को मानता है ।]

(3) वाचः सत्यम् - (विद्यारण्य आदि ने '**वाचः**' पद का संबंध '**सत्य**' पद के साथ माना है ।) (क) वाणी की यथार्थता - विद्या., पृथ्वी., नथु. । वाणी का सत्य - महीधर; (आथ.-पृ. 217) । प्रामाणिक वाणी - आथ. (पृ. 219)। (ख) ब्रह्मस्मरण-रूप यथार्थता - नथु. । (ग) आथवलेजी का

कहना है कि, मन के उपर विचारों का गहरा असर रहता है । इसके कारण कुविचारों से मन का अधःपतन और सुविचारों की स्थिरता से मन का ऊर्ध्वीकरण होता है । **वाचः** = वाणी । आत्मा एवं बुद्धि दोनों मिलकर विवक्षा (बोलने की इच्छा) को मन की तरफ भेज देते हैं । तब मन कायाग्नि के उपर आघात करता है । वह (कायाग्नि) वायु को प्रेरणा देता है । तब वायु वक्षःस्थल से निकलता हुआ ध्वनि को बाहर फेंकता है । ऋषि की प्रार्थना है कि, मेरे मनोरथ, संकल्प एवं वाणी प्रामाणिक रहें - आथ. (पृ. 217-18, और 222) । (घ) वाणी का सत्य । सत्य अर्थात् मुझे यज्ञ करना चाहिए आदि; - उवट । [**वसु.**-अर्थात् शास्त्रसम्मत अनिवार्य कर्तव्य कर्म 'इज्या-अध्ययन-दानानि' आदि ।]

सत्य - लक्ष्मीतंत्र में सत्य शब्द के दो भाग बताए हैं - सत् + त्य । जिस प्रमाण के द्वारा जगत् सत् (सत्तायुक्त) और त्य (स्वयं सिद्ध), ऐसे दो हिस्सों में दीखता है, वह सब महालक्ष्मी है । **ॐ सत्याय नमः** । यह षडक्षर मंत्र सर्व सत्यों का फल देता है - (लक्ष्मी. - (50-168 से 69; पृ. 639-40) ।

(4) पशूनां रूपम् - (क) पशुओं का रूप दूध आदि हैं - विद्या. । (ख) हाथी, घोडे, गाय, भैंस आदि पशुओं की अधिकता - पृथ्वी., । गाय आदि पशुओं का समूह - नथु. । (ग) मोक्षोपयोगी विवेक आदि सामग्री का समूह - नथु. (घ) रूपवान पशु । (ङ) रूप आत्मीयता में है । मैं सभी पशुओं के साथ आत्मीयता रख सकूँ, ऐसी दिव्य एवं भव्य विचारधारा (मुझे मिले) - आथ. (पृ. 222) । (च) लक्ष्मीतंत्र के अनुसार पशु = जीव । जीवों (पशुओं) का जो चैतन्य है, वही रूप है, और वह रूप चिद्घनानन्दमयी लक्ष्मी है । वे जीव लक्ष्मी की शक्ति के अंश होने के कारण उन्हें चिच्छक्ति कहते हैं (छ) सांख्य मत में लक्ष्मी की आग्नेयी शक्ति को 'पशूनां रूपं' कहा है । (ज) **ॐ पशूनां रूपाय नमः** । यह नवाक्षर मंत्र सम्यक् ज्ञान देता है-लक्ष्मी. 50-170 से 73; पृ. 640) । (झ) पशु संबंधी शोभा-महीधर । पशुओं का उपकार (पशूपकारः) इति उवटः ।

(5) अन्नस्य रूपम् - (क) भोजन करने योग्य धान आदि का रूप अर्थात् भक्ष्य, भोज्य आदि - विद्या., पृथ्वी., । भक्ष्य, भोज्य आदि अन्न का समूह - नथु. । भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य इन चारों प्रकार का अन्न-आथ. (पृ. 222) । [**वसु.** - कुल्लूकभट्ट ने स्पष्टता की है कि लड्डु आदि भक्ष्य

हैं और पायस आदि भोज्य हैं – (भक्ष्यं स्वरविशदम् अभ्यवहरणीयं मोदकादि, भोज्यं पायसादिनानाप्रकारफलमूलानि–कुल्लूकटीका–मनु. 3-227, पृ. 120) । चोष्य, लेह्य स्वयं स्पष्ट है, जैसे कि जिसे चूसते हुए खाया जाए वे – (आम, गन्ना आदि) चोष्य हैं । जिसे जिह्वा द्वारा चाटते हुए खाया जाए, वह लेह्य है – (जैसे च्यवनप्राश, शहद, चटनी आदि ।) गदाधर ने इन चारों के अलावा पेय को भी पाँचवे प्रकार के रूप में बताया है –अन्नं भक्ष्य–भोज्य–लेह्य–चोष्य–पेयात्मकं पंचविधमिति – पा.गृ. श्राद्धसूत्रे तृतीयकण्डिकायां गदाधरभाष्ये – पृ. 419; (ख) ज्ञान के (श्रवण आदि) साधनों का समूह–नथु. । (ग) अन्नस्य यशः – लक्ष्मीतंत्र में 'अन्नस्य' पद को 'यश' के साथ जोडा है। (1) अन्न दो प्रकार का है – त्रैगुण्य और षाड्गुण्य । बद्धजीवों का अन्न त्रैगुण्य है, जबकि मुक्त जीवों का अन्न षाड्गुण्य है । इन दोनों प्रकार के अन्नों का उत्तम रूप यश है, वह यश स्वयं महालक्ष्मी है। (2) महालक्ष्मी की सोम (भोग्य) शक्ति से प्राकृत एवं अप्राकृत भोग वृद्धिगंत होते हैं। उस उत्पन्न सोमशक्ति को अन्न का यश कहा है। (घ) **ॐ अन्नस्य यशसे नमः** । यह नवाक्षर मंत्र सब प्रकार के भोगों को देता है – लक्ष्मी. (50-173 से 77; पृ. 641) । (ङ) अन्नस्य रसः = अन्न का रस – उवट । (रस=मिठास=स्वादुत्वम् –महीधर) ॥

(6) अशीमहि – (हम) प्राप्त करें – (अशीय=मैं प्राप्त करूँ =(अहं प्राप्नुयाम् – उवट, महीधर ।) विद्या., पृथ्वी., नथु. (आथ. पृ. 217) ।

(7) श्रीः यशः – संपत्ति (श्रीः) । और कीर्ति (यशः) – विद्या. नथु.। कीर्ति–पृथ्वी. । श्रीदेवी मुझे यश दें – आथ. पृ. 222 । देवी संपत् और ज्ञानजन्य निर्मलयश – नथु. ।

(8) मयि श्रयताम् – मुझ में आश्रय करें – विद्या. । मेरे पास स्थिति करें – नथु. । मेरे समीप में रखें – पृथ्वी., ।

अर्थ – मनोरथ, संकल्प, वाणी का सत्य, पशुओं के दूध आदि, (अथवा पशुओं का समूह अथवा पशुओं के साथ आत्मीयता) और (पंचविध) अन्न हम प्राप्त करें । संपत्ति एवं यश मेरा आश्रय करें । (पृथ्वीधर. के अनुसार – महामनोरथ, संतोष, वाणी की यथार्थता, पशुओं आदि की अधिकता, भक्ष्य भोज्य आदि अन्न और यश, जिसके द्वारा हम प्राप्त कर सकें, ऐसी लक्ष्मीदेवी मेरे समीप में रहें ।)

[11]

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सं भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥

पाठभेद - (1) सं भव; सं भ्रम - का., श्रीविद्या., संभा । (2) मे कुले; मे गृहे ।

(1) कर्दमेन - कर्दम नाम के पुत्र (की प्राप्ति) के कारण - विद्या., पृथ्वी., नथु., (आथ. पृ. 223) ।

(2) प्रजा भूता - (लक्ष्मीजी) सपुत्र बनी - विद्या., (अर्थात् पुत्रवती हुई =प्रजाभूता) पृथ्वी., नथु., (आथ.-पृ. 223) ।

(3) हे कर्दम - इसलिए हे कर्दम ! (हे श्रीपुत्र कर्दम) - विद्या., पृथ्वी., नथु.। आथवलेजी कहते हैं कि, (क) कर्दम भगवती लक्ष्मी का सुपुत्र है । वह शक्तिमान, ज्ञानी, तपस्वी, निष्ठावान् और संपत्तिवान हैं । उन पर लक्ष्मीजी का अतिशय स्नेह है । इसलिए माता लक्ष्मीजी उनके पीछे पीछे दौडती चली आती है । क्योंकि जहाँ पुत्र हो वहाँ माता रहती है, ऐसा नियम है । इस ऋचा में ऋषि की माँग है कि, मेरे घर कर्दम जैसा पुत्र होना चाहिए । सुंदर स्त्री का रूप मादक, मोहक, एवं दाहक होता है । उसे देखते ही तमोगुण का आगमन हो जाता है। परंतु यदि उसके आँचल में संतान हो, तो वही सौन्दर्य आदरणीय, वन्दनीय एवं पूजनीय बन जाता है । अति सुन्दर लक्ष्मी के मादक मोहक सौन्दर्य को आदरणीय, पूजनीय बनाने के लिए उसे सुपुत्र कर्दम के साथ अपने घर बुलाया गया है । सपुत्रा लक्ष्मी ही अनपगामिनी (स्थिर) बन सकती है ।

(ख) पुत्र की याचना का दूसरा भी अर्थ है - मानव का जीवन भी लक्ष्मी है । इस जीवनलक्ष्मी के चार पर्व हैं - अर्जनपर्व, भोगपर्व, वितरणपर्व और त्यागपर्व । ब्रह्मचर्याश्रम में बुद्धि (विद्या), शरीरसौष्ठव, आदि की ही प्रप्ति करना है - (अर्जनपर्व) । गृहस्थाश्रम में भोगना है (भोगपर्व) । उपार्जित एवं विकसित बुद्धि = (विद्या), ज्ञान = (कुशलता), अनुभव आदि का वितरण = (दान) और पुत्र में निजी संपत्ति का वितरण वानप्रस्थ में करना है । इसलिए पुत्र की आवश्यकता है (वितरणपर्व) । संन्यासाश्रम में सर्वस्व का त्याग है (त्यागपर्व) - आथ. (पृ. 224-29) ।

(4) मयि = (क) मेरे घर - विद्या., नथु., (आथ.-पृ. 223) । (ख) मेरे पर - पृथ्वी., । मेरे अंतःकरण में - नथु. ।

(5) संभव = (क) निवास करें - विद्या., नथु., (ख) कृपा करें - पथ्वी। (ग) आओ - आथ.-पृ. 223. ।

(6) पद्ममालिनीम् = (क) कमलमाला पहनी हुई - विद्या., पृथ्वी., नथु. । (ख) जिसने दैवीसंपत् के समूह को धारण किया है, ऐसी - नथु. । **(ग)** लक्ष्मीतंत्र के अनुसार-(अ) जो सुषुम्णा के रूप में (सुषुम्णागत) आधारचक्र आदि बत्तीस योगकमलों की माला द्वारा सर्व प्राणियों के शरीरों में व्याप्त है, ऐसी। **सुषुम्णा** = महालक्ष्मी सर्व जीवों की मुक्ति के लिए, सभी प्राणियों के शरीरों में सुषुम्णा के रूप में रहती है । यह सुषुम्णा सर्व नाडीचक्र की नायिका है; वैष्णवी शक्ति है; जिसे मुक्तियान, महायान एवं योगियान कहते हैं, जो जीव के शरीर की गति को भेद कर परम आकाश में व्याप्त है । सभी संकल्प उस सूक्ष्म (वैष्णवी) शक्ति का अवलंबन लेकर स्थित हैं । (आ) जो प्रकृति, पुरुष और सनातन काल (रूप पद्मों) को धारण करती है । **(घ) ॐ पद्ममालिन्यै नमः** । यह अष्टाक्षर मंत्र सर्व कर्मों के फल दिलाता है- लक्ष्मी. -(50-181 से 88; पृ. 642-43) ।

(7) मातरम् - (क) = जननी - विद्या., पृथ्वी., नथु. । (ख) **माता** । सभी का प्रिय एवं हित का चिन्तन करने के अर्थ में वह सर्व भूतों की माता है । (ग) **ॐ मात्रे नमः** । यह पंचाक्षर मंत्र सर्व भोगों की समृद्धि देता है- लक्ष्मी.; (50-180 से 81;) । **(घ)** यद्यपि मातरम् रूप मातृ शब्द का द्वितीया एकवचन है, फिरभी लक्ष्मीतंत्र में **मा** और **तृ** को विभिन्न परिप्रेक्ष्य में समझाया है- (अ) **मा** = (1) वर्ण, कला, तत्त्व, मंत्र, पद और भुवन इन षडध्वों को (22-10;11) अलग अलग बतानेवाली (मिमे) । (2) सर्व मानों से जगत का संहार करनेवाली (मीये - मीङ् हिंसायाम् - दिवादि) । (3) सर्व प्रमाणों में मिति = (ज्ञान) स्वरूप। (4) जिस (लक्ष्मी) के अंदर सब समा जाता है (माति) । (आ) **तृ** - (1) तारनेवाली (तारक = तारयति इति) । अपार भवसागर को पार करानेवाली । (2) सभी प्रकार के दोषों से पार हो जानेवाली। (3) सर्व भूतों में चित्त के रूप में तैरनेवाली । (4) स्वयं मेघ बनकर पानी से समग्र जगत को डुबानेवाली - लक्ष्मी.; (50-177 से 79;) ।

(8) **श्रियम्** = (क) लक्ष्मीजी को - विद्या., पृथ्वी., नथु., । (ख) ब्रह्मविद्या को-नथु. । (ग) जीवनलक्ष्मी को - आथ. -(पृ. 224) ।

(9) **मे कुले** = मेरे वंश में - विद्या., पृथ्वी., नथु. ।

(10) **वासय** = (क) निवास कराएँ - विद्या. नथु. । (ख) प्रतिष्ठा कराएँ - पृथ्वी. ।

अर्थ - (लक्ष्मीजी) स्वयं अपने पुत्र कर्दम के कारण पुत्रवती है । इसलिए हे कर्दम ! आप मेरे घर में निवास करें और (उस) कमलमालावाली माता श्रीदेवी को मेरे वंश में निवास कराएँ ।

[12]

आपः स्रजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥

पाठभेद - (1) स्रजन्तु, स्रवन्तु-ऋग्, । सृजन्ति-श्रीविद्या.। सृजन्तु-विद्या. ।
(2) नी च - संभा. ।

(1) आपः = पानी की अभिमानी देवियाँ - विद्या. ।

(2) स्निग्धानि = स्नेहपूर्ण कार्यों को-विद्या., । सर्व-भोग्यद्रव्य - सूक्तार्थ. । जल देवता मेरे घर स्नेहपूर्ण कार्य और मंगल कार्य करता रहे - (पृ. 230)।

(3) स्रजन्तु = सृजन्तु = उत्पन्न करें - विद्या. । जल एक वैभव है ।, भगवान की शक्ति है । पानी से संपत्ति खिलती है । जलदेवता को नमस्कार करें । 'मेरे घर जल आने दो' ऐसी यहाँ प्रार्थना है - आथ. (पृ. 230-31) । जगत की उत्पत्ति स्थिति एवं लय में जल कारणभूत है, इस अर्थ में जल में सर्जकता है। - आथ. (पृ. 230) ।

(4) हे चिक्लीत - (हे) लक्ष्मीपुत्र चिक्लीत ! - विद्या. । ऋषिने संपत्ति वितरणार्थ एवं स्थैर्यार्थ कर्दम को बुलाया और जल-वैभव के लिए चिक्लीत को बुलाया-आथ. (पृ. 230) । नारायणी के स्तनों से चिक्लीत नाम के काम का जन्म हुआ । वह काम, जल एवं अन्न के विकारभूत चित्त में, काम के रूप में उत्पन्न होता है । काम चित्तजन्य है । वह संसार का हेतु और सर्व अर्थों का साधक है । काम के आघातरहित बने हुए श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ को जब ब्रह्म

की प्राप्ति होती है, तब उसके लिए कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं रहता। धर्म, अर्थ और काम (त्रिवर्ग) स्वरूपा नारायणी की प्राप्ति का संबंध काम के साथ है। लक्ष्मी प्रयत्नसाध्य है और प्रयत्न कामजन्य है। इसलिए चिक्लीत (कामदेव) की आराधना प्रयत्नपूर्वक करके लक्ष्मी को प्राप्त किया जाए, – सूक्तार्थसंग्रह। धर्म अविरुद्ध काम नारायण की विभूति है - (धर्माविरुद्धो कामोऽस्मि - भग. गीता. 7-11)।

(5) मे गृहे = मेरे = (मे)। गृहे = घर में।

(6) निवस = आप निवास करें - विद्या.। मेरे कुल में स्थिर रहो और मेरे चित्त में आपका सान्निध्य रहे - सूक्तार्थ.।

(7) (अपि) च = और

(8) मातरं श्रियं देवीम् = माता लक्ष्मीदेवी को।

(9) मे कुले नि वासय = मेरे कुल में निवास कराओ - विद्या.। सदा निवास कराओ - आथ. (पृ. 230)। हे चिक्लीत, माता लक्ष्मीजी आप के उपर बहुत प्रीति रखती है, आपकी इच्छाओं का अनुसरण करती है। अतः वह आप के पीछे भागती आएगी। इस लिए आप मेरे घर में माता लक्ष्मी का निवास चिरकाल तक कराओ - सूक्तार्थ.।

जल = (जलरूपा नारायणी) - सब से पहले केवल जल ही था। वह हरि का अयन था। हरि की स्वाभाविकी शक्ति नारायणी है। पानी से ही पृथ्वी, तेज (अग्नि), वायु, चंद्र, सूर्य आदि सभी उत्पन्न हुए। इसलिए जल को जीव, जीवरस एवं दिव्य अमृत कहा है। जल शब्द में दो वर्ण हैं - ज = जिससे सर्व उत्पन्न होते हैं। ल = जिस में सर्व विलीन होते हैं। जलगत स्नेह और परमाणु ये दोनों सामग्री जगत् की उत्पत्ति के लिए मिल जाती हैं और इन दोनों की हानि होते ही जगत का प्रलय होता है। इसलिए भोगों की प्राप्ति के लिए जलस्वरूपा नारायणी की प्रार्थना (उपासना) करनी चाहिए - सूक्तार्थ.।

अर्थ - जललक्ष्मी (मेरे घर में) स्नेहपूर्ण कार्यों का सर्जन करे। हे (लक्ष्मीपुत्र) चिक्लीत ! आप मेरे घर में निवास करें और माता लक्ष्मी को मेरे कुल में निवास कराएँ।

[13] और [14] ऋचाएँ

[वसु. — इन दोनां ऋचाओं का पाठ एवं क्रम में भिन्नताएँ हैं, अतः दोनों को साथ में रखा है ।]

[क]

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ (13)

आर्द्रां यःकरिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ (14)

– विद्यारण्य; (आथ. पृ. 232, 237) ।

[वसु. - हमने भी इसी पाठ का स्वीकार किया है । नथुरामजी ने 'यःकरिणी' की जगह 'यष्करिणी' पाठ का स्वीकार किया है ।]

[ख]

ऋग्वेद खिल में ये ऋचाएँ इस तरह हैं-

पक्वां पुष्करिणीं पुष्टां पिंगलां पद्ममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह ॥ (13)

आर्द्रां पुष्करिणीं यष्टीं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह ॥ (14)

[ग]

लक्ष्मीतंत्र (अ. 50) में ऋचाएँ नहीं दी हैं, परंतु नारायणी के श्रीसूक्तगत, 53 नामों को ही विविध अर्थों में समझाया गया है । वहाँ इन दो ऋचाओं में प्राप्त नामों का श्लोक-क्रम इस प्रकार है - यष्टि (श्लो. 192)। पिंगला (194)॥ तुष्टि (196)। सुवर्णा (198)। हेममालिनी (200)। और सूर्या (203) ॥ इस क्रम के आधार से ऐसा अनुमान हो सकता है कि, उनके मत में ये दो ऋचाएँ इस तरह होंगी -

आर्द्रां पुष्करिणीं यष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह ॥ (13)

आर्द्रां पुष्करिणीं तुष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह ॥ (14)

[**वसु.** - (अ) यहाँ द्वितीय ऋचा में '**यःकरिणीं**' और '**पुष्करिणीं**' इन दो पाठान्तरों में से '**पुष्करिणीं**' पाठ इसलिए लिया है, क्योंकि ऋग्वेद खिल में दोनों ऋचाओं में '**पुष्करिणीं**' पाठ है । खिल का '**ममा वह**' पाठ यहाँ लिया है ।]

[घ]

श्रीतत्त्व में दिये गए श्लोकात्मक वर्णन के अनुसार उस कर्ता की दृष्टि में ये दो ऋचाएँ इस तरह होंगी ऐसा अनुमान हो सकता है -

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं सुवर्णां स्वर्णमालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ (13)

आर्द्रां यष्करिणीं यष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ (14)

[ङ]

श्रीविद्यार्णवतंत्र में (श्वास 22, पृ. 132-34) ये ऋचाएँ इस तरह हैं -

आर्द्रां पुष्करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह ॥ (13)

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममा वह ॥ (14)

(पृथ्वी. भाष्य में प्रथम ऋचा में 'पुष्टिं' एवं 'सूर्यां' है, जब कि द्वितीय ऋचा में 'यष्टिं' एवं 'चंद्रां' है । दोनों ऋचाओं में 'म आ वह' पाठ है । उन्होंने 'यष्टिं' की जगह 'इष्टिं' पाठ भी उद्‌धृत किया है - पृथ्वी.)

[च]

शाके 1621 (इ.स. 1699) के चैत्र में शौच गंगाधरपुत्र **भट्ट ऋषि** द्वारा रचित **संस्कार-भास्कर** - (पृ.180) में ये ऋचाएँ इस तरह हैं -

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टीं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥ (13)

आर्द्रां यः करिणीं यष्टीं पिंगलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥ (14)

[13] आर्द्रां पुष्करिणीं.

(1) हे जातवेदः - हे संस्कारयुक्त अग्नि ! - पृथ्वी. (अन्य अर्थ द्वितीय ऋचा में दिये गए हैं ।)

(2) आर्द्राम् - (क) अभिषेक के कारण भींगे अंगवाली - विद्या., श्रीतत्त्व। (ख) शीतल गुणवाली - पृथ्वी.। शीतल हृदयवाली - नथु. । (ग) दयार्द्र हृदयवाली - श्रीतत्त्व, नथु.। परम कृपावाली - नथु. । (घ) (1) स्निग्ध (स्नेहपूर्ण) । (2) सुगंधित - आथ. - (पृ. 233) । (ङ) मैत्री आदि वृत्तियों से आर्द्र - श्रीतत्त्व. ।

(3) पुष्करिणीम् - (क) पुष्कर का अर्थ है हाथी की शुण्डा का अग्रभाग। हाथी का शुण्डाग्र जिसके उपर अभिषेक करने के लिए तैयार है, ऐसी - विद्या.। गजशुण्ड के अग्रभागवाली - पृथ्वी. । (ख) कमलवाली - विद्या. । जिसके हाथ में कमल है, ऐसी - नथु. (ग) स्वयं कमललता-स्वरूपा - विद्या. । (घ) सदा प्रसन्न - नथु. । (ङ) श्रीतत्त्व के अनुसार ममत्व (ममकारः) और गर्व (मदः) दो देव हैं, जो हाथी के रूपवाले हैं । उनके शुण्डाग्र में आशा और प्रीति नाम के दो सुवर्ण कलश हैं । वे (कलश) तृप्ति रूप जल से परिपूर्ण हैं । वे दो देवता इन दो कलशों से हृदय-कमल-निवासिनी चिद्रूपिणी देवी की दोनों ओर रह कर उनके उपर अभिषेक करते हैं । इस देवी के साथ आनन्दरूप विष्णु है । ऐसी गजलक्ष्मी का यहाँ वर्णन है-श्रीतत्त्व ।

श्री आथवलेजी कहते हैं कि, लक्ष्मी का वाहन हाथी है। वह भौतिक ऐश्वर्य का प्रतीक है । जिसके आँगन में हाथी झूलते हो, वह गजान्त लक्ष्मी है । हाथी उदार है । उदारता के उपर बैठी हुई लक्ष्मी (जीवन-लक्ष्मी, विचार-लक्ष्मी, अध्यात्मलक्ष्मी) शोभायमान होती है। लक्ष्मी के उपर नियंत्रण नहीं होना चाहिए। हाथी का दूसरा गुण तेजस्विता है । तेजस्वी मनुष्य के घर की लक्ष्मी आर्द्रा बनती है। हाथी का तीसरा गुण भविष्यज्ञान एवं दूरदृष्टि है। बौद्धिक लक्ष्मीवाले ऋषि दूरंदेशी थे । वे दो हजार वर्षों के बाद आनेवाले परिणामों का अनुमान कर सकते थे । धनवान को भी दूरंदेशी होना आवश्यक है । यहाँ ऋषि की माँग है, कि मुझमें उदारता, तेजस्विता और दीर्धदृष्टि ये तीन गुण आएँ । तब गजान्त-लक्ष्मी खिल सकेगी । जहाँ समाजोत्कर्ष के लिए लक्ष्मी का सदुपयोग

हो, वहाँ लक्ष्मी आर्द्रा एवं पुष्करिणी बनती है - आथ. (पृ. 233-36)। (च) लक्ष्मीतंत्र में दो अर्थ दिये हैं - (1) पुष् + करिणीम् । अर्थात् पोषण करनेवाली। महालक्ष्मी स्वयं रूप, यश और श्री से सभी का पोषण करती है। (2) पुष्कर = कमल । कमलवाली । काल रूप कमल को ले जानेवाली (छ) **ॐ पुष्करिण्यै नमः** । यह सप्ताक्षर मंत्र सर्वपोषण का फल देता है - लक्ष्मी. (50-188 से 90, पृ. 643-44) ।

(4) पुष्टिम् - (क) पुष्टि की अधिष्ठात्री देवी - विद्या. । (ख) स्वयं पुष्टि रूपा लक्ष्मी को मार्कण्डेय-पुराण में 'पुष्टि-रूपेण संस्थिता' कहा है - विद्या.; नथु.। (ग) पोषण करनेवाली - पृथ्वी. । पुष्टि देनेवाली । मानव के उपरान्त वह लक्ष्मी मानवता, संस्कृति, भक्ति और अध्यात्म का भी पोषण करनेवाली होनी चाहिए। ऋषि की माँग है कि, मनुष्यजीवन के सभी अंगों को पुष्ट करनेवाली 'पुष्टि स्वरूपा' लक्ष्मी मेरे घर आए - आथ. (पृ. 236) ।

यष्टिम् - लक्ष्मीतंत्र और श्रीविद्यार्णवतंत्र में 'पुष्टि' की जगह 'यष्टिम्' पाठ है, जबकि बाकी चार परंपराओं में यष्टिं अथवा यष्टीं पाठ चौदहवीं ऋचा में है, अतः इसका अर्थघटन चौदहवीं ऋचा में होगा ।

(5) पिंगलाम् - (क) लाल एवं पीले रंग का मिश्रण पिंगलवर्ण है - आप्टे.; आथ. । (पिंगलवर्णाम् - विद्या.; कद्रुवर्णाम् - पृथ्वी. । अमरकोश में इन दोनों को पर्यायवाचक बताया है ।) ये दो वर्ण सामर्थ्य और समृद्धि के द्योतक हैं - आथ. (पृ. 237) । (ख) पीले वर्ण की - नथु. । (ग) लक्ष्मीतंत्र में इस पद के दो अर्थ मिलते हैं - (1) तपे हुए सुवर्ण की आभावाली । (2) पिंग नाम के यक्षराजा को महासमृद्धि देनेवाली (पिंगाय लाति ददाति इति । ला आदाने धातुः अदादिः, द्वावपि दाने इति चन्द्रः ।) तब यक्षेश्वर ने उसे पिंगला नाम कहा था । (घ) **ॐ पिंगलायै नमः** । यह सप्ताक्षर मंत्र योग-वृद्धि और तेजो-वृद्धि करता है - लक्ष्मी. (50-193 से 94; पृ. 644-45) ।

(6) पद्ममालिनीम् - इसका अर्थ 'कर्दमेन प्रजा.' ग्यारहवीं ऋचा में दिया गया है. । [**वसु.**- श्रीविद्यार्णवतंत्र, संस्कारभास्कर एवं पृथ्वीधर-भाष्य में यहाँ 'हेममालिनीं' पाठ है और श्रीतत्त्व में 'स्वर्णमालिनीं' पाठ है, जब कि ऋग्वेद

खिल, लक्ष्मीतंत्र और विद्यारण्य. में 'हेममालिनीं' पाठ चौदहवीं ऋचा में है, अतः इसका अर्थ चौदहवीं ऋचा में दिया जाएगा ।]

(7) चन्द्राम् - (क) स्वयं चन्द्ररूपा - पृथ्वी., श्रीतत्त्व, । (ख) चन्द्र को धारण करनेवाली - श्रीतत्त्व. । (ग) चन्द्रमण्डलनिवासी - पृथ्वी., श्रीतत्त्व. । (घ) संतोषप्रद - पृथ्वी.। चन्द्र की तरह प्रसन्नता देनेवाली - नथु., (ङ) कर्पूर को धारण करनेवाली - पृथ्वी. । [विशेष अर्थ प्रथम ऋचा में दिये गए हैं ।]

(8) हिरण्मयीम् - इसका अर्थघटन प्रथम ऋचा में दिया गया है ।

(9) लक्ष्मीम् = ऐसी लक्ष्मीदेवी को

(10) म आवह = (मे) = मेरे लिए । (आवह) = बुलाओ - पृथ्वी. ।

अर्थ - हे संस्कारपूर्ण अग्निदेव ! दयार्द्र - स्नेहार्द्र, कमलवाली, पुष्टिप्रद, पिंगलवर्णवाली, कमलमालाधारी, चन्द्रमण्डलनिवासी, एवं सुवर्णमयी गजलक्ष्मीदेवी को आप मेरे लिए बुलाएँ ।

[14] आर्द्रां यःकरिणीं.

(1) हे जातवेदः = हे संस्कारयुक्त अग्निदेव !

(2) आर्द्राम् - अर्थघटन हो चुका है ।

(3) यःकरिणीम् = (क) जिसके हाथ में लकडी (छडी) है, ऐसी - विद्या.; श्रीतत्त्व; नथु. । (ख) जिसके हाथ में धर्मदंड है, ऐसी - आथ. (पृ. 237-40)। दंड देनेवाली - विद्या. ।

(4) (अ) यष्टिम् - (क) दण्डस्वरूपा - विद्या., (ख) रसोईघर आदि में उपयुक्त दंडस्वरूपा, (पाकशालादिदण्डरूपाम् - पृथ्वी.)। (ग) दण्ड देनेवाली (अर्थात् नियंत्रण रखनेवाली) (नियामिका) - आथ. (पृ. 240) । (घ) लक्ष्मीतंत्र में विभिन्न अर्थ मिलते हैं - (1) 'इष्टास्मि सर्वदेवानाम्' = यह 'इष्टा' पद दो धातुओं से निष्पन्न हो सकता है - (अ) सर्व देव जिसकी इच्छा करते हैं ऐसी - इष् इच्छायाम् धातु से । (आ) और सर्व देव जिसका यजन करते हैं, ऐसी - यज् धातु से । (2) जो सदा हरि के साथ रहती है । (3) सर्व कामनाओं को देनेवाली । (4) सभी का अवलंबनभूत देवी, महालक्ष्मी

का अवलंबन लेकर प्रधान एवं पुरुष आदि भी स्थित हैं। (5) **ॐ यष्ट्यै नमः**। यह षडक्षर मंत्र सभी प्रकार के योगों का फल दता है - लक्ष्मी. (50-190 से 92, पृ. 644)।

(आ) इष्टिम् - पृथ्वीधर भाष्य में 'यष्टि' और 'इष्टि' दोनों पाठ बताए हैं। **इष्टिम्** = याग स्वरूपा - पृथ्वी.।

(इ) तुष्टिम् - लक्ष्मीतंत्र में 14वीं ऋचा में 'इष्टि' की जगह 'तुष्टि' पाठ है, जिसके विभिन्न अर्थ इस तरह हैं - (1) अपने गुणों से भगवान् विष्णु को संतुष्ट करनेवाली। (2) विष्णु के गुणों से स्वयं संतुष्ट होनेवाली। (3) जब अपने अपने कर्मों के द्वारा लक्ष्मीजी की स्तुति की जाती है, तब लक्ष्मीजी में सभी को संतुष्टि मिलती है। (4) **ॐ तुष्ट्यै नमः**। यह षडक्षर मंत्र मन की संतुष्टि देता है - लक्ष्मी. (50-195 से 96)।

(5) सुवर्णाम् = (क) सुंदर वर्ण (रंग) वाली - विद्या., पृथ्वी., नथु.। (ख) लक्ष्मीतंत्र में इसके विभिन्न अर्थ दिये हैं - (1) सुवर् नयति इति (सुवर्+णा)। (सिद्धों को) अपर स्वर्ग = (सुवः) और परमपद = (पर सुवः) में ले जानेवाली। (2) नारायणी-वाचक सभी वर्ण सुशोभित हैं। (सुष्ठु वर्णाः यस्याः इति)। (3) नारायणी स्वयं नित्या सरस्वती बनकर सुंदर वर्णन करनेवाली (सु+वर्णा)। वर्ण =(वर्ण् क्रिया-विस्तार-गुण-वचनेषु, चुरादि धातोः;- सुष्ठु वर्णयति इति।) (ग) **ॐ सुवर्णायै नमः**। यह सप्ताक्षर मंत्र सभी प्रकार की संपत्ति एवं समृद्धि देता है - लक्ष्मी. (50-197 से 99)।

(6) हेममालिनीम् = (क) रत्नजडित सुवर्ण मालावाली - विद्या., (ख) सुवर्णकमलों की मालावाली - पृथ्वी., नथु.। (ग) नारायणी स्वयं पृथ्वी बनकर हेमपर्वत को धारण करती है, इसलिए ब्रह्माजी ने हेममालिनी कहकर स्तुति की थी। (घ) **ॐ हेममालिन्यै नमः**। यह अष्टाक्षर मंत्र धैर्यप्रद है - लक्ष्मी. (50-199 से 201)।

(7) सूर्याम् - (क) सूर्य की तरह प्रकाशित - विद्या., नथु.। (ख) सूर्यस्वरूपा -विद्या.; लक्ष्मी.-(50-203)। (ग) ऐश्वर्य-स्वरूपा-पृथ्वी.; श्रीतत्त्व.। (घ) लक्ष्मीतंत्र में इसे विभिन्न अर्थों में समझाया है - (1) सूर्या = सू + र् + या। सू = (सर्व जीवों के हित के लिए तत्त्वपद्धति को) उत्पन्न करनेवाली।

षुङ् (प्राणिप्रसवे, दिवादि) धातु से । र् - (प्राणियों को अपनी अपनी योग्यता के अनुसार भोग एवं मोक्ष द्वारा) रमण करानेवाली, (रम् क्रीडायाम् - भ्वादि)। या = (काल द्वारा सजीव तत्त्वपद्धति का) नियंत्रण करनेवाली (यत्रि संकोचे धातु से) । (2) सूर्+या । सूरिभ्यः हिता सूर्या । विद्वानों का हित करनेवाली। (यहाँ हित अर्थ में यत् प्रत्यय लगा है) । (ङ) **ॐ सूर्यायै नमः** । यह षडक्षर मंत्र भोग एवं मोक्ष का दाता है - लक्ष्मी.;-(50-201 से 204) (भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ।)

(8) हिरण्मयीम् - अर्थघटन हो गया है ।

(9) म आ वह = मेरे पास लाएँ ।

अर्थ - हे संस्कारी अग्निदेव ! दयार्द्र-स्नेहार्द्र, धर्मदंडवाली, नियामिका, सुंदरवर्णवाली, रत्नजडित सुवर्ण मालावाली, सूर्य की तरह देदीप्यमान एवं सुवर्णस्वरूपा लक्ष्मी माता को मेरे पास लाएँ ।

[15]

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ॥

पठान्तर - मलप, प्रभूतिं, श्वान्विन्देयं - संभा.

(1) 'तां म' से लेकर 'यस्यां हिरण्यं' तक का अर्थघटन द्वितीय ऋचा में हो गया है।

(2) प्रभूतं = बहुत - विद्या., पृथ्वी. ।

(3) गावः = गाएँ - विद्या.। गाय भेंस आदि पशु - पृथ्वी. ।

(4) दास्यः = दासियाँ - विद्या., पृथ्वी. ।

(5) अश्वान् = घोडे आदि - पृथ्वी. ।

(6) पुरुषान् = स्त्री, पुत्र, मित्र आदि - पृथ्वी. ।

(7) अहं विन्देयम् = मैं प्राप्त करूँ ।

अर्थ - हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! स्थिर एवं अविनाशी उस लक्ष्मी को (आप) मेरे पास बुलाएँ, जिसके आनेसे मुझे बहुत सुवर्ण, गाएँ, घोडे, दासियाँ, नौकर आदि मिले ।

[16]

निरुक्तकारोक्तफलस्तुतिः—

य: शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
श्रियः पंचदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥

[**वसु.** – इस ऋचा का अर्थ श्री. वि. (पृ. 19) के अनुसार है ।]

इस ऋचा में कही गई उपासना पद्धति तीन प्रकार की है, जैसे कि, - पवित्र एवं प्रयत्नवान बनकर (क) संकल्पदिन से लेकर पंद्रह वर्षों तक प्रतिदिन अपनी शाखानुसार अग्नि का संस्कार करके पंद्रह ऋचाओं से पंद्रह आज्याहुति देकर श्रीसूक्त का एक बार पारायण करे । (ख) अथवा श्रीसूक्त का पंद्रह पारायण (आवर्तन) कर के एक एक ऋचा का जप उस उस ऋचा की उपासना में बताई गई संख्या के अनुसार (जप) करे । (ग) यदि इतनी दीर्घ उपासना करने की अशक्ति हो, तो पंद्रह ऋचाओं से पंद्रह आहुतियाँ देकर, पंद्रह दफा श्रीसूक्त का जप करे। इतना करने से इसी जन्म में बहुत संपत्ति मिलेगी । यदि विधिवत् अनुष्ठान न हो सके तो भी यथायोग्य फल मिलेगा ही । यदि विरोधी कर्म अधिक हो तो जन्मान्तर में भी फल मिलेगा - (श्री.वि. पृ.; 19-20)।

[**वसु.** - 'पंचदशऋग्भिः पंचदशाज्याहुतीर्हुत्वा.... । ..... तदशक्तौ लौकिकाग्नावपि पंचदशऋग्भिः प्रत्यहं पंचदशाज्याहुतीर्हुत्वा पंचदशवारं श्रीसूक्तं जपेत् ।' निरुक्तकार के इन वाक्यों कें दो अर्थ संभव हैं - (क) पंद्रह ऋचाओं के अंत में एक आहुति, ऐसी पंद्रह आहुतियाँ । (ख) प्रत्येक ऋचा की एक एक आहुति, ऐसे एक श्रीसूक्त की 15 आहुतियाँ दें । यह द्वितीय विकल्प युक्तिसंगत है, क्योंकि यदि सूक्तान्त होम का पक्ष निरुक्तकार को अभिप्रेत होता तो पंचदशर्चात्मक-सूक्तान्तहोमपक्षमाश्रित्य पंचदशाहुतीर्हुत्वा' ऐसी वाक्यरचना करते । पू. आद्य जगद्गुरुजी प्रत्येक ऋचा को स्वतंत्र सूक्त मानते हैं । श्री नथुरामशर्माजी ने भी प्रत्येक ऋचा से एक एक आहुति बताई है । (ग) श्री आथवलेजी का कहना है कि सतत जप एवं हवन करनेवाले के घर इस जन्म में और अन्य जन्मों में लक्ष्मी देवी सदा रहेगी । लक्ष्मी का अर्थ है धन-ऐश्वर्य, मनः-ऐश्वर्य एवं कृतार्थता ।]

शुचिः = स्नान आदि द्वारा स्वच्छ (पवित्र) बना हुआ ।

प्रयतः - मन की स्वच्छता (एवं पवित्रता) युक्त । **भूत्वा** = बनकर । **अन्वहं** = प्रतिदिन । **आज्यं** = घी [गाय का] । **जुहुयात्** = होम करे । (उसके बाद) (**श्रियः पंचदशर्चं** = श्रीसूक्त की पंद्रह ऋचाओं वाले सूक्त का । **सततं** = सतत । **जपेत्** = जप करे । आथवलेजी कहते हैं कि, शुचिता एवं प्रयतता दोनों हो, तभी लक्ष्मी दक्षमार्गी होगी । ऐसी लक्ष्मी की माँग ऋषि ने की है । इन दोनों सद्‌गुणों के अभाव में लक्ष्मी वाममार्गी होगी - आथ. (पृ. 241-48) ।

[**वसु.** — आथवलेजी का कहना यथार्थ है, क्योंकि जिन समाजशत्रुओं के पास वाममार्गी लक्ष्मी (संपत्ति) है, वे लोग इसका दुरुपयोग शराब, व्यभिचार, हिंसा, निर्दोषों की सामूहिक कतल, नशीली चीजें, आर.डी.एक्स. का व्यापार आदि अनेकविध पापकर्मों में करके समाज में अशान्ति, भय, आदि परेशानियाँ देते रहते हैं । इसलिए जब दक्षमार्गी संपत्ति केवल संस्कारी मानवों के पास रहेगी, तभी समाज का उत्कर्ष हो सकेगा ।]

अर्थ — लक्ष्मी की कामनावाला **श्री** का उपासक पवित्र एवं प्रयत्नवान बनकर सतत घी से हवन करे और पंद्रह ऋचात्मक श्रीसूक्त का सतत जप करे ।

लक्ष्मी के प्रकार

(1) अष्टविध लक्ष्मी - देखो ऋचाओं के अर्थ विभाग में द्वितीय ऋचा । [पृ.113]

(2) दशविध लक्ष्मी -

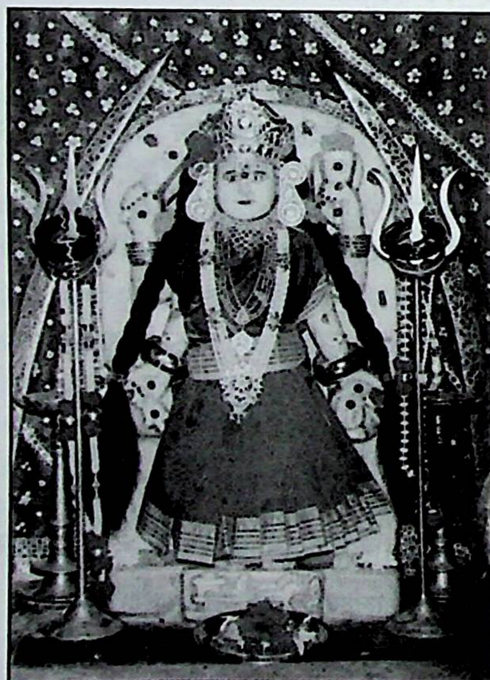
(क) या श्रीः [1]पद्मवने, [2]कदम्बशिखरे, राजगृहे [3]कुंजरे,
श्वेते [4]चाश्वयुते, वृषे [5]च युगले, यज्ञे [6]च यूपस्थिते ।
शंखे [7]देवकुले, नरेन्द्र-[8]भवने, [9]गंगातटे, [10]गोकुले,
सा श्रीस्तिष्ठतु सर्वदा मम गृहे भूयात् सदा निश्चला ॥

(ख) वैकुंठे या [1]महालक्ष्मीः, या लक्ष्मीः [2]क्षीरसागरे, ।
[3]स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे, [4]राजलक्ष्मीर्नृपालये, ॥2॥

गृहलक्ष्[5]मीश्च गृहिणां, गेहे च गृह[6]देवता, ।
सु[7]रभिः सागरे जाता, दक्षिणा[8] यज्ञकामिनी, ।
त्वं हि [9]विष्णुस्वरूपा च, सर्वाधारा वसु[10]न्धरा ॥3॥

पूजा, जप, होम आदि के अंत में और निद्रा से पहले, निद्रा के अंत में, और त्रिकाल की संध्या के समय में उपर्युक्त तीन श्लोकों द्वारा लक्ष्मी को प्रार्थना करें। (ये तीनों श्लोक प्रसिद्ध हैं ।)

(ग) (1) विष्णुपत्नी लक्ष्मी, (2) पाताल में नागलक्ष्मी, (3) गृहलक्ष्मी, (4) सुरभि गाय, (5) यज्ञान्ते दी जानेवाली योग्य दक्षिणा, (6) सूर्यमण्डल में तेजो-लक्ष्मी, (7) आभूषणों की अधिष्ठात्री लक्ष्मी, (8) राजलक्ष्मी, (9) स्वधा एवं स्वाहा, (10) और स्वर्गलक्ष्मी - शाण्डिल्य, नूतन कहानियाँ, नवे. 1998 । उनका कहना है कि राधाष्टमी (भाद्रपद शुक्लाष्टमी) के रोज भगवती लक्ष्मी का जन्म हुआ था ।



श्री शकटाम्बिका माताजी (पुष्पादग्राम-सिद्धपुर के पास)

चतुर्थ प्रकरण

1 मंत्र

मूलमंत्र – मननात् त्रायते इति मंत्रः । इस प्रसिद्ध निरुक्ति के उपरान्त अन्य निरुक्तियाँ मत्राध्वा [पृ. 36] में हैं । उपास्य देवता के यदि विभिन्न मंत्र एवं ध्यान हो, तो स्ववंश के कल्याणार्थ सात्त्विक मंत्र एवं ध्यान का ही निर्णय लें। उस निर्णीत मंत्र को तंत्र में मूलमंत्र कहा है । 'मूलेन सम्प्रोक्ष्य'; 'मूलं प्रजप्य' आदि विधान इसी अर्थ में हैं ।

मूलमंत्र के विकल्प में बीजमंत्र – लक्ष्मी तंत्र और पू. श्री भगवान आद्य गुरुदेव ने 15 ऋचाओं से 15 उपचार करने को कहा है - [लक्ष्मी. 50-25 से 29 और 31 से 35; प्रपंच. 12-46; 47] । यदि 15 से अधिक उपचार करने हो तो ऋचा की आवृत्ति हो सकती थी, परंतु पू. पद्म. गुरुजी ने ऋचा के विकल्प में केवल **'श्रीं'** बीज का उपयोग बताया है - [शेषं श्रीबीजेन कृत्वा- प्रपंच. पृ. 166] । [वसु. – जहाँ ऐसा नियंत्रण न हो वहाँ सभी उपचार मूलमंत्र से ही करें। यद्यपि अन्य उपचारमंत्रों का भी उपयोग हो सकता है, परंतु उनका उपयोग मूलमंत्र के साथ ही करें । चरुश्रपणादि सर्व यज्ञकर्मों में मूलमंत्र का उपयोग महत् फलप्रद रहा है, अनुभव अवश्य करें ।]

मूलमंत्र में संयोजन – मूलमंत्र में अन्य मंत्र, बीज या बीजों का संयोजन करने से मंत्र का प्रभाव बदल जाता है । उसमें प्रथम बीजाक्षर के अनुसार प्रभाव अधिक बदल जाता है - जैसे **'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं'** चतुरक्षर रमामंत्र में जब प्रथम **'ऐं'** बीज रहता है, तब यह मंत्र धर्म-प्राप्ति कराता है । **'श्रीं'** प्रथम हो तो वही मंत्र संपत्तिप्राप्ति कराता है - [..... धर्मार्थं वाग्भवादित्वम् । अर्थार्थं लक्ष्मीबीजादित्वं, मोक्षार्थं मायाबीजादित्वम् इति - राघव. शा. पृ. 234] । [वसु. – जब तक मान्य ग्रंथ प्रोक्त पाठ न मिले, तब तक अपनी इच्छा से किसी भी बीज को आदि में न रखे, और मंत्रवर्णों में परिवर्तन करने का दुःसाहस कभी भी न करें ।]

संयोजन पद्धति – मूलमंत्र में संयोजन करने की मुख्यतः दो पद्धतियाँ हैं - **(क)** मूलमंत्र को पादशः, शब्दशः या वर्णशः तोड कर बीच बीच में मंत्र, मंत्रांश, मंत्रवर्ण या बीज जोडे जाते हैं, जैसे कि, प्रसिद्ध सावित्री [गायत्री] मंत्र

के प्रत्येक पाद के पूर्व में [=योजना] व्याहृति के अथवा त्र्यक्षरी बाला के एक एक वर्ण को क्रमशः रखा जाता है। इन के अलावा जातवेदस. का अनुष्ठान [पृ. 64] आदि अनेक उदाहरण मिलते हैं। **[वसु.** — अपनी मनमानी करके ऐसा तोडमरोड कभी भी न किया जाए।] **[ख]** मंत्र को बिना तोडे [अर्थात् यथावत् रख कर] संयोजन करने की तीन पद्धतियाँ हैं - **योजना** [=मंत्र की आदि में]; **पल्लव** [=मंत्र के अंत में] और **संपुट** [=मंत्र की आदि एवं अंत में] संयोजन।

(1) योजना [=मंत्र की आदि में] — मंत्र में छेडछाड को रोकने के लिए बहुत से मंत्रों को अक्षर-गणना द्वारा बाँध लिया है, जैसे कि शारदातिलक में एक ही पंक्ति में पंचाक्षर और षडक्षर दोनों प्रकार के शिवमंत्र बताये हैं - [पंचाक्षरो मनुः प्रोक्तस्ताराद्योऽयं षडक्षरः - 18-2, पृ. 421]।

[अ] प्रणवरहित मूल रूप - यदि [प्रणवरिहत] पंचाक्षर मंत्र की उपासना करनी है, तो 'नमः शिवाय' प्रणवरहित मूल रूप हुआ। इसकी आदि में ॐ; ह्रीं; श्रीं; ह्रींश्रीं; श्रींह्रीं; ॐह्रींश्री; ॐश्रींह्रीं; या श्रींह्रींॐ, में से किसी भी एक विकल्प की योजना करें। **[वसु.** — अनुपनीत और स्त्री उपासक इन में से प्रणवरहित विकल्पों का उपयोग करें।]

[आ] प्रणव सहित मूल रूप - (1) यदि षडक्षर [ॐ नमः शिवाय] मूल रूप की उपासना करनी है, तो प्रणव-सहित इस मूल रूप को यथावत् रख कर प्रणव के पूर्व में ह्रीं; श्रीं; ह्रींश्रीं; या श्रींह्रीं की योजना हो सकती है, जैसे श्रींह्रीं; ॐ नमः शिवाय। (2) इसी तरह ॐ चन्द्रायै नमः (षडक्षर) में किया जाए। इन प्रणवादि 53 श्रीमंत्रों में योजना-पद्धति शिव षडक्षर की तरह करें। श्रींह्रीं; ॐ चन्द्रायै नमः मंत्र अधिक फलप्रद है। यद्यपि श्रीं ह्रीं 'ॐ नमः शिवाय' दोनों जगह (पंचाक्षर एवं षडक्षर में) एक ही स्वरूप में दीखता है, परंतु उसकी भेदरेखा केवल विनियोग द्वारा ही स्पष्ट हो सकती है।

[वसु. — सभी प्रणवरहित मूल स्वरूप वाले तांत्रिक मंत्रों की आदि में प्रणव रखना अनिवार्य नहीं है। यदि प्रणव की अनिवार्यता मानी जाए तो शारदातिलक में एक ही पंक्ति में निरूपित पंचाक्षर और षडक्षर का विभाग ही व्यर्थ हो जाएगा। इसी तरह देवी अथर्वशीर्ष प्रोक्त नवार्ण मंत्र प्रणवादि नहीं है - [वाङ् माया...... दायकः (20)]। फिर भी जो याज्ञिक पंडित यहाँ प्रणव की अनिवार्यता बताते हैं, वे मान्य तंत्र-ग्रंथ का मूल प्रस्तुत करें।]

[ई] **ॐ, ह्रीं, श्रीं** - ॐ, ह्रीं, श्रीं, आदि बीजमंत्रों का संयोजन - [क] **ॐ** - मंत्र की आदि में प्रणव का संयोजन सर्वमान्य है। इसका अधिकार केवल द्विजों को ही है, स्त्रियों और अनुपनीतों को नहि। [ख] **ह्रीं** - प्रणव के बाद ह्रीं की उत्पत्ति हुई है [देखो पृ. 49]। देवी अथर्वशीर्ष में इसको एकाक्षर ब्रह्म कहा है - [वियदीकार.... एवमेकाक्षरं ब्रह्म...... राशयः - 18; 19]। संभव है कि, इन दो कारणों से अप्रणवादि मंत्रों की आदि में ॐ के बदले **ह्रीं** की योजना होती हो। स्त्रियाँ और अनुपनीत उपासक अप्रणवादि मंत्र की आदि में '**ह्रीं**' की योजना करें। [ग] '**ॐ ह्रीं**' और '**ह्रीं श्रीं**' - लक्ष्मी-तंत्र के अनुसार लक्ष्मी अर्चन में '**ॐ ह्रीं**' का और श्रीसूक्त-ऋचाओं में '**ह्रीं श्रीं**' का संयोजन करने को कहा है - ['तारेण तारया द्वाभ्यां नमसा चार्चयेत् क्रमात्' - 38-18; और 'तारिकामनुतारं च प्रयुंजीयादथान्ततः-50-29]। [घ] **ॐ ह्रीं श्रीं** - परशुराम-कल्पसूत्र-प्रोक्त श्रीक्रम में सर्व मंत्रों की आदि में '**ॐ ह्रीं श्रीं**' की योजना बताई है - [सर्वेषां मंत्राणामादौ त्रितारी संयोगः। त्रितारी वाङ्मायाकमलाः-3-8]। लक्ष्मी-तंत्र में निरूपित इन तीनों के उत्पत्ति-क्रम के साथ यह क्रम सुसंगत बनता है। (यह सृष्टि क्रम है।) [ङ] **श्रीं ह्रीं ॐ** - लक्ष्मी-तंत्र के अनुसार यह संहार-क्रम भी मान्य है। ये तीन बीज और 'ॐ श्रियै नमः' मंत्र, ये चार रत्न लक्ष्मीदेवी के शरीर को धारण करते हैं। इन में से किसी भी एक के उपयोग से चारों का फल मिलता है। किसी भी एक, दो, तीन या चारों का ध्यान एवं जप करने से और इनके द्वारा अर्चन एवं होम करने से सर्व इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। ये तीनों वर्ण लक्ष्मीमय हैं - [आद्ये पदत्रये वर्णाः श्रींह्रीमोमिति मन्मयाः..... अभीप्सितम् - 50-85 से 87]। [इस से फलित होता है कि लक्ष्मी अर्चन में इन में से किसी भी एक का उपयोग करना अत्यावश्यक है। यदि एक से अधिक का उपयोग किया जाए, तो उत्तरोत्तर अधिकाधिक फल मिलता है। इस स्थिति में '**श्रीं ह्रीं; ॐ श्रियै नमः**' मंत्र सभी 53 श्रीमंत्रों में श्रेष्ठ बन जाता है। इन बीजों के अलावा हौं; ॐजूंसः, व्याहृति, ऐं, क्लीं आदि का भी संयोजन हो सकता है।]

[2] **पल्लव** - मंत्र के मूल रूप को यथावत् रख कर पल्लव किया जाए- जैसे 'ॐ चन्द्रायै नमः'; श्रीं ॥ 'ॐ नमः शिवाय'; ह्रीं ॥ आदि।

[3] संपुट - प्रमाणभूत तंत्र-ग्रंथ में जिस बीजमंत्र वगैरह का संपुट बताया हो, उसका संपुट अवश्य करना है, जैसे - पू. श्री पद्म. गुरुजी ने श्रीसूक्त की ऋचाओं में 'श्रीं' का संपुट बताया है - [ऋचः श्रीबीजपुटितत्वं होमतर्पणादौ स्वाहा-तर्पयाम्यन्तत्वं चोक्तम् - प्रपंच. पृ. 167] । [**वसु.** - इस संपुटित स्वरूप को यथावत् रखकर, अतिरिक्त बीजों का संयोजन हो सकता है जैसे - ॐ ह्रीं; श्रीं हिरण्यवर्णां...... वह, श्रीं ।]

अनुलोम-विलोम संपुट - उदाहरण द्वारा इस की स्पष्टता सरल रहेगी जैसे - ॐ; हौं; ॐ जूंसः; भूर्भुवः स्वः; त्र्यम्बकं.........मृतात्; भूर् भुवः स्वरोम् जूंसः; हौं ॐ । प्रणव के सहित 50 वर्णात्मक यह मंत्र पाप, [ताप] एवं आपत्ति निवारक मृतसंजीवनी विद्या है - [मं. महो. 16-1 से 4] ।

[**वसु. - महामृत्युंजयमंत्र - (क) त्र्यम्बक मंत्र** - शारदातिलक [23-1; पृ. 498] और श्रीविद्यार्णव. [श्वास 31, पृ. 519] में उद्धृत सारसंग्रह के अनुसार त्र्यम्बक मंत्र की आराधना से मृत्युविजय एवं अणिमादि सिद्धियाँ मिलती हैं । इस त्र्यम्बक [त्र्यम्बकं....मृतात्] मंत्र को प्रासाद, मृत्युंजय एवं व्याहृतियों से संपुटित करने से उसे महामृत्युंजय एवं मृतसंजीवनी कहा गया है । इस तरह किसी भी मंत्र को संपुटित करने से उसके स्वरूप, शक्ति और फलप्रदत्व में परिवर्तन होकर, वह अधिक बलवान् बन जाता है ।

(ख) प्रासाद मंत्र - 'हौं' - भगवान् श्री आद्य जगद्गुरुवर्य कहते हैं कि, इस [एकाक्षर] 'हौं' मंत्र के पूजन एवं होम से इष्ट सिद्धि होती है । मन को प्रसन्न करने से उसे प्रासाद-मंत्र कहा है - (प्रपंच. 27-1; 2; पृ. 293) । वह सर्वसिद्धिप्रद है - (शा. 18-52; पुरश्च. पृ. 698) ।

(ग) मृत्युंजय मंत्र - 'ॐजूंसः' - भगवान् श्री आद्य जगद्गुरुवर्य का कहना है कि, यह त्र्यक्षरी मृत्युंजय मंत्र साधक का रक्षक है - (प्रपंच. 28-31; पृ. 305); वह इष्टफल-प्रदाता है - [शा. 18-111; पृ. 433] एवं मृत्युभय-निवारक है - (श्रीविद्या. श्वास 30; पृ. 487) । मृत्यु-विनाशक इस मंत्र के जप से ही इष्ट सिद्धि मिलती है । इसके संपुट से मूलमंत्र अधिक बलवान बन जाता है - (मं. महो. 15-109; पृ. 136) । (यह मृत्युंजय मंत्र त्र्यक्षरी के

अलावा पंचाक्षरी और एकाक्षरी भी है - (राघव. शा. पृ. 434)।

(घ) भूर्भुवः स्वः व्याहृतियाँ प्रसिद्ध हैं।

(अ) यहाँ इन प्रासाद आदि तीनों का अनुलोम-विलोम संपुट है। आन्तरविलोम केवल ॐ हौं का ही है। (आ) महामृत्युंजय के 14 और 6 प्रणववाले दो विकल्प आह्निक-सूत्रावलि में हैं - [वि. 537; पृ. 333]। ब्रह्मनित्यकर्म. [पृ. 307] में इन दो के अतिरिक्त 8 प्रणववाला विकल्प भी है। परंतु दोनों ग्रंथों में मूल नहीं बताया है, इस लिए जब तक इन विकल्पों का मूल न मिले तब तक उन की आराधना न करें।]

***

श्रीसूक्तजप के पूर्व में करणीय पाँच मुद्राएँ

मुद्रा - (क) मुदं राति ददातीति मुद्रा; (ख) योजनात्सर्वदेवानां द्रावणात्पापसंहतेः। तस्मान्मुद्रेति सा ख्याता सर्वकामार्थसाधिनी ॥; (ग) पृथिव्यादीनि भूतानि कनिष्ठाद्याः क्रमान्मता। तेषामन्योन्यसम्भेद-प्रकारैस्तत्प्रपंचता ॥ अर्चने जपकाले तु ध्याने काम्ये च कर्मणि। तत्तन्मुद्राः प्रयोक्तव्या देवतासन्निधापिकाः ॥ इति - परशु.परिशिष्टे, पृ. 609

(1) **कमल**- करौ तु संमुखीकृत्य संहतावुन्नताङ्गुली। तलान्तमिलिताङ्गुष्ठौ कुर्यादेषाब्जमुद्रिका ॥ राघव. शा. - 14-36, पृ. 342

(2) **कलश**- दक्षांगुष्ठे परांगुष्ठं क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन तु। सावकाशं त्वेकमुष्टिं कुर्यात् कुंभस्य मुद्रिकाम् ॥ -राघव. शा. - 4-4; पृ. 128

(3) **ज्ञान** - तर्जन्यंगुष्ठयोगे तु दक्षहस्ते तु पार्वति ॥ अक्षमालेति मुद्रेयं ज्ञानमुद्रा च वै भवेत् - ज्ञानार्णव. -4=40; 41, पृ. 31

(4) **धेनु** परिवर्त्य करौ पश्चात् तर्जनी मध्यमायुगम्। कनिष्ठानामिकायुग्मं परस्परयुतं कुरु ॥ धेनुमुद्रा - ज्ञानार्णव.4-37, पृ.30

(5) **अंजलि**-किंचिदाकुंचित-अंगुल्यग्रयोः स्वाभिमुखं करयोरन्योन्यसम्बन्धे अंजलिः - मुद्राविधानम् - पृ. 14; (यह तामील में मुद्रित है। पृ. 80 हैं।)

मंत्रानुष्ठान-अंगों की तालिका

मंत्रानुष्ठान का अंग-क्रम मुख्यतः दो प्रकार का है - (1) प्रसिद्ध अंग-क्रम और (2) विशिष्ट अंग-क्रम, जैसे कि -

अंगों का क्रम	जप	होम	तर्पण	मार्जन [अभिषिचन]	ब्रह्मभोजन	पुनर्होम	पुनःतर्पण	
(1) प्रसिद्ध क्रम	एक लाख	10.000	1000	100	10	—	—	• यह पंचांग पक्ष उत्तम है। } मं.महो. 1-203 पृ. 13
(2) वैकल्पिक व्यवस्था	"	"	"	x	ब्र.भो.की संख्या अनुक्त है।	—	—	• यह चतुरंग पक्ष मध्यम है।
(3)	"	"	x	x	1000	—	—	• यह त्र्यंग पक्ष कनिष्ठ है।
(4)	12 लाख	1.20,000	12,000	1200	120	20,000	20,000	• जगत्प्रसूति मंत्र श्रीविद्या. श्वास 22, पृ.126
(5)	"	12,000	1200	120	12	—	—	• एकाक्षर श्रीमंत्र श्रीविद्या. श्वास 22, पृ. 120-22
	जप	तर्पण	होम	ब्रह्मभोजन	सुवासिनीपूजा	दान		
(1) विशिष्ट अंग क्रम	एक लाख	10,000	1000	100	—	—	—	• सौभाग्यलक्ष्मी, उपनिषद् उद्धृत श्रीवि. पृ.21
(2) "	"	"	"	"	10	एक सवत्सा गाय का दान	—	• श्रीसूकत की प्रथम ऋचा-श्री वि. पृ. 4

[क] प्रसिद्ध अंगक्रम – इस पद्धति में पंचांग पक्ष उत्तम है । मार्जनरहित चतुरंग पक्ष मध्यम है और तर्पण-मार्जनरहित त्र्यंग पक्ष कनिष्ठ है । तर्पण-मार्जन के अभाव में ब्रह्मभोजन की संख्या को सौ गुना बढ़ाया गया है, जो ब्रह्मभोजन अंग का महत्त्व एवं अनिवार्यता का समर्थन करता है । चतुरंग में ब्रह्मभोजन की संख्या का निर्देश नहीं है, इस स्थिति में त्र्यंग निर्दिष्ट 1000 की संख्या में अथवा वह चौथा अंग होने के कारण 100 की संख्या में ब्रह्मभोजन माना जाए, उसका निर्णय तंत्रज्ञ विद्वान् करें । यद्यपि यहाँ सुवासिनी पूजा नहीं है, फिर भी देवी-यज्ञों में वह होती ही है ।

[ख] विशिष्ट अंग-क्रम

इस पद्धति में जप के बाद तुरंत तर्पण है, उसको द्वितीय अंग का दर्जा मिला है और ब्रह्मभोजन को चौथे अंग का दर्जा मिला है, फलस्वरूप दोनों की संख्या में दश गुनी वृद्धि हुई है । होम तृतीय अंग में होने के कारण संख्या दसवे भाग की हुई है [कम हुई है] । सुवासिनी पूजा एवं दान को स्वतंत्र अंग का दर्जा मिला है और दशांश संख्या भी निश्चित हुई है । यहाँ मार्जन नहीं है ।

[1] जप - **[वसु.** – मंत्र, मंत्रद्रष्टा ऋषि, गुरु, मंत्रदेवता और स्वयं देवरूप बन कर निश्चित संख्या में, नियत समय में, नियत आसन में बैठ कर जप करे । पवित्र स्थान अधिक फलप्रद है । अनुष्ठान के सर्व नियमों का पूर्णरूप से पालन करे । अपरिग्रह अनिवार्य है । यदि दो लाख से अधिक जप-संख्या हो, तो अधिक समय तक कष्टप्रद नियम-पालन कठिन पडने के कारण एक एक लाख का मण्डल करते रहे । होमादि चारों अंग सहित एक मण्डल पूर्णरूप से सम्पन्न करके, अगले ही दिन द्वितीय मण्डल शुरू करे । बीच में एक भी दिन छूटना न चाहिए । पृथ्वीभाष्यानुसार जप के पहले कमल, कलश, धेनु, ज्ञान और अंजलि ये पाँच मुद्राएँ करके श्रीसूक्त-जप करे - (पृथ्वी. श्री. वि. पृ. 2) । (मुद्राओं के लक्षण पृ.157 में दिये हैं ।)

[2] होम - [क] संख्या के संदर्भ से समग्र होम [रुद्र-यज्ञों में], दशांश होम, शतांश होम आदि विभिन्न भेद हैं । इन में जपदशांश होम अधिक प्रचलित है ।

शतांश होम - (अ) श्रीसूक्त की स्वतंत्र ऋचोपासना और 32 श्रीमंत्रों की स्वतंत्र

उपासना में तर्पण-दशांश होम का क्रम होने के कारण वहाँ जप-शतांश होम अनायास बन गया है। (आ) एकाक्षर श्रीमंत्र में होम द्वितीय अंग के रूप में होने पर भी वहाँ जप-शतांश होम का प्रत्यक्ष श्रवण है, जिस के बाद तर्पणादि शेष अंग हैं। [**वसु.** – संभव है कि 12 लाख जैसी बड़ी संख्या के कारण शतांश होम की व्यवस्था आई हो।]

एकाधिक द्रव्य - होम में जब एक से अधिक हवनीय द्रव्य हो, तो दो पद्धतियाँ (ग्रहमखीय और द्रव्यविभाजित) मिलती हैं - **[क] ग्रहमखीय पद्धति**- यह पद्धति प्रसिद्ध है और याज्ञिक परंपरा इस का अनुसरण [आज भी] कर रही है। इस पद्धति में सभी द्रव्यों की एक ही आहुति गिनी जाती है, जैसे ग्रहमख में प्रत्येक ग्रह की 108 आहुति का पक्ष हो, तो समिध की 108, आज्य की 108 और चरु की 108 आहुतियाँ क्रम से दी जाती है। कुल मिलाकर 324 आहुतियाँ होने पर भी 108 ही गिनी जाती है। इस को प्रकृतियाग माना है, इस लिए वास्तु होम आदि में इस पद्धति का अतिदेश किया गया है।
[ख] द्रव्य-विभाजित पद्धति - भगवान् श्री आद्यगुरुवर्य ने प्रपंच. में समग्र श्रीसूक्तोपासना प्रसंग में जप-दशांश 1200 आहुति संख्या को कमल आदि चार द्रव्यों में विभाजित करके प्रत्येक द्रव्य की तीन सौ-तीन सौ आहुतियाँ बताई हैं - [एकैकं त्रिस्त्रिशतं..... प्रपंच. 12-49]। इस पद्धति का समर्थन श्रीविद्या. में उद्धृत सारसंग्रह और स्वयं पू. श्री विद्यारण्ययतिजी ने किया है - [प्रत्येकं त्रिशतं हुनेत् - सारसंग्रह, श्रीविद्या. पृ. 133; विद्यारण्ययतिजी - श्रीविद्या. पृ. 121]। [**वसु.** – जहाँ अन्य पद्धति का प्रत्यक्ष श्रवण न हो, वहाँ सभी श्रीमंत्रोपासनाओं में इसी व्यवस्था का ही अनुसरण किया जाए।]

नित्य होम - भगवान् श्री आद्य गुरुदेव ने समग्र श्रीसूक्तोपासना में आवरण निरूपण के बाद, प्रतिदिन अन्न और [गो] घृत की 108 आहुतियाँ देने की आज्ञा दी है - [अन्नघृताभ्यां जुहुयाद् अनुदिनमष्टोत्तरं शतं मंत्री - प्रपंच. 12-46]। [**वसु.** – (अ) द्रव्य-विभाजित पद्धति के अनुसार अन्न की 54 और घृत की 54 आहुतियाँ दी जाए। पू. श्री पद्म. गुरुजी ने स्पष्ट किया है कि, श्रीसूक्त की सात आवृत्तियों से 105 की संख्या होगी। फिर अन्तिम ऋचा की तीन आवृत्तियाँ करने से 108 की संख्या संपन्न होगी - (सूक्तानां

सप्तवारजपान्ते अन्त्यस्य सूक्तस्य त्रिरावृत्तिर्विवक्षिता - प्रपंच. पृ. 166) । इस व्यवस्था अनुसार श्रीसूक्त की चौथी आवृत्ति में नवमी ऋचान्ते 54 अन्नाहुतियाँ होंगी । फिर दशमी ऋचा से शुरू करके घी की 54 आहुतियाँ सम्पन्न करें।
(आ) वैकल्पिक नित्य होम - यदि समयाभाव के कारण होम के लोप की ही नौबत आ जाए तो, **'यः शुचिः'** ऋचा में निरुक्तकार-प्रोक्त 15 आज्याहुतियाँ दें । इस पद्धति में श्रीसूक्त की एक आवृत्ति में 15 आहुतियाँ सम्पन्न करके, श्रीसूक्त का एक पाठ करने का विधान है । यहाँ घृताहुतियों का प्रत्यक्ष श्रवण होने के कारण अन्न और घी दो द्रव्य नहीं हो सकते । क्योंकि मूल-ग्रंथ-प्रोक्त पद्धति का ही अनुसरण किया जाता है । इस लिए यहाँ अन्य पद्धति का अतिदेश नहीं हो सकता । (इ) इतना अवश्य ध्यान में रखा जाए कि, कर्मकाण्ड में कहीं भी, कभी भी तर्क, अनावश्यक अतिदेश और अपनी मनमानी नहीं चल सकती । जहाँ शतांश होम का प्रत्यक्ष श्रवण हो, वहाँ दशांश होम नहीं हो सकता । जहाँ दशांश होम का विधान हो, वहाँ शतांश नहीं हो सकता । जहाँ आहुति-संख्या न बताई हो, वहाँ जप-दशांश होम ही किया जाए, शतांश नहि । शतांशवाला अति अनुकूल पक्ष का आश्रय लेकर स्वयं पापभागी न बने, अनुमोदन भी न करे । श्रीसूक्त की स्वतंत्र ऋचोपासना में जब तक मूलग्रंथ-प्रोक्त होम पद्धति न मिले, तब तक प्रथम-ऋचा-प्रोक्त पद्धति का ही अनुसरण किया जाए ।
(ई) अनुष्ठानांग होम - लक्ष्मी मंत्र का अनुष्ठान जिस ग्रंथ के अनुसार कर रहे हो, उस ग्रंथ की पद्धति का पूर्णरूप से पालन किया जाए । अस्तु ।]

[3] तर्पण -

देवों, ऋषियों और पितृओं की तृप्ति का सफल एवं अमोघ उपाय तर्पण है । तर्पण के विभिन्न भेद हैं - स्नानांग, पूजांग, अनुष्ठानांग आदि । [क] इन में से (1) स्नानांग, (2) नित्य और (3) पूजांग-तर्पण की विचारणा पूजा विभाग में [पृ. 176-77; 182] है ।
[ख] (4) **अनुष्ठानांग तर्पण** - नियत क्रम से, नियत संख्या में तर्पण किया जाए । नित्य तर्पण की पद्धति अनुसार यह तर्पण किया जाए । यहाँ प्रोक्त संख्या में लक्ष्मीजी को तृप्त करके, आवरण-देवों का तर्पण करे । पूर्णाहुति-

प्रणीताविमोकान्त कर्म के पश्चात् और ब्रह्मभोजन-संकल्प से पहले यह तर्पण किया जाए।

[ग] **ग्रह-पूजांग दान के विकल्प में तर्पण** - सूर्यादि ग्रहों के अनुष्ठानों में निर्धारित दान नहीं देने से पूर्ण फल नहीं मिलता। यदि आर्थिक स्थिति निर्बल हो, तो होम की समान संख्या में तर्पण करने का विकल्प बताया गया है - [...दद्याद् अनुरूपोक्तदक्षिणाम्। तदभावे तु तन्मंत्रैः तर्पयेच्च पृथक् पृथक् इति। तथा.... तर्पणं होम-संख्यं कुर्यात् - [विद्यामाधवीय अ.15; पृ. 287; 288]। तर्पण मंत्र - जैसे ॐ अथवा ह्रीं, बुं बुधाय नमः, बुधं तर्पयामि नमः।

[घ] **तर्पण का अत्यधिक महत्त्व** - (1) गणेश क्रम में 444 बार नित्य तर्पण- [परशु. 2-3]; (2) भगवान् श्री आद्य गुरुवर्य की जपसमान संख्या में तर्पण की आज्ञा - [आदित्याभिमुखो जप्याद् यावत् तावच्च तर्पयेत् - प्रपंच. 12-50]; (3) विशिष्ट अंग-क्रम में जप-दशांश तर्पण का विधान; (4) ग्रह-पूजांग दक्षिणा के विकल्प में तर्पण उपाय; (5) और नित्य तर्पण आदि विधान तर्पण का अत्यधिक महत्त्व सूचित करते हैं।

[4] **मार्जन** - [**वसु.** - (क) प्रसिद्ध अंग-क्रम में तर्पण-दशांश मार्जन [अभिषिंचन] अनिवार्य है। (ख) विशिष्ट अंग-क्रम में मार्जन अंग नहीं है, इस लिए वहाँ तर्पण न करने से दोष नहीं लगता, परंतु करने से महाफल है। [अकरणे न दोषः, करणे महत्फलम्।] होम और ब्रह्मभोजन के बीच में मार्जन किया जाए। यदि इस की संख्या होम समान रखी जाए तो प्रसिद्ध अंग-क्रम की पद्धति अनुसार तर्पण-दशांश मार्जन और मार्जन-दशांश ब्रह्मभोजन संख्या की संगति भी बन जाती है।]

[ग] **मार्जन प्रयोग** - तर्पणान्ते जलस्थ इष्ट देवता का विसर्जन और समाप्ति -संकल्प करके मार्जन करे। मार्जन स्वतंत्र अंग होने के कारण आचमन से ही प्रारंभ करे, जैसे - आचमन, प्राणायाम, मार्जन-संकल्प और कलशार्चन करके अपने सहस्रदल-चक्र में इष्ट देवता का ध्यान-मानसपूजा करके, मस्तक पर कुंभमुद्रा (कलशमुद्रा) - (देखो पृ. 157) बाँध कर निर्धारित संख्या में मार्जन [अभिषिंचन] करे। जैसे -

(अ) **ऋचा** - ॐ ह्रीं श्रीं, हिरण्यवर्णां....वह, श्रीं, श्रियम् अभिषिंचामि नमः।

(आ) **नाम मंत्र** - ह्रींश्रीं, ॐ वरदायै नमः, श्रीं, श्रियम् अभिषिंचामि नमः।

(इ) **परिवारदेवता** - ॐ ह्रीं श्रीं, पद्मायै नमः, पद्माम् अभिषिंचामि नमः। [नमोन्तं मंत्रमुच्चार्य तदन्ते देवताभिधाम्। द्वितीयान्तामहं पश्चाद् अभिषिंचा - म्यनेन तु ॥ अभिषिंचेत् स्वमूर्धानं तोयैः कुंभाख्य-मुद्रया इति नीलतंत्रे ॥ मूलमंत्र-मुच्चार्य अमुक-देवताम् अभिषिंचामि नमः इति - [पुरश्च. पृ. 546]।

[5] ब्रह्मभोजन - [**वसु.** — अनुष्ठान की निर्धारित संख्या में ब्राह्मणों का सत्कार करके, उनके शरीर में अपने इष्टदेव की भावना रख कर, उनका पूजन करके, श्रद्धापूर्वक विविध प्रकार के स्वादिष्ट भोजन द्वारा तृप्त करके अच्छी दक्षिणा देकर, बाद में सपरिवार यज्ञशिष्ट भोजन [प्रसाद] ग्रहण करे।]

[6] सुवासिनीपूजा - [**वसु.** — ब्रह्मभोजन की पद्धति अनुसार पूजन आदि सम्पन्न करके वस्त्र-अलंकार अवश्य दे।]

[7] दान - [**वसु.** — अनुष्ठान निरूपण में कहा गया दान करे। वह आदर एवं श्रद्धापूर्वक करे। दक्षिणा पारिश्रमिक है, दान नहीं है। विधिहीनम् असृष्टान्नं मंत्रहीनम् अदक्षिणम् ।..... यज्ञं तामसं - भ.गी. 17-13]

***

3 श्रीसूक्त का विनियोग और न्यास

[क] विनियोग के अंग

विनियोग परंपरा ऋग्वेदकालीन है। वैदिक और तांत्रिक दोनों परंपराओं में विनियोग मिलते हैं, जिनमें ऋषि, छन्द, देवता और मंत्र के उपयोग का निर्देश अनिवार्य रूप से मिलता है।

पू. श्री आद्य जगद्गुरुजी ने प्रपंचसार में [6-2; 3] ऋषि, छन्द और देवता का स्वरूपनिरूपण किया है और पद्म. गुरुजी ने प्रपंच. के 'विवरण' अथवा 'प्रयोग क्रम' [उस विवरण की विवृति] में जरूरी स्पष्टताएँ की हैं - [प्रपंच. पृ. 79 और 508-10]।

ऋषि - ऋषि शब्द की निष्पत्ति ऋ (गतौ) और षिङ् [प्रापणे] धातुओं से हुई है। गुरुत्व के कारण ऋषि को मस्तक में धारण किया जाता है- [प्रपंच]।

पू. पद्म. गुरुजी स्पष्टता करते हैं कि, [क] मंत्र-द्रष्टा ऋषि आदिगुरु है। स्वयं परमात्मा विभिन्न ऋषियों के स्वरूप में मंत्र-संप्रदाय को आगे बढाता है। गुरु के प्रति शिष्य की विनम्रता होने के कारण ऋषि-न्यास का स्थान मस्तक है। आराधना की समाप्ति तक देवता, गुरु और स्वआत्मा की एकता का अनुसंधान टिकाना [अति] आवश्यक है - [पद्म. प्रपंच. पृ. 508-9]। [ख] मंत्रोदय-क्रम - [यह एक योगक्रिया है।] शिष्य का आत्मतेज मूलाधार से निकल कर द्वादशान्त में स्थित परमात्मा-स्वरूप गुरु को प्राप्त करके, उस गुरुजी के पास से मंत्र को ग्रहण करके, वह [आत्मतेज] आखिर मूलाधार में वापस आ जाता है - [पद्म. पृ. 509]।

छन्द - छन्द शब्द छद् [इच्छायाम्] और दाण् [दाने] धातु से निष्पन्न हुआ है। इच्छां ददाति इति छन्दः। छन्द का वाच्यार्थ मंत्राक्षर है, [इस लिए] अक्षरात्मक होने के कारण छन्द का स्थान जिह्वा है - [प्रपंच.]।

देवता - मंत्रदेवता अपने उपासक की आत्मा को देवताभाव प्रदान करता है, इस अर्थ में [वह] देवता है। [देवता का] अनुसंधान बुद्धि द्वारा ही होने के कारण उसका [देवता का] स्थान हृदय है - [प्रपंच.]। देवता शब्द दिव् [क्रीडा-विजिगीषा - व्यवहार - द्युति - स्तुति - मोद - मद - स्वप्न - कान्ति - गतिषु; दिवादि] धातु से और तक्षु या त्वक्षु [तनुकरणे, भ्वादि] धातु से निष्पन्न हुआ है - [पद्म. प्रपंच. पृ. 79]।

ऋष्यादि-न्यास की पद्धति - [क] **ऋषि** - शिष्य का आत्मतेज मूलाधार से गति करके द्वादशान्त स्थित गुरुस्वरूपी परमात्मा की प्राप्ति कर रहा है, ऐसी भावना ऋषि न्यास में की जाए। [ख] **छन्द** - उस गुरुजी के पास से मंत्रमय तेज को ग्रहण करके, वह [आत्मतेज] वाणी के मार्ग में उतर रहा है, ऐसा भाव छन्दोन्यास में करें। [ग] **देवता** - मंत्रदेवतात्मक वह तेज सत्शिष्य के हृदय में [शिष्य की] आत्मारूप बन गया है, ऐसा भाव देवतान्यास में करें। [इस तरह] गुरु, देवता और स्वआत्मा का अनुसंधान किया जाए - [पद्म. पृ. 510; 509]। [गुरु को परमात्मा समझें, मनुष्य नहि।]।

[**वसु.** — **पापदहन** - [क] शिष्य का आत्मतेज मूलाधार से निकल कर द्वादशान्त में स्थित गुरुस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होता है । वहाँ (गुरुस्वरूपी) चिद्रूप आदित्य से वह (आत्मतेज) मंत्रमय अमृत को प्राप्त करता है और शिष्य के समग्र शरीर में व्याप्त उस अमृत द्वारा सर्व पापों का क्षय होता है एवं सर्व फलों की प्राप्ति होती है - (पद्म. पृ. 509) । [ख] इन योग-क्रियाओं में एक चरण को परिपक्व कर लेने के पश्चात् ही द्वितीय चरण में प्रवेश किया जाए । [ग] परशुराम-कल्पसूत्र में शांभवी और शाक्ती दीक्षा में अमृतस्रवण और पापदहन का निरूपण है - (1-35; 36) । [घ] **द्वादशान्त** = परशु. की रामेश्वर- वृत्ति में बताया है, कि सुषुम्णा नाडी में स्थित 32 कमलों में सब से नीचे एक ऊर्ध्वमुखी सहस्रदल कमल है और सब से उपर द्वादशान्त नाम का एक अधोमुखी सहस्रदल पद्म है, जिसका स्थान ललाट का ऊर्ध्व प्रदेश है - (द्वादशान्तं ललाटोर्ध्वं ललाटोर्ध्वावसानकम् इति स्वच्छन्दतंत्रे, उद्धृत रामे. परशु. 2-2; पृ. 69) ।]

शक्ति और बीज —

ऋषि आदि तीन के उपरांत शक्ति, बीज, कीलक, तत्त्व और ध्यान का भी स्मरण दुर्गापाठ आदि में मिलता है, जिनमें से कीलक, तत्त्व और ध्यान बहुत कम विनियोगों में हैं । यहाँ शक्ति और बीज की ही विचारणा अभिप्रेत है । लक्ष्मीतंत्र में इन दोनों का निरूपण 'ॐ' की विचारणा में और स्वतंत्र रूप से भी है । जैसे कि -

ॐ - लक्ष्मीनारायण ब्रह्म की परा-अहंता-नारायणी [शक्ति], सर्व जीवों के हितार्थ शब्दब्रह्ममयी होकर मातृका एवं मंत्रमय शरीर को धारण करती है । इन में वह सर्व प्रथम **ॐ** के रूप में प्रकट होती है - [लक्ष्मी. 24-1 से 4]।

ॐ की मात्राएँ - त्र्यक्षर वैष्णवधामरूप ॐकार की साढे तीन मात्राएँ हैं, जिनमें से तीन मात्राओं के रूप में इस जगत में तीन अग्नि, तीन देव, आदि तीन तीन के समूहवाले सर्व तत्त्व हैं [अर्थात् इन का अंतर्भाव इन तीन मात्राओं में होता है ।]

अर्धमात्रा - तीन मात्राओं के बाद की अर्धमात्रा स्वयं ज्योतिर्मयी, चिन्मयी, निरंजना एवं परमा कला है ।

ॐ के अवयव - ॐ के पाँच अवयव हैं - अ + उ + म् + बिन्दु + नाद । इन में से अकार से सर्व शब्दों की, उकार से तीन तेजों की और म्-कार द्वारा पृथ्वी से प्रकृति तक के [25] तत्त्वों की उत्पत्ति हुई है - [लक्ष्मी. 24-5; 6; और 18 से 22] । - (देखो पृ.43) ।

ॐकार के अवयव					शक्ति	ब्रह्म
अ	उ	म्	बिन्दु	नाद	नाद की पराकाष्ठा	नादविराम के पश्चात्
अनिरुद्ध	प्रद्युम्न	संकर्षण	वासुदेव	इन चारों का अविभाग नाद है ।	शब्द-ब्रह्ममयी शक्ति [नारायणी] है ।	नाद के विराम बाद की स्वयं स्फुटित ज्योति लक्ष्मीनारायण ब्रह्म है ।

शक्ति - **अ** से **बिन्दु** तक के चारों तत्त्वों का जो अविभाग [अव्यक्त स्थिति] है, वह नाद है और नाद की पराकाष्ठा **शक्ति** है । नाद का विराम हो जाए, उसके बाद की स्वयं-स्फुटित ज्योति लक्ष्मीनारायण ब्रह्म है, जो परमपुरुष वैष्णव धाम है - [लक्ष्मी. 24-3 से 12, पृ. 230-32] । [यह संहार-क्रम है । जबकि सृष्टि-क्रम ब्रह्म से अनिरुद्ध तक का है ।]

शान्ता शक्ति और नाद — व्यापक नारायण ब्रह्म की शान्तता अवस्था स्वयं शान्ता नारायणी है । उसके सर्जनेच्छा-लक्षण-उन्मेष को शब्द-अर्थ विभागवाला शान्त उन्मेष कहते हैं । शान्ता शक्ति का जो प्रथम उदीयमान शब्दोदय है, वह नाद [नादात्मिका] अवस्था है । द्वितीय उन्मेष बिन्दु है, जो पश्यन्ती अवस्था है । तृतीय उन्मेष मध्यमा और चतुर्थ उन्मेष वैखरी अवस्था है । [यह सृष्टि क्रम है ।] इन चारों अवस्थाओं को अनुप्राणित करनेवाली बोधात्मिका शान्ता **शक्ति** के चार उन्मेष इस तरह बताए गए हैं —

उन्मेष	चतुर्थ	तृतीय	द्वितीय	प्रथम	
नारायणी की अवस्थाएँ	वैखरी	मध्यमा	बिन्दु पश्यन्ती	नाद [परा]	नारायण शब्द-ब्रह्म
	अनिरुद्ध	प्रद्युम्न	संकर्षण	वासुदेव	

— [लक्ष्मी. 18-22 से 30] ।

[वसु. — (क) नारायणी की सूक्ष्मतर अवस्था बिन्दु है और सूक्ष्मतम अवस्था नाद है। (ख) यह व्यवस्था शारदातिलक की व्यवस्था के साथ सुसंगत प्रतीत नहीं होती है। (ग) शारदा. के अनुसार - .... शक्तिं ततो ध्वनिस्तस्मात् नादस्तस्मान्निरोधिका। ततोऽर्धेन्दुस्ततो बिन्दुस्तस्मादासीत् परा ततः । पश्यन्ती मध्यमा वाचि वैखरी शब्द-जन्मभूः-(शा. 1-111 से 12, पृ. 34-35) यह व्यवस्था अधिक स्पष्ट है।]

बीज —

बीज और नाद - जैसे दहीं में घी की स्थिति है, वैसी स्थिति मंत्र में बीज की है। बीज नाद की तरह है। सूर्य, सोम और अग्नि खण्डों से बीज उत्पन्न हुआ है। [मत्सूक्ते तानि बीजानि दध्नि सर्पिरिवाहितम्। सूर्यसोमाग्निखण्डोत्थं नादवत् पाकशासन - लक्ष्मी. 52-11]। इन में से सूर्यभाग [सूर्यखण्ड] जाग्रत् पद है; अग्निखण्ड स्वप्नपद है; परामायारूप सोमखण्ड सुषुप्तिपद है और इन्दुखण्ड तुर्यपद है। इन की स्पष्टता निम्नलिखित है -

बीज					नाद की पराकाष्ठा	नाद के विराम बाद
सूर्यखण्ड	अग्निखण्ड	सोमखण्ड	इन्दुखण्ड	नाद	शक्ति	ब्रह्म
जाग्रतपद	स्वप्नपद	सुषुप्तिपद [परामाया]	तुर्य खण्ड [इन्दु खण्ड के बाद नाद है- शा. 1.-111; -112]	शा.(1-111) के बाद नाद	नाद की संस्थिति शान्ता [शक्ति] नारायणी है	लक्ष्मीनारायण ब्रह्म

[खण्डं यदिन्दुखण्डाख्यं तुर्यं; नादस्ततः परम् । शक्तिः शान्तात्मिकावस्था नादस्यैव तु संस्थितिः ॥ ततः परं तु यद् ब्रह्म-लक्ष्मी. 52-13; 14]।

बीज से स्वर-व्यंजनोत्पत्ति - बीज के सूर्य-भाग से 6 स्वरों की, अग्नि-भाग से 4 स्वरों की और इन्दु-भाग से 6 स्वरों की उत्पत्ति हुई है। क आदि शेष वर्णों [व्यंजनों] की उत्पत्ति स्वरों से हुई है। बीज सर्वकामना-पूरक चिन्तामणि है - [लक्ष्मी. 52-11 से 15]।

[वसु. — (क) यहाँ सोम और इन्दु शब्द पर्यायवाचक प्रतीत होते हैं।

(ख) ॐकार दीक्षा प्रयोग [एक विशिष्ट योगक्रिया] – (1) ॐकार के अंग-उपांग आदि न्यास करके अपने में स्थित पुरुषोत्तम का चिन्तन करे। (2) (अ) प्रणव के अ, उ आदि अवयवों में से सर्व प्रथम अकारात्मक अनिरुद्धरूप **विश्व** का चिन्तन करे, जो जाग्रत पद का स्वामी, सर्व इन्द्रियों का प्रेरक एवं शब्द आदि विषयों का भोक्ता है। (आ) बाद में उस (विश्व) को अकार में विलीन करे ॥ (3) (अ) फिर उस अकार को अंतःकरण की वृत्तियों के प्रेरक एवं स्वप्नमार्ग में स्थित प्रद्युम्नरूप तैजस में विलीन करके, (आ) उस [तैजस] को उकार में विलीन करे। (4) उस [उ कार] को प्राणादिकों के प्रेरक, एवं संकर्षण के देह में स्थित ईश्वर-प्राज्ञ में विलीन करे। यह [ईश्वर-प्राज्ञ] सुषुप्तिमार्ग में स्थित हैं। (5) उस [ईश्वर-प्राज्ञ] को तुर्यावस्था में स्थित वासुदेव में विलीन करे, जो [वासुदेव] ज्ञान-आनन्दमय एवं अर्धमात्रात्मक है। (6) उस [तुर्य] को तुर्यातीत लक्ष्मीनारायण ब्रह्म में विलीन कर के उपासक स्वयं अहन्ता स्वरूपा नारायणी के आश्रय में आ जाए। [यह संहार-क्रम है।] इसके बाद विलोम-क्रम [सृष्टि क्रम] से जाग्रतपद में वापस उतर कर अपने शिष्य को 'ॐ' का उपदेश [दीक्षा] प्रदान करे - [लक्ष्मी. 24-24 से 33; पृ. 234-35]। ऐसे योगारूढ़ गुरु से ही ॐ की दीक्षा ले। [ग] यहाँ निरूपित 'विश्व' से 'ब्रह्म' तक की अन्तर्यात्रा का अभ्यास निर्विकल्प समाधि तक ले जा सकता है। [घ] शारदातिलक में [1-111 से 12] वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, परावाक्, बिन्दु, अर्धेन्दु, निरोधिका, नाद, ध्वनि और शक्ति ऐसा क्रम है। [ङ] निरोधिका भवेद् वह्निः, अर्धेन्दुः स्यान्निशाकरः । अर्कः स्याद् उभयोर्योगे बिन्द्वात्मा तेजसां निधिः । जाता वर्णाः यतो बिन्दोः शिवशक्तिमयादतः । अग्नीषोमात्मकास्ते स्युः शिवशक्तिमयाद् रवेः । येन संभवमापन्नाः सोमसूर्याग्निरूपिणः - [शा. 1-115 से 17, पृ. 36-37] निरोधिकायाः अग्निरूपत्वात् शिवस्वरूपत्वम् । अर्धेन्दोः सोमरूपत्वात् शक्तिरूपत्वम् । येन कारणेन शिवशक्तिमयाद् रवेः संभवमापन्नाः, रवेः शक्तिमयत्वम् 'अर्कः स्यादुभयोर्योगे' इत्युक्तेः । तेन सोम-सूर्याग्नि-रूपिणो भवन्ति कार्य-कारणयोः अभेदात् - राघव. शा. पृ. 36-37; .... अत एते वह्नीन्दुअर्कस्वरूपिणो रुद्रब्रह्महरमाधिपाः । शब्दसृष्ट्यन्तर्गताः निरोधिका-अर्धेन्दु-बिन्दुरूपाः । शक्तेरेव अवस्थाविशेषा ज्ञेयाः । एषाम् इच्छा-क्रिया-ज्ञानात्मत्वं तु शक्तितः उत्पन्नत्वात् - [राघव., शा. पृ. 10]। [च] आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दुसमुद्भवः।

परशक्तिमयः साक्षात् त्रिधाऽसौ भिद्यते पुनः । बिन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः । बिन्दुः शिवात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः । समवायः समाख्यातः सर्वागम-विशारदैः – [शा. 1-7- से 9, पृ. 10] । तदुक्तं प्रयोगसारे – बिन्दुः शिवात्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम् । तयोर्योगे भवेन्नादस्तेभ्यो जातास्त्रिशक्तयः ॥ रौद्री बिन्दोः समुद्भूता ज्येष्ठा नादादजायत । वामा बीजाद् अभूच्छक्तिस्ताभ्यो देवास्त्रयोऽभवत् – [राघव. शा. पृ. 10] । [छ] श्रीँ मंत्रे श् + र् + ई + अर्धचन्द्रः + नादः [बिन्दुः] । [श्रीविद्या. श्वास 22, पृ. 120] । बिन्दुशब्देन नादो गृह्यते जनकजन्ययोस्तयोः अभेदात् । नादबिन्द्वोः जनक-जन्यत्वम् – (श्रीविद्या. पृ. 130) ।]

[ख] श्रीसूक्त का विनियोग

[**वसु.** — इस विनियोग और न्यास विचारणा में सौभाग्य-लक्ष्मी-उपनिषद् – [उद्धृत श्री. वि. पृ. 21] ; लक्ष्मी तंत्र- [36=74 और 50=21]; भगवान् श्री आद्य जगद्गुरुरचित प्रपंच.- [12-36 से 40; पृ. 165]; सारसंग्रह – [उद्धृत श्रीविद्या. श्वास 22; पृ. 131-32; 137] ; पू. विद्यारण्ययतिजी- [देखो श्रीविद्या]; मेरु-तंत्र- [उद्धृत पुरश्च. पृ. 940]; राघव-व्याख्या में उद्धृत अनामी ग्रंथ- [शा. 8-160; पृ. 245-46]; विद्या.- [श्रीवि. पृ. 20]; पृथ्वी.- [श्रीवि. पृ. 1; 2]; शतानन्दवृत्ति- [श्रीवि. पृ. 3]; श्रीकण्ठभाष्य- [श्रीवि. पृ. 2] और पू. शर्मा परमगुरुजी- [श्रीविस. पृ. 7-8] के मतों का उपयोग किया गया है ।]

(1) ऋषि

उपर्युक्त ग्रंथों में श्रीसूक्त के ऋषियों की तीन परंपराएँ मिलती हैं, जैसे कि – **[क] लक्ष्मी और आनन्द आदि** - (1) सौभाग्य लक्ष्मी. में आनन्द आदि नाम समास में होने के कारण 'इन्दिरासुताः' पद ऋषिवाचक भी और विशेषण भी हो सकता है ।; (2) पू. श्री आद्य जगद्गुरुदेव ने लक्ष्मी और आनन्द आदि चार [कुल मिला के पाँच] ऋषियों का स्पष्ट उल्लेख किया है - [सूक्तेषु प्रथमतरे स्वयं मुनिः स्यात्....... आनन्दः कर्दमश्चैव चिक्लीतश्चेन्दिरासुतः ॥]; (3) सारसंग्रह में श्रीपुत्राः पद समास में है - [लक्ष्मीर्मुनिर्मतः...... आनन्दकर्दमचिक्लीतश्रीपुत्रा अमी मताः ॥] (4) मेरुतंत्र में आनन्द आदि तीन

ऋषि मिलते हैं - [लक्ष्मीर्मुनिर्मतः........ चतुर्दशानां शेषाणामानन्दः कर्दमस्तथा। चिक्लीत-लक्ष्मीतनयाश्चत्वारो मुनयो मताः ॥] यहाँ 'लक्ष्मीतनयौ' ऐसा द्विवचन नहीं होने के कारण, उसे विशेषण मानना युक्ति-संगत है । (5) पू. राघवजी द्वारा उद्‌धृत श्लोकों में इन्दिरापुत्राः ऐसा विशेषण प्रयुक्त हुआ है । यदि मुनिपरक अर्थ अभिप्रेत होता तो एकवचन [इन्दिरापुत्रः] होता - [आद्यायाः श्रीऋषिः प्रोक्तस्तत आनन्दकर्दमौ । चिक्लीतश्चेन्दिरापुत्रा मुनयः...... ।] [**वसु.** – [क] यहाँ मूल ग्रंथ का नामनिर्देश नहीं है; [ख] यदि विद्वद्‌गण का निर्णय विशेषणपरक आए तो दो पक्ष बनेंगे - (1) जगद्‌गुरु सम्मत लक्ष्मी एवं आनन्द आदि चार वाला पक्ष और (2) लक्ष्मी एवं आनन्द आदि तीनवाला पक्ष ।]

[ख] केवल लक्ष्मी - लक्ष्मी तंत्र के अनुसार केवल एक ही ऋषि लक्ष्मीजी है - [अन्यद् मदार्षकं सूक्तम् - 36=74; पृ. 412] ।

[ग] केवल आनन्द आदि - पू. विद्यारण्ययतिजी; विद्या.; पृथ्वी. और पू. शर्मा परमगुरुजी ने लक्ष्मीरहित आनन्द आदि ऋषियों का उल्लेख एक ही समास में किया है । [इस लिए यहाँ 'इन्दिरासुताः' पद स्वतंत्र ऋषि का वाचक है, या तीनों का विशेषण है ? इस का निर्णय विद्वद्‌गण करे ।]

(2) देवता

इन ग्रंथों में श्रीसूक्त के देवताओं की तीन परंपराएँ मिलती हैं, जैसे कि -

[क] श्री और अग्नि - पू. श्री भगवान् जगद्‌गुरुदेव ने श्री और अग्नि दो देवता बताए हैं - [श्र्यग्नी स्यातां देवते च]; जिसका समर्थन सारसंग्रह, पू. विद्यारण्ययतिजी, मेरुतंत्र, विद्या., पृथ्वी. और शतानन्दवृत्ति में मिलता है । शतानन्दवृत्ति में **'श्री'** को **'दुर्गामहालक्ष्मी'** कहा है । राघवजी ने उद्‌धृत किए श्लोकों में 'अग्नी देवौ प्रकीर्तितौ' विधान की संगति करने के दो विकल्प हैं - (1) यहाँ मुद्रणदोष मान कर 'श्र्यग्नी देवौ' पाठ होना चाहिए; (2) अथवा 'दो प्रकार के अग्नि' एसा अर्थ माना जाए । द्वितीय विकल्प के स्वीकार से उसे एक स्वतंत्र परंपरा [दो अग्निवाली] माननी पडेगी ।

[ख] केवल श्री – लक्ष्मी-तंत्र में एक ही श्री देवता बताया है - [देवता सकलाधारा विष्णुपत्न्यहमीश्वरी - 50-21; पृ. 608] ।

[ग] केवल अग्नि - सौभाग्य-लक्ष्मी-उपनिषद् में एक देव **'अग्नि'** बताया

है, जिसका अनुसरण श्रीकण्ठ भाष्यकार ने व्यापक अर्थ में किया है, जैसे कि- ['हिरण्यवर्णाम्' इति सूक्तेन अग्निं प्रार्थयेत् । अग्निस्तुष्टो यजमानाय श्रियं यच्छति । अग्निस्तु रुद्र एव । रुद्रो हि पुरुषः । पुरुषो हि महादेवः शिवः । तस्य पत्नी भगवती उमा एव लक्ष्मीः । तथा च अग्निस्वरूपिणः परमेश्वरस्य उपासनेन तच्छक्तिविभूतेः महालक्ष्म्याः प्राप्तिः भविष्यति इति सिद्धम् । आरोग्यं भास्करादिच्छेच्छ्रियमिच्छेद्धुताशनात् । ऐश्वर्यमीश्वरादिच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् इति- श्रीवि. पृ. 2] ।

(3) छन्द

यहाँ छन्दों के संदर्भ में सौभाग्य., प्रपंच., सारसंग्रह, विद्यारण्य यतिजी, मेरु. विद्या. पृथ्वी. राघव और शर्मागुरुजी में एकमत्य है, जैसे कि- एक से तीन ऋचाओं का अनुष्टुप्, चौथी का बृहती, 5; 6 का त्रिष्टुप्, 7 से 14 का अनुष्टुप् और पंद्रहवीं का प्रस्तारपंक्ति छन्द है । [वसु.-पू. शर्मागुरुजी में चतस्रो की जगह तिस्रो होना चारिए, वहां मुद्रणदोष है ।]

(4) बीज, शक्ति और कीलक

इन तीनों के निर्देश में भिन्न भिन्न मत हैं, जैसे कि –

[अ]

बीजम्	शक्तिः	कीलकम्	ग्रन्थनाम
हिरण्यवर्णामिति	कां सोस्मितामिति ।	------	सौभाग्य.
"	"	------	पद्म.[प्रपंच. पृ. 165]
"	"	बिन्दुः कीलकम्	शर्मा [श्रीविस. पृ. 7]
"	तां म आवह जातवेद इति	कीर्तिमृद्धिं ददातुमे इति	पृथ्वी. [श्री. वि. पृ. 1]
आदिः= [प्रथमा ऋचा]	अन्तः [15 वी ऋचा]	-------	राघव. [शा. पृ. 245]

[आ]

व्यंजनानि बीजानि	स्वराः शक्तयः	बिन्दवः कीलकम्	मेरु. [पुरश्च. पृ. 940]
अव्यक्तानि बीजानि	" "	" "	विद्या. [श्रीवि. पृ. 20]
श्रीं बीजम्	ह्रीं शक्तिः	क्लीं "	शतानन्द. [श्री वि.पृ. 3]

उपर्युक्त मतों में विद्या. और मेरु. वाला मत लक्ष्मीतंत्र से अधिक सुसंगत प्रतीत होता है । [वसु. – मैं इनकी विचारणा एक लघुनिबंध में करूँगा ।]

[ग] श्रीसूक्त-न्यास

(1) न्यासक्रम - श्रीसूक्त न्यास के क्रम की दो परंपराएँ [इन ग्रंथों में] मिलती हैं, जैसे कि - (अ) मंत्रन्यास के बाद हृदयादि और (आ) हृदयादि के बाद मंत्र-न्यास ।

(अ) मंत्रन्यास के बाद हृदयादि - भगवान् श्री आद्यजगद्गुरुजी संमत पंद्रह ऋचात्मकमंत्रन्यास के बाद हिरण्मयी आदि 6 नाममंत्रों से हृदयादि करने की परंपरा का समर्थन सारसंग्रह और राघव. में मिलता है । यह क्रम प्राचीन है ऐसा अनुमान है, फिर भी वह मुख्य रूप से वर्तमान काल में प्रचलित नहीं है । राघव उद्धृत 6 नाममंत्रों का पाठ प्रपंच. से भिन्न हैं जैसे - हिरण्मयी, चन्द्रा, रजतस्त्रजा, सुवर्णस्त्रजा, हिरण्यस्त्रजा और हिरण्यवर्णा - [राघव.] ।

(आ) हृदयादि के बाद मंत्रन्यास - सौभाग्य लक्ष्मी. में केवल क्रम ही बदला हुआ है । इस क्रम का समर्थन विद्यारण्यतिजी ने किया है । यह क्रम वर्तमान काल में मुख्यतः प्रचलित है ।

(2) करादि-हृदयादि-न्यासमंत्र - **(अ)** इन न्यासमंत्रगत नामों की दो परंपराएँ हैं - (क) शांकर मत में हिरण्मयी, चन्द्रा, रजतस्त्रजा, हिरण्यस्त्रजा, हिरण्या और हिरण्यवर्णा हैं । इन नामों का समर्थन सौभाग्य-लक्ष्मी., सारसंग्रह और विद्यारण्ययतिजी में मिलता है । (ख) जबकि, विद्या. भाष्य में प्रथम ऋचा में प्राप्त 6 नाम हैं, जिन का समर्थन पृथ्वी. और शर्मा गुरुजी में मिलता है । विद्या. भाष्य में [पृ. 20] ये नाम क्रमशः नहीं हैं, जबकि पृथ्वी और शर्मागुरुजी में क्रमशः हैं । पृथ्वी. में 'जातवेदो म आवह' नहीं है, इस अर्थ में वहाँ प्रथम ऋचा अपूर्ण रही है, जबकि शर्मा गुरुजी में पूर्णऋचा है । इस लिए यहाँ इन का - (शर्मागुरुजी) अनुसरण करना युक्ति-संगत रहेगा ।

(आ) करादि हृदयादि में संयोजन - (क) विद्या. भाष्य में प्रत्येक करादि-हृदयादि मंत्र के अंत में 'महालक्ष्म्यै नमः' का संयोजन है । (ख) पृथ्वी. में 'ॐ नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै' विशेषण जोडने का विधान है । (ग) विद्या. भाष्य में छठा न्यासमंत्र 'जातवेद से आद्यरूपिण्यै महालक्ष्म्यै' है । [**वसु.** - 'आद्यरूपिण्यै' विशेषण 'श्री का आद्यरूप जातवेदस्' है', इस अर्थ का सूचक लगता है । संभव है, इसी कारणवशात् पू. विद्यारण्ययतिजीने लक्ष्मीजी के प्रत्येक उपचार

में श्रीसूक्त-ऋचा के बाद 'जातवेदसे.' मंत्र रखा हो । इस के बाद नमो देव्यै. [केवल प्रथम मंत्र] मंत्र जोड कर 'नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत्' [वैकृतिक रहस्य-23] नियम का भी पालन किया है - [श्रीविद्या. पृ. 138-41] । [लक्ष्मी-अर्चन में तीनों मंत्रों का उपयोग अधिक फलप्रद है ।] उन्हों ने 'जातवेदस्.' मंत्र की स्वतंत्र उपासना भी बताई है - (देखो पृ. 64 से)]

[3] श्रां श्रीं श्रूं, श्रैं, श्रौं श्रः से करादि-हृदयादि - पू. विद्यारण्ययतिजीने प्रपंचोक्त 6 नाम-मंत्रों से करादि-हृदयादि करके मंत्रन्यास के बाद श्रां श्रीं आदि 6 से पुनः हृदयादिन्यास का क्रम बताया है - [श्रीविद्या. पृ. 137], जबकि विद्या. भाष्य में करादि-हृदयादि करके, **श्रां श्रीं** आदि से पुनः करादि- हृदयादि के बाद, मंत्रन्यास का क्रम बताया है। शतानन्द. में केवल श्रीं [श्रां होना चाहिए] इत्यादि से हृदयादि बताए हैं, अन्य न्यास नहीं है ।

[4] कर-हृदयादि और मंत्रन्यास की क्रम-भिन्नता का समन्वय - करादि-हृदयादि के बाद मंत्रन्यास करने की वर्तमानकालिक प्रणाली के साथ शांकरमत का समन्वय करने के प्रयास इस तरह हैं - (क) पृथ्वी. में 'ॐ श्रीं' से जल द्वारा तीन बार करशुद्धि करके ऋचामंत्रन्यास और करादि-हृदयादि का क्रम है। (ख) पू. शर्मा गुरुजीने प्रथम ऋचागत 6 नाममंत्रों से करादि-हृदयादि करके प्रपंच-संमत मंत्रन्यास के बाद [करादि] हृदयादि का क्रम रखा है, जिसके द्वारा उन्हों ने वर्तमान प्रणाली के साथ शांकरमत का भी पूर्णरूप से सुचारु समन्वय किया है । इस लिए यहाँ इसी क्रम का अनुसरण करना युक्ति संगत रहेगा। -(देखो पृ. 4 से) (ग) पू. शर्मा गुरुजीने इसके बाद 32 श्रीमंत्रों में से कहीं कहीं दो दो की जोडी बना कर उपासक के 26 अंगों में न्यास भी बताया है। [**वसु.** — लक्ष्मी-अर्चन में आवरण-पूजा से पहले देवी के (26-32) अंगों की पूजा हो सकती है ।]

[5] पू. शर्मा गुरुजी प्रोक्त श्रीसूक्त न्यास - ['ॐ श्रीं' बीजों से जल द्वारा तीन बार कर शुद्धि करें - पृथ्वी.] इसके बाद विनियोग एवं ऋष्यादि करके (क) प्रथम ऋचागत 6 नाम मंत्रों से करादि-हृदयादि, (ख) मंत्रन्यास, (ग) प्रपंच प्रोक्त 6 नाम मंत्रों से पुनः करादि-हृदयादि, और [26 मंत्रों से] स्व-अंगन्यास करके अन्य न्यास भी करे। (घ) प्रथम ऋचागत 6 मंत्रों से करादि हृदयादि ग्रंथ के प्रारंभ में नहीं दिये हैं, इस लिए यहाँ दिये हैं, जैसे कि - [करादि करके हृदयादि करे ।]

हिरण्यवर्णां	अंगुष्ठाभ्यां	नमः ।	हृदयाय नमः ।
हरिणीं	तर्जनीभ्यां	" ।	शिरसे स्वाहा ।
सुवर्ण रजतस्त्रजां	मध्यमाभ्यां	" ।	शिखायै वषट् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं	अनामिकाभ्यां	" ।	कवचाय हुम् ।
लक्ष्मीं	कनिष्ठिकाभ्यां	" ।	नेत्रत्रयाय वौषट् ।
जातवेदो म आवह,	करतल करपृष्ठाभ्यां	" ।	अस्त्राय फट् ।

[**वसु. – संयोजन** - (अ) यहाँ प्रत्येक न्यासमंत्र के पूर्व में "ॐ नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै" मंत्र की योजना अधिक फलप्रद रहेगी । (आ) सब से आगे **श्रीं ह्रीं** को भी रख सकते हैं । (इ) **श्रां श्रीं** आदि की भी योजना हो सकती है जैसे कि, श्रीं ह्रीं, ॐ नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै, श्रां हिरण्यवर्णां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि । (ई) यहाँ प्रथम ऋचा से करादि-हृदयादि का स्वीकार होने के कारण स्वतंत्र ऋचोपासना में भी उस उस ऋचा से करादि-हृदयादि कर सकते हैं अथवा पंद्रहवी ऋचा की पद्धति अनुसार षडंग न्यास करे ।]

***

4 लक्ष्मीपूजा

[अ] प्रातःकर्म

[**वसु.** – सन्निष्ठ उपासना में उपचार और हवनीय द्रव्यों के निर्माण आदि सभी कर्म मूलमंत्रजप पूर्वक करना अनिवार्य है । अपनी समग्र दिनचर्या इष्टदेव की अनुज्ञा लेकर ही करे । गुजरात में प्रचलित 'लक्ष्मीनारायणव्रत', उपासनाकर्म में अत्यधिक सहायक है ।]

[क] निद्रात्याग - पू. श्री पद्म. गुरुजी स्पष्टता करते हैं कि, निद्रा के पहले जो मंत्र चलता था, उसी का स्मरण करते हुए ब्राह्म मुहूर्त में अर्थात् रात्रि के दसवे मुहूर्त में निद्रात्याग करके, गत दिन और आगामी दिन के सर्वकर्म इष्टदेव को अर्पण करके इष्टदेव का ध्यान करे और स्वयं हंसरूप बन कर हंसपूजा [अजपाजप] करे-[पद्म. प्रपंच. पृ. 77; और 504-5] । [**वसु.** - (अ) मुहूर्त = रात्रिकाल का पंद्रहवा भाग । [आ] पद्म. गुरुजी के मत में दसवा मुहूर्त अर्थात् रात्रिकाल के तीन भाग करके द्वितीय भाग के अन्त पहले का समय अथवा रामेश्वरवृत्ति के मत में सूर्योदयपूर्व की 144 मिनट से ब्राह्ममुहूर्त का प्रारंभ होता है-रामे. परशु. 3-2; पृ. 87]

अपने सहस्रदल कमल में स्वगुरु का ध्यान करके, उस कमल की कर्णिका में स्थित स्वगुरु-चरणों से निकली अमृतधारा से स्वशरीर पूरा भीग रहा है, ऐसा भाव करके -[परशु. 2-2], इष्ट देवता का ध्यान करे और सुषुम्णास्थित चिति के किरणों से स्वपापों को जलाकर - [परशु. 1-36; रामे. पृ. 57] यथाशक्ति मूलमंत्र का जप करके, 21,600 हंस मंत्रजप का संकल्प करे - [लक्ष्मी. 24-58 से 63] । पश्चात् प्रह्लाद, नारद आदि पुण्यश्लोक पुरुषों का स्मरण करके [आथ. पृ. 130], दाहिने हाथ का दर्शन करके, [उस समय चलती नाडी तरफ के पैर से] पृथ्वी माता का स्पर्श करे - [आह्निक. वि. 40; 43] ।

[ख] फिर शौचक्रिया एवं दातून करके स्नान करे - [आह्निक. वि. 45; 61; श्रीविद्या. श्वास 20, पृ. 33-34] ।

[ग] स्नान - वैदिक स्नान-तर्पण करके तांत्रिक स्नान-एवं तर्पण करे । **तांत्रिक स्नान** - लक्ष्मीतंत्र के अनुसार **(1) मलध्वंसी स्नान** - [सामान्य विधि से स्नान करके] शरीरमल को दूर करने के लिए मिट्टी एवं गन्धलेपन करके स्नान करे । (अ) **आन्तरशुद्धि** - प्राणायाम से नाडी-शुद्धि करके अपने षट्कोशात्मक शरीर के पृथ्वी आदि तत्त्वों को अपने अपने कारण में विलीन करके स्वयं लक्ष्मीमय एवं नारायणमय बन कर, अपने शरीरपिण्ड को भस्मीभूत करके उस भस्म के केवल सात्त्विक भाग से अपने शरीर का पुनर्निर्माण क्रमशः करे - [लक्ष्मी.; 34-93 से 109] । (आ) **बाह्यशुद्धि** - मृत्तिका के प्रथम भाग से **'फट्'** मंत्र से दिग्बन्ध करे। मध्य भाग को मूलमंत्र से अभिमंत्रित करके जल में डाले और अंतिम भाग को षडंगमंत्रों से अभिमंत्रित करके अपने अंगों पर लेपन करके स्नान करे - [लक्ष्मी, 34-110 से 20; पद्म. प्रपंच 6-1, पृ. 77] । मृत्तिका की तरह उसी क्रम से अभिमंत्रित जल की क्रमशः तीन अंजलि स्वमस्तक पर डाल कर - [लक्ष्मी. 34-120 से 21], फिर (दो से अधिक) श्रीसूक्त-ऋचाओं से तीन बार अभिषेक करे - [प्रपंच. 12-50] । [**वसु.** — शांकर-मत में प्रत्येक ऋचा स्वतंत्र सूक्त है । पांच पाँच ऋचाओं से तीन अभिषेक करने से एक आवृत्ति हो जाएगी ।] । **(2) मंत्र स्नान** - न्यास- कर्म मंत्र-स्नान है । [वहाँ न्यास प्रयोग नहीं बताया है ।] **(3) ध्यानस्नान**- जिन के अंक में लक्ष्मीजी स्थित है, ऐसे पुण्डरीकाक्ष के चरणों

से निकली [अमृत] धारा से अपना आन्तर-बाह्य शरीर भीग गया है, ऐसा ध्यान एक से तीन बार करे। ऐसा **ध्यानस्नान** त्रिकाल में करे। जल स्नान, मंत्र स्नान और ध्यान स्नान उत्तरोत्तर सौ सौ गुना अधिक फलप्रद हैं। (4) स्नानांगवैदिकतर्पण के बाद तांत्रिक तर्पण करके इष्ट देवता लक्ष्मीनारायण और अस्त्र को पूरक प्राणायाम द्वारा स्वहृदय में स्थापित करें- [लक्ष्मी. 34-94 से 96 और 122 से 27]।

स्नानांग तांत्रिक तर्पणप्रयोग –

[सव्य] ॐ [ह्रींश्रीं] श्रीमयदेवेभ्यो नमः, श्रीमयदेवान् तर्पयामि नमः। [तीन अंजलि।]
[नीवि] ॐ [ह्रींश्रीं] " ऋषिभ्यो नमः " ऋषीन् तर्पयामि नमः। "
[अपसव्य] ॐ [ह्रींश्रीं] " पितृभ्यः स्वधा, " पितॄन् तर्पयामि स्वधा। "

[प्रणवाद्यैर्नमोन्तैश्च नामभिर्मन्मयान् सुरान्। ऋषींश्च तर्पयित्वाथ स्वधान्ते तर्पयेत् पितॄन् - [लक्ष्मी. 34-125 से 26]; मूलमंत्रं समुच्चार्य मंत्रान्ते देवताभिधाम्। तर्पयामि नमः प्रोच्य तर्पयेत् कुलनायिकाम् - (पुरश्च. पृ. 546)]।

[ध] वस्त्रधारण - (1) परिधास्यै. [पा.गृ. 2-6-20] मंत्र से अधोवस्त्र धारण करके द्विराचमन करे। (2) यशसा. [पा.गृ. 2-6-21] मंत्र से उत्तरीय वस्त्र धारण करके द्विराचमन करे - [पा.गृ. जयभा. पृ. 226; और 394]।

[ङ] सन्ध्या - वैदिकी सन्ध्या करके तांत्रिकी सन्ध्या करे।

अति संक्षिप्त तांत्रिकी सन्ध्या - शिरःप्रोक्षण और अघमर्षणान्ते सूर्यमण्डलस्था सनारायण लक्ष्मीजी को अर्घ्य देकर लक्ष्मीगायत्री का जप करे - [श्रीविद्या. श्वास 20, पृ. 35-36]।

[च] नित्य तर्पण - ब्रह्मयज्ञ के बाद वैदिक तर्पण करके तांत्रिक तर्पण करे - [प्रातर्होमानन्तरं वा, तर्पणात्पूर्वं वा, वैश्वदेवान्ते वा, सकृद् ब्रह्मयज्ञं कुर्यात्- आह्निक वि. 352, पृ. 166; । तर्पणं नद्यादौ गृहाद् बहिः कार्यमिति रामेश्वरः - परशु. 2-4; पृ. 72]।

तांत्रिक तर्पण प्रयोग - [**वसु.** - प्रक्षाल्य पाणिपादं, कुशोपग्रहो, बद्धशिखी, आचम्य, (पा. गृ., त्रिकण्डिकास्नानसूत्रम् पृ. 390) प्राणानायम्य, कलशार्चनं कृत्वा, तस्माद् आवश्यकं जलम् अन्य-विस्तृतताम्रादिपात्रे मूलेन प्रपूर्य] तज्जले

स-अंग-आवरणां सनारायणां लक्ष्मीं तज्जलस्थ कल्पित-यंत्रे ध्यात्वा जलमयोपचारैः अभ्यर्च्य [जले देवं समावाह्य पाद्याद्यैरुदकात्मकैः । संपूज्य विधिवद् भक्त्या परिवारसमन्वितम् ॥ एकैकम् अंजलिं तोयं परिवारान् प्रतर्पयेत् । ततो होमदशांशेन तर्पयेत् पुरुषोत्तमम्-इति गौतमीये - 14-87; 88, पृ. 112] । आवरण-देवताभ्यः एकैकमंजलिं दत्वा, कलशजलेन, तथैव मूलेन 108/54/28 वारं वा इष्टदेवतां तर्पयेत् । तद्यथा - ॐ ह्रीं, श्रीं हिरण्यवर्णां..... वह श्रीं; श्रियं तर्पयामि नमः । - इति पद्म. पद्धत्या यथा संख्याकं तर्पयेत् ।]

इस के बाद शांकर संमत 32 श्रीमंत्रों से तर्पण करे, जैसे कि श्रीं ह्रीं ॐ वरदायै नमः सनारायणां श्रियं तर्पयामि नमः । [**वसु.** - (क) यदि अनुकूलता हो तो 53 श्रीमंत्रों से भी तर्पण करे। इस में अंतिम श्रीमंत्र 'सूर्यायै.', की द्विरावृत्ति करने से 54 की संख्या होगी । 108 के लिए 53+53-106 बार तर्पण करके सूर्यायै. की द्विरुक्ति की जाए । आवरण देवताओं का तर्पण-जैसे कि [ॐ ह्रीं श्रीं] श्रां हृदयाय नमः हृदयशक्तिं तर्पयामि नमः इत्यादि । हृदयादि से भिन्न आवरण देवता-तर्पण में जैसे - [ॐ ह्रीं श्रीं] पद्मायै नमः पद्मां तर्पयामि नमः इत्यादि। (ख) तर्पण में देवता के मुख-कमल में तीर्थजलरूप परम अमृत पिलाया जाता है, ऐसा भाव करते रहना है ।] [ग] तर्पण के अंत में देवता को स्वहृदय में और तीर्थ को सूर्य में विलीन करके स्वगुरु, दिग्पाल और ग्रहों को प्रणाम करे, मौन रख कर स्वइष्टदेव का स्मरण करते हुए अपने घर आए [श्रीविद्या. श्वास 20, पृ. 36] । [घ] श्रीविद्या. तंत्र में प्रधानदेव-तर्पण के बाद आवरणदेव-तर्पण का क्रम है [पृ. 36] । अर्थात् दोनों विकल्प मान्य हैं ।]

[आ] लक्ष्मी अर्चन

[1] द्वारपूजा - सूर्य को अर्घ्य देकर, [बहिर्द्वारमध्ये भूमिस्थ क्षेत्रपाल की और द्वारस्थ देवताओं की पूजा के बाद प्रवेश करके - [लक्ष्मी. 37-43; और पद्म. प्रपंच. 6-1; पृ. 77], नैऋत्य में क्षेत्रपाल की [मं. महो. 21-71] एवं वास्तु की, और ईशान में दीपनाथ भैरव की पूजा करके पूजा स्थान में आकर भूशुद्धि करके, आसन विधिपूर्वक आसन ग्रहण करे ।

[2] न्यास - हाथ पैर धोकर, दाहिने हाथ में कुशपवित्र और वाम में कुशोपग्रह करके, शिखा बाँध कर [पा.गृ. स्नानसूत्रम्, पृ. 391] आचमन, प्राणायाम करके

[पुण्याहवाचन कराके - शा. 4-16], दीपशिखा का स्पर्श करके, स्ववाम भाग में तीन गुरुओं को, दक्षिण में गणेश और स्वअग्र में प्रधान देवता को प्रणाम करके, ते सर्वे विलयं यान्तु. आदि मंत्र से रोगादि क्लेशों को ईशान कोण में दूर फेंक कर दश दिग्बंध करके, तीन वह्नि-प्राकारों में अपने को सुरक्षित बना कर, शान्तिपाठ, तीन प्राणायाम करके, भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, (मानसिक) अन्तर्मातृका, बहिर्मातृका, कलामातृका करके, श्रीसूक्त-विनियोग, ऋष्यादिन्यास, प्रथम ऋचागत 6 नाम मंत्रों से करादि - हृदयादि, श्रीसूक्त-मंत्रन्यास, प्रपंचोक्त 6 नाम मंत्रों से करादि-हृदयादि, 26 श्रीमंत्रों से स्वदेहे अंगन्यास करके, मण्डूकादि पीठ न्यास करके, स्वहृदयकमल के केसर भाग में पीठ शक्तियों का न्यास करके, इष्टदेवता का ध्यान करे।

[3] ध्यान - लक्ष्मीतंत्र के अनुसार स्वहृदय में नौ कमलों की भावना करके, मध्य-कमल की कर्णिका में विराजित लक्ष्मीनारायण के स्थूल, सूक्ष्म एवं पर रूप का ध्यान करे, जैसे - (क) **स्थूलध्यान** - ह्रींकार में स्थित नारायण के वाम हस्त से, उनके वामांक में विराजित नारायणी आलिंगित है और नारायणी का हाथ नारायण के कंधे पर है। (ख) **सूक्ष्मध्यान** - इन के उपर सूक्ष्म ह्रींकार में इन दोनों का सूक्ष्म दाम्पत्य है। (ग) **सूक्ष्मातिसूक्ष्म [पर] ध्यान** - इस के उपर षाड्गुण्यपूर्ण चिन्मयी परा ह्रीं में इन दोनों का पारमेश्वर-सूक्ष्मतम-दाम्पत्य है। **अथ ध्यानम्** - (क) आदौ **स्थूलम्** - मध्याब्ज-कर्णिकामध्ये भावासनगतौ स्मरेत् [38-29] ॥ वामोत्संग-निषण्णां मां देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ वामेनालिंगितां शश्वद् बाहुना परमात्मना। तदंस-लग्न- बाहुं च दिव्यपंकजधारिणीम् ॥ तारिकास्थौ च नौ ध्यात्वा स्मरेत् सर्वगतिं च नौ-[50-24; 23; 31]। (ख) ततः **सूक्ष्मम्** - आवयो स्थूलयोरूर्ध्वे स्मरेत् सूक्ष्मां च तारिकाम्। दाम्पत्यं बिभ्रतीं सूक्ष्मां लक्ष्यालक्ष्याम् इवानघाम् ॥ (ग) ततः **परध्यानम्**-तदूर्ध्वे च परां तारां पूर्णषाड्गुण्यचिन्मयीम्। दाम्पत्यं आवयोर्दिव्यं तत्परं पारमेश्वरम्-[38-78; 79]। **अथवा** पू. श्री भगवान् आद्य जगद्गुरुदेव संमत ध्यान करे-अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुंजवर्णा, करकमल-धृतेष्टाभीति-युग्माम्बुजा च। मणिमुकुट विचित्रालंकृताऽऽकल्प-जातैर् भवतु भुवनमाता सन्ततं श्रीः श्रिये वः ॥ [प्रपंच. 12-42; श्रीविद्या. श्वास 22, पृ. 137]। **पाठभेद**-अन्य ग्रंथों के पाठभेद इस तरह हैं - (अ) सौभाग्य लक्ष्मी. में - अमल-कमल-संस्था। कल्पजालैः। सकल-भुवनमाता। श्रियै नः। (आ) पृथ्वी. में-युग्माम्बुजाता। विचित्रालंकृतिः

पद्ममाला । श्रियै नः । (इ) शर्मा गुरुजी में – संस्थां और पुंजवर्णां द्वितीयान्त है । [वहाँ मुद्रणदोष है] । [**वसु.** – श्रियै और श्रिये दोनों रूप बनते हैं । श्रिये नः [=हमारे] पाठ अधिक अच्छा है ।]

[4] यंत्र लेखन – यंत्र लेखन करे अथवा धातुनिर्मित यंत्र नया हो तो उसकी प्रतिष्ठाविधि करे । फिर पात्रासादन करे । [**वसु.**–पात्रासादन का स्वतंत्र लेख होगा ।]

[5] अन्तर्याग [मानसपूजा]–[**वसु.** – इस का फल अत्यधिक होने से अवश्य किया जाए ।] स्वदेह में मण्डूकादि और पीठशक्तियों की पूजा करके, लक्ष्मीनारायण का ध्यान करके, उन दोनों के साथ अपना अभेद समझ कर, अपने मस्तक, हृदय, गुह्य, पैर और सर्वांग में पाँच पुष्पांजलि प्रदान करे । फिर मानस धूप-दीप अर्पण करके, नैवेद्य प्रसंग में अपनी कुंडलिनी-अग्नि में अहंता, असत्य, पैशुन्य, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह एवं मात्सर्य की आहुति दें [जला दें], बाकी के समग्र सांसारिक पदार्थों-भावों की पूर्णाहुति दे ।]

[6] बहिर्यागः

ततः ब्रह्मादि-सर्वतोभद्रमण्डल-देवताः सम्पूज्य, मध्ये कलशं संस्थाप्य, अर्घ्यजलेन यंत्रम् अभ्युक्ष्य, यंत्रस्य उत्तरे गुरून्, यंत्र-दक्षिणे गणेशं च सम्पूज्य, यंत्राधस्तात् मण्डूकादीन् सम्पूज्य, [मण्डूकादि-पीठ-देवताओं का होम किसी भी तंत्र-ग्रंथ में नहीं है ।] यंत्र-मध्यभागे पुष्पं मूर्ति वा संस्थाप्य [श्रीविद्या. पृ. 40-41], [यंत्रदेवताओं का आवाहन किसी भी तंत्र-ग्रंथ में नहीं है ।] वहन्नासापुटेन स्वहृदयस्थदेवतातेजः निःसार्य, करस्थपुष्पांजलौ संयोज्य, मूलं प्रजप्य, 'नारायण-सहिते महालक्ष्मि इहागच्छ' इति चक्रमध्यस्थमूर्तेः शिरसि पुष्पांजलिं प्रक्षिप्य, आवाहनादिमुद्राः प्रदर्श्य, अर्घ्योदकेन देवतां त्रिः सम्प्रोक्ष्य, देवहृदयं स्पृशन् प्राणान् प्रतिष्ठाप्य, त्रिः पुष्पांजलिं दत्वा, योन्यादिमुद्राः प्रदर्श्य आसनाद्युपचारान् दद्यात् ।

श्रीसूक्त ऋचाओं से उपचार –

(क) उपचारों की संख्या - पुरश्चर्यार्णव में 5, 10, 12, 16, 18, 36 और 64 उपचारों की संख्या उद्धृत हुई है - [पृ. 224-25]; राघवव्याख्यागत

अनामी ग्रंथ में 5, 6, 7, 10, 12, 16 और 38 उपचार संख्याएँ बताई हैं-[शा. पृ. 156]; आह्निक. में 5, 10, 16 और 38 उपचार बताए हैं - [वि. 269-74] ।

(ख) 16 उपचार - 16 उपचारों की चार स्वतंत्र परंपराएँ है, जैसे ज्ञानमाला, नागदेव, बृहत्पाराशर और वाजसनेय-शाखा संमत-[आह्निक वि. 271-74]।

(ग) 15 उपचार - **(अ)** लक्ष्मी-तंत्र में पुरुषसूक्त की 18 ऋचाएँ होने के कारण 18 उपचार और श्रीसूक्त की 15 ऋचाएँ होने के कारण 15 उपचार बताए हैं अर्थात् 'जितनी ऋचाएँ उतने उपचार' ऐसा नियम वहाँ फलित होता है। प्रपंच., सारसंग्रह, विद्यारण्ययतिजी और शर्मा गुरुजी में 15 ऋचाओं से 15 उपचार बताए हैं । पू. विद्यारण्ययतिजी और शर्मा गुरुजी में 15 से अधिक उपचार भी हैं, जिन में पू. विद्यारण्ययतिजीने 15 से अधिक उपचारों में उस उस ऋचा की पुनरुक्ति बताई है, जो युक्ति-संगत है । राघव उद्धृत ग्रंथांश में 15 ऋचाओं से 15 उपचार और समग्र श्रीसूक्त से 16 वा उपचार बताया है ।

(आ) उपचारों में शांकरमत का अनुसरण किया जाए । 15 उपचारों की तीन परंपराएँ यहाँ तालिका में बताई गई हैं, जिनमें शांकरमत [प्रपंच. 12-46; 47] और सारसंग्रह - [श्रीविद्या. श्वास 22, पृ. 132] के उपचार समान हैं। शांकरमत के आसन से नैवेद्य तक के 13 उपचार और ज्ञानमाला के [आह्निक.] आसनादि नैवेद्यान्त उपचार समान क्रम में हैं। शांकरसंमत प्रथम आवाहन उपचार नागदेव, बृहत्पाराशर और वाजसनेय में भी है - [आह्निक.] । अन्तिम उपचार उद्वासन [विसर्जन] ज्ञानमाला, नागदेव एवं बृहत्पाराशर में भी है। क्रमदीपिका में अर्घ्य के बाद पाद्य का क्रम है - (पुश्च. पृ. 227) ।

(ई) व्यस्त समस्त ऋचाओं का उपयोग - भगवान् श्री पू. आद्य जगद्गुरुजी प्रोक्त 'व्यस्तैरपि च समस्तैः' की स्पष्टता पू. पद्म. गुरुजी ने की है कि, 14 ऋचाओं से 14 उपचार करके समग्र श्रीसूक्त से प्रदक्षिणा-स्तुति- नमस्कार [15 वे उपचार के रूप में] करके शेष उपचार श्रीं बीज से करे-(प्रपंच. 12-48; पद्म. पृ. 166) ।

(उ) 15 उपचारों की तालिका [तीन परंपराएँ]

श्रीसूकत की ऋचाएँ	1 लक्ष्मी. 50-25 से 30	2 आद्यशंक. प्रप्रंच 12-46, 47 और सारसंग्रह-श्रीविद्या. श्वास 22. पृ.132	3 विद्यारण्ययतिजी श्रीविद्या. श्वास 22, पृ. 138-41	शर्मागुरुजी, श्री.वि.स. पृ.11 से 18
1 हिरण्यवर्णां.	आवाहनम् [विष्णो: वामां-कस्था लक्ष्मी का]	[लक्ष्म्या:] आवाहनम्	आवाहनम्	आवाहनम् [आवाहन्यादि-मुद्रा-प्रदर्शनम्, प्राणप्रतिष्ठ]
2 तां म.	विष्णवे आसनम्	आसनम्	आसनम् [स्वागतम्]	आसनम्
3 अश्वपूर्वाम्.	अर्घ्यं, पाद्यं च	अर्घ्यम्	पाद्यम्	पाद्यम्
4 कां सोस्मितां.	आचमनम्	पाद्यम्	अर्घ्य:	अर्घ्यम्
5 चन्द्रां.	उपहारकम्	आचमनम्	आचमनीयम्	आचमनम् [मधुपर्कम्; पुनराचमनीयम्]
6 आदित्यवर्णे.	[नारायण-नारा-यणी को एक साथ] स्नानम्	मधुपर्कम्	मधुपर्कम् [आचमनीयम् स्नानम्, मलापकर्षणम्, पंचामृतम्, शुद्धोदकम्, पुनराचमनीयम्।]	[पंचामृतम्, उद्वर्तनम्, अभिषेकम्] स्नानम्
7 उपैतु.	वस्त्रम्, उपवस्त्रं च	स्नानम्	वस्त्रयुग्मम्	वस्त्रम्
8 क्षुत्पिपासा.	आभूषणानि	वस्त्रम्	भूषणानि	अलंकारान्, यज्ञोपवीता-दीन्
9 गन्धद्वारां.	गन्धम्	आभूपणानि	गन्ध: [अक्षता:, हारिद्रम्, कुंकुमं, सिन्दूरम्]	गन्धम् [हरिद्रा कुंकुमारक्तक सिन्दूरादि-सौभाग्य-द्रव्याणि]
10 मनस:.	पुष्पाणि	गन्धम्	पुष्पाणि [पुष्पमालां, परिमल द्रव्यम्, अंगपूजाम्, 108 नामभि: पूजनम्, आवरण पूजाम्]	पुष्पम्, बिल्वपत्रादीन्, पुष्पमालां च [तर्पणान्ते आवरण-पूजाम्]
11 कर्दमेन.	धूपम्	पुष्पम्	धूप:	धूपम्
12 आप:	दीपम्	धूपम्	दीप:	दीपम्
13 आर्द्रां.	मधुपर्कम्	दीपम्	नैवेद्यं [करोद्वर्तनम्]	नैवेद्यम् [अच्छिष्ट-भोक्त्र्यै नैवेद्यांशम्। तांबूलम्, पूगीफलम् दक्षिणाम्, नीराजनम्, स्तुतिम्, छत्रचामरादिकम्, श्रीसूक्तपाठं नित्यहोमं, बटुक-योगिनी-क्षेत्रपाल-गणपति-सर्वभूत-बलिदानानि च।

अनामी ग्रंथ में 5, 6, 7, 10, 12, 16 और 38 उपचार संख्याएँ बताई हैं- [शा. पृ. 156]; आह्निक. में 5, 10, 16 और 38 उपचार बताए हैं - [वि. 269-74] ।

(ख) 16 उपचार - 16 उपचारों की चार स्वतंत्र परंपराएँ है, जैसे ज्ञानमाला, नागदेव, बृहत्पाराशर और वाजसनेय-शाखा संमत-[आह्निक वि. 271-74]।

(ग) 15 उपचार - (अ) लक्ष्मी-तंत्र में पुरुषसूक्त की 18 ऋचाएँ होने के कारण 18 उपचार और श्रीसूक्त की 15 ऋचाएँ होने के कारण 15 उपचार बताए हैं अर्थात् 'जितनी ऋचाएँ उतने उपचार' ऐसा नियम वहाँ फलित होता है। प्रपंच., सारसंग्रह, विद्यारण्ययतिजी और शर्मा गुरुजी में 15 ऋचाओं से 15 उपचार बताए हैं । पू. विद्यारण्ययतिजी और शर्मा गुरुजी में 15 से अधिक उपचार भी हैं, जिन में पू. विद्यारण्ययतिजीने 15 से अधिक उपचारों में उस उस ऋचा की पुनरुक्ति बताई है, जो युक्ति-संगत है । राघव उद्धृत ग्रंथांश में 15 ऋचाओं से 15 उपचार और समग्र श्रीसूक्त से 16 वा उपचार बताया है ।

(आ) उपचारों में शांकरमत का अनुसरण किया जाए । 15 उपचारों की तीन परंपराएँ यहाँ तालिका में बताई गई हैं, जिनमें शांकरमत [प्रपंच. 12-46; 47] और सारसंग्रह - [श्रीविद्या. श्वास 22, पृ. 132] के उपचार समान हैं। शांकरमत के आसन से नैवेद्य तक के 13 उपचार और ज्ञानमाला के [आह्निक.] आसनादि नैवेद्यान्त उपचार समान क्रम में हैं। शांकरसंमत प्रथम आवाहन उपचार नागदेव, बृहत्पाराशर और वाजसनेय में भी है - [आह्निक.] । अन्तिम उपचार उद्वासन [विसर्जन] ज्ञानमाला, नागदेव एवं बृहत्पाराशर में भी है। क्रमदीपिका में अर्घ्य के बाद पाद्य का क्रम है - (पुरश्च. पृ. 227) ।

(ई) व्यस्त समस्त ऋचाओं का उपयोग - भगवान् श्री पू. आद्य जगद्गुरुजी प्रोक्त 'व्यस्तैरपि च समस्तैः' की स्पष्टता पू. पद्म. गुरुजी ने की है कि, 14 ऋचाओं से 14 उपचार करके समग्र श्रीसूक्त से प्रदक्षिणा-स्तुति- नमस्कार [15 वे उपचार के रूप में] करके शेष उपचार श्रीं बीज से करे-(प्रपंच. 12-48; पद्म. पृ. 166) ।

(उ) 15 उपचारों की तालिका [तीन परंपराएँ]

श्रीसूकत की ऋचाएँ	1 लक्ष्मी. 50-25 से 30	2 आद्यशंक. प्रप्रंच 12-46; 47 और सारसंग्रह-श्रीविद्या. श्वास 22. पृ.132	3 विद्यारण्ययतिजी श्रीविद्या. श्वास 22, पृ. 138-41	शर्मागुरुजी, श्री.वि.स. पृ.11 से 18
1 हिरण्यवर्णां.	आवाहनम् [विष्णोः वामां-कस्था लक्ष्मी का]	[लक्ष्म्याः] आवाहनम्	आवाहनम्	आवाहनम् [आवाहन्यादि-मुद्रा-प्रदर्शनम्, प्राणप्रतिष्ठ]
2 तां म.	विष्णवे आसनम्	आसनम्	आसनम् [स्वागतम्]	आसनम्
3 अश्वपूर्वाम्.	अर्घ्यं, पाद्यं च	अर्घ्यम्	पाद्यम्	पाद्यम्
4 कां सोस्मितां.	आचमनम्	पाद्यम्	अर्घ्यः	अर्घ्यम्
5 चन्द्रां.	उपहारकम्	आचमनम्	आचमनीयम्	आचमनम् [मधुपर्कम्; पुनराचमनीयम्]
6 आदित्यवर्णे.	[नारायण-नारायणी को एक साथ] स्नानम्	मधुपर्कम्	मधुपर्कम् [आचमनीयम् स्नानम्, मलापकर्षणम्, पंचामृतम्, शुद्धोदकम्, पुनराचमनीयम् ।]	[पंचामृतम्, उद्वर्तनम्, अभिषेकम्] स्नानम्
7 उपैतु.	वस्त्रम्, उपवस्त्रं च	स्नानम्	वस्त्रयुग्मम्	वस्त्रम्
8 क्षुत्पिपासा.	आभूषणानि	वस्त्रम्	भूषणानि	अलंकारान्, यज्ञोपवीता-दीन्
9 गन्धद्वारां.	गन्धम्	आभूषणानि	गन्धः [अक्षताः, हारिद्रम्, कुंकुमं, सिन्दूरम्]	गन्धम् [हरिद्रा कुंकुमारक्तक सिन्दूरादि-सौभाग्य-द्रव्याणि]
10 मनसः.	पुष्पाणि	गन्धम्	पुष्पाणि [पुष्पमालां, परिमल द्रव्यम्, अंगपूजाम्, 108 नामभिः पूजनम्, आवरण पूजाम्]	पुष्पम्, बिल्वपत्रादीन्, पुष्पमालां च [तर्पणान्ते आवरण-पूजाम्]
11 कर्दमेन.	धूपम्	पुष्पम्	धूपः	धूपम्
12 आपः	दीपम्	धूपम्	दीपः	दीपम्
13 आर्द्रां.	मधुपर्कम्	दीपम्	नैवेद्यं [करोद्वर्तनम्]	नैवेद्यम् [अच्छिष्ट-भोक्त्रै नैवेद्यांशम्। तांबूलम्, पूगीफलम् दक्षिणाम्, नीराजनम्, स्तुतिम्, छत्रचामरादिकम्, श्रीसूक्तपाठं, नित्यहोमं, वटुक-योगिनी-क्षेत्रपाल-गणपति-सर्वभूत-बलिदानानि च ।

	1	2	3	
14 आर्द्राम्.	प्रापणम् [= नैवेद्यम्]	नैवेद्यम्	ताम्बूलम् [सुवर्ण-पुष्पम्, फलम्]	प्रदक्षिणा [नमस्कारं, कुमारिका-बटुक-सुवासिनी-पूजनम्, 32 श्रीमंत्रैः तर्पणम् बलिदानं च, पात्रप्रतिपत्तिः, क्षमापनम्.]
15 तां म.	नमस्कारम्	विसर्जनम् [समस्तेन श्रीसूक्तेन प्रदक्षिणा, स्तुति-नमस्कारान्, शेषं श्रीबीजेन कृत्वा, अन्त्ये चोद्वासयेत् इति पद्म. प्रपंच. पृ. 166]	नीराजनम् । [समस्त-श्रीसूक्तेन नैवेद्यम्.] (ततः मंत्रपुष्पम्, प्रदक्षिणानि, वन्दनानि, प्रार्थनां कृत्वा श्रीसूक्त-चण्डीपाठ-लक्ष्मी-हृदयादिकं जपेत्)	उद्वासनम्

(ए) श्रीसूक्त ऋचाओं द्वारा उपचार की द्वितीय विशिष्ट परंपरा – [लक्ष्मी-50-31 से 35]

ऋचा क्रमांक	उपचार
1 से 4	आवाहन
5	शरणागति
12	अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय
13-14	स्नान

ऋचा क्रमांक	उपचार
11	वस्त्र
9	गन्ध
7	अलंकार
4	धूप-दीप

ऋचा क्रमांक	उपचार
6	उपहार
10	मधुपर्क
8	नैवेद्य
15	नमस्कार

आवरणपूजा – [आवरणपूजा अनिवार्य है ।] पुष्प-परिमल –द्रव्यार्पण करके मूलमंत्र से तीन बार इष्ट देवता का **पूजांग तर्पण** करे – [परशु. 4-7] । [**वसु.** — देवी के अंगों की पूजा 32 श्री मंत्रों से करके, 53 श्रीमंत्रों से अथवा [और] श्रीसूक्त-ऋचाओं से 108 पुष्पादि से अर्चन करे ।] इसके बाद दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ गुरुओं का अर्चन करे – [परशु. 4-10] । फिर अनुज्ञा लेकर आवरणपूजा करे ।

होम-बलिदान – नैवेद्यावसरे नित्यहोम करके बलिदान करे । दक्षिणामूर्ति-संहिता में लक्ष्मी अर्चन में बटुकादि का बलिदान बताया होने से यहाँ भी इनको बलिप्रदान करने का महत्फल है– [श्रीविद्या. श्वास 22, पृ. 131] । [**वसु.**-

यदि ये बटुकादि चार देवता, आवरण देवताओं में हो, तो उनका जहाँ स्थान [यंत्र में] हो, वहाँ बलिदान दे । यदि आवरण में न हो तो [यहाँ भी आवरण में ये चार नहीं होने से] यंत्र की पूर्वादि चार दिशाओं में प्रादक्षिण्यक्रम से गणेश, बटुक, क्षेत्रपालों और योगिनियों को बलि दिया जाए । [पुरश्च. पृ. 257]। [ईशानादि, आग्नेयादि एवं पूर्वादि और प्रादक्षिण्य-अप्रादक्षिण्य क्रम आदि की विचारणा स्वतंत्र शोधपत्र में की जाएगी ।] यंत्र के ईशान में सर्वभूतबलि देकर, देवी को [सर्वप्रथम, या अंत में] बलि दे । [पुरश्च. पृ. 254;257] । बलिप्रदान मंत्र है - 'श्रीः एष ते बलिः नमः' - [श्रीविद्या. पृ. 133] । इस के बाद उच्छिष्टभोजी को नैवेद्यांश देकर शेष उपचार करे । [अर्चन के सर्व अंगों-उपांगों की विशेष विचारणा -यागदीपक में करूंगा ।]

***

5 श्रीसूक्त के अनुष्ठान

[क] समग्र श्रीसूक्त के अनुष्ठान

यः शुचिः ऋचा

(1) निरुक्तकार-प्रोक्त प्रयोग - 16 वी ऋचा [यः शुचिः] के भाष्य में निरुक्तकार ने तीन अनुष्ठान बताए हैं, जैसे कि -

[तीनों अनुष्ठान की समयावधि 15 वर्षों की है ।]

(क) अपनी शाखानुसार कुशकण्डिका करके 15 ऋचाओं से ऋचान्त (15) आज्याहुतियाँ देकर श्रीसूक्त की एक आवृत्ति करे ।

(ख) **अथवा** श्रीसूक्त की 15 आवृत्तियाँ करके, प्रत्येक ऋचा का जप शास्त्रोक्त संख्या में करे [देखो प्रत्येक ऋचा की स्वतंत्र उपासना, पृ. 189 से] । इतना न हो सके तो 15 आज्याहुतियाँ देकर श्रीसूक्त की 15 आवृत्तियाँ करे - [श्री वि. पृ. 19] । [जातवेदस् अग्नि की साक्षी में श्रीसूक्त-जप अधिक फलप्रद होगा, अवश्य अनुभव करे ।]

(2) भगवान श्री आद्य जगद्गुरुजी प्रोक्त अनुष्ठान

[अ] 12,000 श्रीसूक्तों का अनुष्ठान -

जप - यह अनुष्ठान 6 मास का प्रतीत होता है। इस में सर्वप्रथम अपने सद्गुरुजी से दीक्षा लेकर, अष्टांग ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, स्वच्छ वस्त्र पहन कर, दाँत स्वच्छ [निर्गन्ध] रखते हुए, शुक्ल प्रतिपदा से शुक्ल एकादशी तक के समय में 12,000 श्रीसूक्त-जप सूर्याभिमुखी होकर करें - [प्रपंच. 12-43; 51]।

12,000 संख्या की संगति - पू. विद्यारण्ययतिजी स्पष्टता करते हैं कि, ग्यारह दिनों में 12,000 आवृत्तियाँ करना असंभव होने से, आठ दिनों तक, प्रतिदिन 73 आवृत्तियाँ और बाकी के तीन दिनों तक प्रतिदिन 72 आवृत्तियाँ करने से [584+216=] 800 आवृत्तियाँ होंगी। प्रत्येक आवृत्ति में श्रीसूक्त की 15 ऋचाएँ होने से [800x15=] 12,000 की संख्या सम्पन्न होगी - श्रीविद्या. श्वास 22, पृ. 133]।

परंतु वहाँ इस तर्क की आवश्यकता ही नहीं थी, क्यों कि भगवान् आद्य जगद्गुरुजी ने '**श्रीसूक्तानि अपि जपेत्**' और '**सूक्तेषु प्रथमतरे**' ऐसा विधान करके प्रत्येक ऋचा को स्वतंत्र सूक्त का दरजा दिया है - [प्रपंच. 12-36]। पू. पद्म. गुरुजीने भी नित्य-होम की 108 आहुतियों की संगति भी प्रत्येक ऋचा को स्वतंत्र सूक्त मान कर बताई है - [प्रपंच, पृ. 166]। [**वसु.** - (क) इस व्यवस्था अनुसार एक सूक्त की आवृत्ति में 15 आहुतियाँ होने पर भी प्रसिद्ध सूक्तान्त-आहुति-पक्ष सुसंगत बनेगा। (ख) यदि बीच में क्षय तिथि हो, तो प्रतिदिन 80 आवृत्तियाँ करनी हैं। (ग) यदि वृद्धि तिथि हो तो आठ दिनों तक प्रतिदिन 67 और बाकी चार दिनों में प्रतिदिन 66 आवृत्तियाँ करने से 800 की संख्या संपन्न होगी।]

अभिषेक - प्रतिदिन स्नानान्ते स्वमस्तक के उपर तीन बार अभिषेक करे। [देखो लक्ष्मीपूजा विचारणा, पृ. 175]

पूजन - प्रतिदिन सशास्त्र अर्चन करे। [देखो मंत्रानुष्ठान अंग विचारणा, पृ. 158 से]।

नित्यतर्पण - जप-समान-संख्या में तर्पण का विधान है - [यावत् तावच्च तर्पयेत् - प्रपंच. 12-50] ।

नित्य होम - प्रतिदिन अन्न की 54 और गोघृत की 54 आहुतियाँ दी जाए। [देखो, मंत्रानुष्ठान अंगविचारणा- पृ. 160] । [**वसु.** - यह होम स्वतंत्र या पूजनांग होम के रूप में अनिवार्य है ।]

द्वादशी के दिन [आनुष्ठानिक] जपांग होमादि कर्म —

होम — जपदशांश के हिसाब से 1200 आहुतियों का विधान है, जिसमें कमल की 300, बिल्व वृक्ष समिधों की 300, पयःपक्व चावल की 300 और गोघृत की 300 आहुतियाँ हैं - [प्रपंच. 12-48; 49] ।

तर्पण — भगवान् श्री जगद्‌गुरुवर्य ने जपांग-तर्पण नहीं बताया है, परंतु श्रीविद्यार्णव-तंत्र में एकाक्षर श्रीमंत्रोपासना और एक अन्य श्रीउपासना में होम के बाद तर्पण का क्रम बताया गया है [श्रीविद्या. पृ. 121; 126] इस लिए यहाँ भी होम-दशांश (120 की) संख्या में तर्पण करे । [देखो मंत्रानुष्ठान-अंग विचारणा, पृ. 161 से]

ब्रह्मभोजन — भगवान् श्री जगद्‌गुरुवर्य ने ब्रह्मभोजन का विधान किया है, परंतु संख्या नहीं बताई-[प्रपंच. 12-49], परंतु सारसंग्रह में 12 की संख्या बताई है, जो तर्पण-दशांश संख्या से सुसंगत है [श्रीविद्या; पृ. 133]

सुवासिनीपूजा — भगवान् श्री जगद्‌गुरुदेव ने सुवासिनीपूजा नहीं बताई है, फिर भी उसे करना आवश्यक है । इसके साथ गोदान आदि दान भी अवश्य करे।

मार्जन — इस शांकर-संमत व्यवस्था में मार्जन-अंग का समावेश नहीं हो सका है, फिर भी तर्पण-समान-संख्या में [120] उसे अवश्य किया जाए । [देखो मंत्रानुष्ठान अंग विचारणा, पृ. 158 से] ।

[आ] शुक्रवार का व्रतानुष्ठान —

यह व्रत चालीस शुक्रवार का है । प्रत्येक शुक्रवार के प्रातः काल में [जलाशय में जा कर] विकासोन्मुख कमल के भीतरी भाग में कर्णिका सहित केसर एवं पंखुडी के मध्य भाग में मक्खन भरने के बाद उसे तोडकर, श्रीसूक्त-ऋचा के 108 जप पूर्ण करके [अंतिम ऋचा के अंत में] उस कमल का

होम करे - [प्रपंच. 12-52, 53] । इस अनुष्ठान से अत्यधिक संपत्ति मिलती है ।

[इ] कां सोस्मितां ऋचा का अनुष्ठान — यह अत्यंत सरल एवं अत्यधिक लक्ष्मीप्रद प्रयोग है, जिसमें 6 मास तक प्रतिदिन '**कां सोस्मिता.**' ऋचा से केवल ग्यारह आज्याहुतियाँ देनी हैं - [प्रपंच. 12-54] ।

[**वसु.** — (अ) नित्य होम में कां सोस्मितां का भी समावेश हो सकता हैं, अवश्य अनुभव करें । (आ) कां सोस्मितां. से संपुटित दुर्गापाठ भी हो सकते हैं । (इ) श्रीसूक्त से होम, तर्पण, अर्चन, जप एवं स्नान, अभिषेक करने से महाधनवान बन सकते हैं - प्रपंच. 12-55] ।

[3] विद्या. भाष्य प्रोक्त बीजसंपुटित श्रीसूक्तानुष्ठान

आचमन, प्राणायाम, संकल्प, श्रीसूक्त का विनियोग, ऋष्यादि न्यास करके करादि करके हृदयादि न्यास करे, जैसे कि-

(क)	करादि न्यास			हृदयादि न्यास
ॐ हिरण्यवर्णायै	महालक्ष्म्यै	नमः	अंगुष्ठाभ्यां नमः ।	हृदयाय नमः ।
ॐ हिरण्मय्यै	"	"	तर्जनीभ्यां " ।	शिरसे स्वाहा ।
ॐ सुवर्णवर्णायै	"	"	मध्यमाभ्यां " ।	शिखायै वषट् ।
ॐ चन्द्रायै	"	"	अनामिकाभ्यां " ।	कवचाय हुम् ।
ॐ सुवर्ण-रजत-स्त्रजायै	"	"	कनिष्ठिकाभ्यां " ।	नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ जातवेदसे आद्यरूपिण्यै	"	"	करतलकरपृष्ठाभ्यां " ।	अस्त्राय फट् ।

(ख) श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः के एक एक बीज से करादि करके, हृदयादि करे।

(ग) (मूर्धादि) मंत्रन्यास (श्रीसूक्त न्यास) ग्रंथारंभ में दिए हैं - [पृ. 5]

(घ) संपुट मंत्र के 16 अंश हैं, जैसे कि, (1) ऐं (2) ह्रीं, (3) श्रीं, (4) क्लीं, (5) वद वद, (6) वाग्वादिनि, (7) ऐं, (8) सौः, (9) हंसः, (10) आं, (11) ह्रीं, (12) क्रों, (13) क्लीं, (14) श्रीं, (15) हुं, (16) स्वाहा । इन 16 मंत्रांशों का, 16 ऋचाओं को ॐ सहित लोमविलोम संपुट देना है । जैसे कि, (1) ॐ ऐं, हिरण्यवर्णां..... वह, ऐं ॐ । (6) ॐ वाग्वादिनि, आदित्य .... अलक्ष्मीः, वाग्वादिनि ॐ । -[श्री.वि.पृ.20]।

[4] ऋग्वेदीय-सौभाग्य-लक्ष्मी-प्रोक्त अनुष्ठान

[न्यासान्त कर्म सम्पन्न करके], श्रीसूक्त का विनियोग, ऋष्यादि करके, प्रपंच. -प्रोक्त हिरण्मयी आदि 6 नाम मंत्रों से करादि-हृदयादि के बाद, श्रीसूक्त-मंत्र -न्यास करके, [ग्रंथारंभ (पृ. 5) में हैं ।] ध्यान करे-अमलकमल संस्था. [देखो पृ. 6]

जप - 16,000 श्रीसूक्त-जप है - [श्री. वि. पृ. 21] । [यहाँ ऋचा-संख्या समझे ।]

तर्पणादि शेष अंग - तर्पणादि शेष अंगों का निरूपण नहीं है । इस लिए 32 श्रीमंत्रों की समीपतर पद्धति का अतिदेश करके जपदशांश तर्पण [1600]; जप-शतांश होम [160]; जप-सहस्रांश ब्रह्मभोजन [16] करें। [**वसु.** - सुवासिनी का उल्लेख नहीं है, फिर भी ब्रह्मभोजन-दशांश दो सुवासिनियों की पूजा करे । यथाशक्ति दान करे । होम समान संख्या में मार्जन [160] भी (ब्रह्मभोजन से पहले) करे ।]

[5] कमलामंत्र और दुर्गेस्मृता संपुटित श्रीसूक्त का अनुभूत, प्रसिद्ध अनुष्ठान

[**वसु.** — इस प्रसिद्ध संपुटित प्रयोग का महत्फल है । इस का मूल नहीं मिला है ।] (1) **कमलामंत्र** - ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं, कमले कमलालये, प्रसीद प्रसीद, श्रीं ह्रीं श्रीं, महालक्ष्म्यै नमः (= 27 अक्षर) । - (प्रपंच 12-27; श्रीविद्या. श्वास. 22, पृ. 128-29; शारदा. 8-144 से 46; मंत्रमहार्णव पृ. 814) ।

(2) दुर्गेस्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः, स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।

(3) श्रीसूक्त की एक ऋचा, जैसे- ॐ ह्रीं, श्रीं हिरण्यवर्णां..... वह, श्रीं ।

(4) दारिद्र्य-दुःख-भयहारिणी का त्वदन्या, सर्वोपकार-करणाय सदार्द्रचित्ता ।

(5) कमलामंत्र ।

[(क) कमलामंत्र में द्वितीय ॐ नहीं है । (ख) यह प्रयोग अवश्य करे ।]

[6] [वसु. – कमलादि मंत्रों और पुरुषसूक्त से संपुटित श्रीसूक्त का अनुभूत अनुष्ठान है, जो गुरुपरंपरा से चला आ रहा है । वह गोपनीय होने से यहां नहीं दिया है । इसी तरह कमलादि मंत्रों और श्रीसूक्त से संपुटित पुरुषसूक्त का प्रयोग भी गोपनीय होने से यहां नहीं दिया है । संपुटित प्रयोगों का अनुभव अवश्य करें । प्रतिदन इसी पद्धति से एक आवृत्ति में 16 आहुतियाँ देकर, 15 (अथवा 16) आवृत्तियों का पाठ करें । एक वर्ष में फल-प्राप्ति होगी । यदि कर्मदोष अधिक हो तो अधिक समय लग सकता है ।]



[ख] श्रीसूक्त की प्रत्येक ऋचा के स्वतंत्र अनुष्ठान

[वसु. – गोंडलप्रकाशित श्रीसूक्तम्

अनंत श्री. भुवनेश्वरी पीठाधीश जगद्.ब्र.ली. पू. आचार्य श्री चरणतीर्थ महाराजजी रचित श्रीसूक्तम्, श्रीप्रसादिनी सं.टीका एवं गुज.भाषा. सहित, भुवनेश्वरीपीठ प्रकाशन, गोंडल; (गुजरात) । अष्टमी आवृत्ति, संवत् 2043; पृ. 84; (प्रथमावृत्ति संवत 1990) ।

इस ग्रंथमें बतायी गई लक्ष्मीजी सहित भगवान विष्णुकी पूजा की अनिवार्यता लक्ष्मीतंत्र से सुसंगत है । परंतु कुछ विचारों का निर्णय विद्वद्गण करे, जैसे कि, (क) उपासना में वैदिक मंत्रों का निरूपण है, फिर भी श्रीसूक्त के प्रयोगों का अधिकार सर्व वर्ण, सर्व आश्रम एवं स्त्रियों को भी बताया गया है - (पृ. 43) । (ख) इस की ऋचा-उपासना की पद्धति भी विचारणीय है, जेसे कि जप, जपदशांश होम, होमदशांश तर्पण, तर्पणदशांश मार्जन, मार्जनदशांश या यथाशक्ति ब्रह्मभोजन । (ग) प्रथम ऋचा के 32 लाख के अनुष्ठान में प्रत्येक विभाग की 1.25,000 जप संख्या बताई है - (पृ. 44)। (घ) कहीं भी मूल नहीं बताया है । अतः मैंने श्रीसूक्त-दीपक में इस गोंडलप्रकाशित ग्रंथ का उपयोग नहीं किया है । अस्तु ।]

श्रीसूक्त की स्वतंत्र ऋचोपासना तालिका

[वसु.- यहाँ दी गई ऋचा-अक्षर-संख्या ग्रंथारंभ में उल्लिखित श्रीसूक्त की है ।]

ऋचा क्रम	ऋचा अक्षर संख्या	छंद	जप संख्या	एक मण्डल की जप संख्या	तर्पण संख्या	आहुति संख्या	होम द्रव्य	ब्रह्म-भोजन	सुवासिनी संख्या	विशेष	ग्रंथ नाम
1	32	अनुष्टुभ्	32 लाख	एक लाख	10,000	1,000	आज्य	100	10	सवत्सा गाय का दान	मंत्रकल्पार्णव
2	33	,,	33 हजार	—	3,300	330	—	33	4	अनुक्ते आज्य होम:	,,
3	31	,,	12 वर्षों तक प्रतिदिन एक हजार	सुविधा के लिए 31 हजार का एक मण्डल	3,100	310	—	31	4	अनुक्ते आज्य होम:	,,
4	37	बृहती	8 लाख	सुविधा के लिए एक लाख का एक मण्डल	10,000	1,000	पलाश 333 दूध 333 गोघृत 334 1,000	100	10	—	सूक्तार्थ-रत्नाकर
5	45	त्रिष्टुभ्	1,35,000	—	13,500	1,350	गोघृत 675 श्वेततिल 675 1,350	[135]	14 अथवा 135	—	भागधेय शृ(भृ)पणम्

ऋचा क्रम	ऋचा अक्षर संख्या	छंद	जप संख्या	एक मण्डल की जप संख्या	तर्पण संख्या	आहुति संख्या	होम द्रव्य	ब्रह्म-भोजन	सुवा-सिनी संख्या	विशेष	ग्रंथ नाम
6	44	त्रिष्टुभ्	ग्यारह लाख	सुविधा के लिए एक लाख का एक मण्डल	10,000	1,000	बिल्व 500 और गोघृत 500 1,000	100	10	—	सौभाग्यसंजीवन
7	32	अनुष्टुभ्	32 लाख	सुविधार्थ दो लाख का एक मण्डल/जिसमें एक लाख ऋचा; और एक लाख श्रीगायत्री जप	ऋचा से दश हजार और श्रीगायत्री से दश हजार	ऋचा से 1000 गायत्री से 1000	(क) ऋचा से गोघृत 500 और अपामार्ग 500 (ख) श्रीगायत्री से गोघृत 500 अपामार्ग 500	200	20	—	श्रीरत्नकोश
8	32	"	श्रीगायत्री के 32 हजार और ऋचा के 32 हजार	—	श्रीगायत्री से 3,200 और ऋचा से 3,200	(क) गायत्री से 3,200 और (ख) विरजा होम (ग) ऋचा से 320	(क) तिल 3,200 (ख) विरजा होम समिध्, चरु आज्य से (ग) ऋचासे घृत की 320	64	7	—	लक्ष्मीयामल
9	32	"	1,60,000	—	16,000	1,600	—	160	16	अनुक्ते आज्यहोमः	वैखानस-संहिता
10	32	"	आठ लाख	सुविधा के लिए एक लाख	10,000	1,000	—	100	10	अनुक्ते आज्य-होम	मंत्र-कल्पार्णव

ऋचा क्रम	ऋचा अक्षर संख्या	छंद	जप संख्या	एक मण्डल की जप संख्या	तर्पण संख्या	आहुति संख्या	होम द्रव्य	ब्रह्म-भोजन	सुवा-सिनी संख्या	विशेष	ग्रंथ नाम
11	32	,,	32 लाख	सुविधा के लिए एक लाख	10,000	1,000	—	100	10 सुवासिनी 10 बटुक 10 कुमारिका	अनुक्ते आज्य-होम:	मंत्र-कल्पार्णव
12	31	,,	64 हजार	—	6,400	640	—	64	7	अनुक्ते आज्य-होम	सूक्तार्थसंग्रह
13	32	,,	32 मास का अनुष्ठान है	व्यवहार पक्ष में दश दिनों में 55 हजार का एक मण्डल	5,500	550	—	55	6	अनुक्ते आज्य-होम:	श्रीतत्त्व
14	32	,,	प्रतिदिन तीन हजार जप है। तीन मण्डल हैं	एक मण्डल में दस लाख जप	एक लाख	दश हजार	—	1,000	100 अनिवार्य	अनुक्ते आज्य-होम:	"
15	38	प्रस्तार पंक्ति	1,000 दिनों तक प्रतिदिन 3,008	मंत्र सिद्धि के लिए 30 लाख जप है	तीन लाख	30,000	—	3,000	300	अनुक्ते आज्य-होम:	मंत्रकल्पार्णव

सौन्दर्य लहरी की तरह श्रीसूक्त की भी प्रत्येक ऋचा की स्वतंत्र उपासना विभिन्न फलप्राप्ति के लिए बताई गई है । भगवान् श्री आद्य जगद्‌गुरुजी ने प्रत्येक ऋचा को स्वतंत्र सूक्त माना है और चौथी ऋचा की स्वतंत्र उपासना भी बताई है – [प्रपंच. 12-36; 38; 55; 54] ।

श्रीसूक्तविधानोक्त लक्ष्मीसपर्याविधिः और [ढुण्ढिराज संपादित] श्रीसूक्तम् पुस्तिकाओं में प्रत्येक ऋचा की स्वतंत्र उपासना बताई है । दोनों पुस्तिकाओं में विद्यारण्य. आदि सभी भाष्य समान रूप में हैं, केवल संपादक ही भिन्न हैं। यहाँ दिये गए मूलपाठ श्री. वि. अनुसार है। ढुण्ढिराज में मिले पाठभेद भी बताए हैं। संभव है, एक ही ग्रंथ में सभी ऋचाओं की स्वतंत्र उपासना न मिलने के कारण विभिन्न स्रोतों का उपयोग किया गया हो- जैसे कि, मंत्रकल्पार्णव - [1, 2, 3, 10, 11, 15]; । सूक्तार्थरत्नाकर - [4]; । भागधेयशृषणम् [- भूषणम्- ढुण्ढि.] - [5]; । सौभाग्य-संजीवनम् [6]; । श्रीरत्नकोश [7]; । लक्ष्मीयामल - [8]; । वैखानसविद्या-[9]; । सूक्तार्थसंग्रह-[12];। श्रीतत्त्व-[13; 14] और स्कंदपुराणे सनत्कुमारसंहिता- [6] । [कोष्टक में दिये गए अंक ऋचा-क्रमांक के सूचक हैं ।]

सामान्यतः ग्रंथकारों की निरूपण-शैली ऐसी रही है कि, जहाँ अनेक उपासनाएँ बतानी हो, वहाँ सभी जगह, सर्व अंगों का निरूपण न करके, जितनी विशेषताएँ हो, उतनी ही बताई जाए। हमने भी यहाँ मूल ग्रंथ में बताए हुए अंगों का ही निरूपण किया है, जिस से उपासक के चित्त में भ्रमरहित स्पष्टता बनी रहे ।

(क) होम-तर्पणक्रम -सामान्यतः प्रत्येक उपासना में विनियोग, करादि-हृदयादि न्यास, मंत्रन्यास, ध्यान, मानसपूजा, बाह्यपूजा, नित्यहोम, नित्यजप, नित्यतर्पण, आदि नित्यकर्म संपन्न करके अनुष्ठानांग जपादि कर्म किए जाते हैं। इन में अनुष्ठानांग नियत जपसंख्या पूर्ण करके पारंपरिक शेष चार अंग [होम, तर्पण, मार्जन और ब्रह्मभोजन] किये जाते हैं। (ख) परंतु यहाँ होम और तर्पण का क्रम बदला हुआ है, जैसे कि जप-दशांश तर्पण, तर्पण-दशांश होम, होम-दशांश ब्रह्मभोजन और ब्रह्मभोजन-दशांश सुवासिनीपूजा का स्पष्ट निरूपण प्रथम और चतुर्थ ऋचा की उपासना में किया गया है । यहाँ पारंपरिक मार्जन-अंग का उल्लेख नहीं है, फिर भी उसे करना नितान्त आवश्यक है । स्वतंत्र ऋचोपासना में इसी (ख) पद्धति अनुसार चलें ।

मार्जन - पारंपरिक एवं प्रसिद्ध पंचांग अनुष्ठान में मार्जन चौथा अंग है, जिसकी संख्या तर्पण-दशांश हैं और मार्जन-दशांश संख्या में ब्रह्मभोजन है । इस परिस्थिति में स्वतंत्र ऋचोपासना में मार्जन-संख्या की संगति करना कठिन है। स्वतंत्र उपासना में ब्रह्मभोजन चौथा अंग है, जिसकी संख्या होम-दशांश है । स्वतंत्र ऋचोपासना में होमसमान मार्जनसंख्या रखने से पारंपरिक तर्पण-दशांश मार्जन की संख्या और मार्जन-दशांश ब्रह्मभोजन-संख्या भी सुसंगत बन सकेगी।

सुवासिनीपूजा - पारंपरिक शाक्त-पंचांग-अनुष्ठान में ब्रह्मभोजन के साथ ही सुवासिनीपूजा को भी पाँचवे अंग के रूप में माना गया है, परंतु स्वतंत्र ऋचोपासना में ब्रह्मभोजन चौथा अंग है और सुवासिनीपूजा पाँचवा स्वतंत्र अंग है । इस तरह यहाँ दोनों का महत्त्व बढाया गया है ।

(1) प्रथम ऋचा

[हिरण्यवर्णामित्युक्तां श्रीसूक्ते प्रथमाम् ऋचम् । **श्रीं ह्रीं क्लीं** इति विन्यस्य हिरण्यप्रतिमां यजेत् ॥ लक्ष्मीं सम्पूज्य हारिद्रचूर्णसौवर्णपंकजैः । राजतैः पुण्डरीकैश्च पूजयेद् गाः सुवासिनीः ॥ पूर्णेन्दौ पूर्णकुंभे वा ध्यात्वा नारायणीं पराम् । प्राप्याक्षमालां सौवर्णीं कमलासनसंस्थितः ॥ ऋचं तु प्रजपेदाद्यां **प्रत्यहं** त्रिसहस्रकम् । त्रिसन्ध्यमेवं लक्षान्ते क्षीरैरयुततर्पणम् ॥ सहस्रम् आज्यहोमश्च शतब्राह्मण-भोजनम् । सुवासिनीनां दशकं सालंकारम् अथार्चयेत् ॥ एकां धेनुं सवत्सां च श्रोत्रियाय प्रदापयेत् । इत्थम् अक्षरलक्षान्तं यो जपेन् नियतव्रतः ॥ हिरण्यपूर्णस्तेजस्वी धनाढयो भोग-भाग्यवान् । जीवेच् चिरं शरीरान्ते चन्द्र-सायुज्यमाप्नुयात् इति - [मंत्रकल्पार्णवे, श्री.वि. पृ. 4] । [प्रत्यहं की जगह दुण्ढि. में **प्रत्यक्षं** पाठ है।]

फल - इह लोक में सुवर्ण, तेज, बहुधन, भोग, भाग्य एवं दीर्घजीवन की प्राप्ति होती है और परलोक में चन्द्र-सायुज्य मिलता है ।

न्यास - श्रीं ह्रीं क्लीं से न्यास करें - [जैसे कि, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं अंगुष्ठाभ्यां नमः ।]

ध्यान - ध्यान-श्लोक नहीं दिया है । पूर्णचन्द्र या [जल] - पूर्ण-कुंभ में नारायणी का ध्यान करें ।

पूजा - हलदी, सुवर्ण कमलों, रजत कमलों और रात्रिविकासी कमलों से सुवर्ण

की लक्ष्मीमूर्ति का अर्चन करें। [मूर्ति के विकल्प में सुवर्णयंत्र की पूजा हो सकती है ।]

जप - पद्मासन से बैठ कर सुवर्ण की माला से प्रतिदिन तीन हजार जप करने हैं। जपकर्म तीनों संध्याकाल में किया जाए। एक लाख जप पूर्ण होने पर तर्पण आदि शेष अंग संपन्न करें। यह एक मण्डल हुआ। इस ऋचा के 32 अक्षर होने से प्रत्यक्षर लक्ष के हिसाब से 32 मण्डल करने हैं।

[वसु. — (1) **'प्रत्यहं त्रिसहस्रकम्। त्रिसन्ध्यम् एवं'** वाक्यांश के दो अर्थ संभवित हैं - (क) तीनों संध्याकाल में तीन तीन हजार जप। (ख) तीनों संध्याकाल में एक एक हजार जप। (2) **कमलासन** - इस का अर्थ कमलपुष्प या कमलपत्र का आसन करना युक्तिसंगत नहीं है, क्यों कि प्रपंचसार. में यदि बिल्व और कमलपुष्प को धारण करने का भी निषेध हो [प्रपंच. 12=61], तो कमल -पत्र-पुष्प के उपर कैसे बैठ सकते हैं ? इस लिए यहाँ 'पद्मासन' का अर्थ **'एक योगासन'** युक्तिसंगत है। विद्वद्गण इस का निर्णय करे। [मुख के उपर हलदी लगाने का भी निषेध है।] (3) जहाँ दो लाख से अधिक जप हो, वहाँ सरलता के लिए एक एक लाख के पुरश्चरण करते रहे।]

तर्पण - एक लाख जप पूर्ण होने पर दूध से दस हजार संख्या में तर्पण करें। [द्वितीय अंग]

होम - एक हजार आज्याहुतियाँ हैं। [तृतीय अंग]

ब्रह्मभोजन - 100 ब्राह्मणों का भोजन है। [चतुर्थ अंग]

सुवासिनीपूजा - दस सुवासिनियों की पूजा अलंकार-प्रदान सहित करें। [पंचम अंग]

दान - श्रोत्रिय ब्राह्मण को एक सवत्सा गाय का दान करें। लक्ष्मीपूजा की तरह सुवासिनी और गाय की पूजा भी कमल आदि उपचारों से करें - मंत्रकल्पार्णव, श्री. वि. पृ. 4, [सुवासिनी में लक्ष्मीदेवी की भावना करके प्रत्यक्ष पूजा करना है।]

[वसु. - (क) प्रत्येक ऋचा में **ॐ ह्रीं श्रीं** का संयोजन - मंत्र की आदि में ॐ अनिवार्य है। (ब्राह्मणेतर उपासक **ॐ** की जगह **ह्रीं** का उपयोग करें।)

लक्ष्मीतंत्र में प्रत्येक ऋचा में '**ह्रीं श्रीं**' जोडने का विधान है [- तारिकामनुतारं च प्रयुंजीयादथान्ततः -50-29]। पू. पद्मपादाचार्यजी ने **श्रीं** जोडने को कहा है और तर्पण एवं होम में **श्रीं** का संपुट भी बताया है। [प्रत्यृचं श्रीबीजयोगः उक्तः,। ऋचः श्रीबीजपुटितत्वं होम-तर्पणादौ स्वाहा तर्पयाम्यन्तत्वं चोक्तम् - प्रपंच. पृ. 165; 167]। इस लिए इन बीजों का संयोजन करने से महत्फल मिल सकता है, जैसे कि - ॐ ह्रीं श्रीं; हिरण्यवर्णां..... वह, श्रीं। **(ख) मार्जन** - श्रीसूक्त की प्रत्येक ऋचा के अनुष्ठान में मार्जन की संख्या होम-समान रखी जाए। जैसे प्रथम ऋचा के इस अनुष्ठान में होम-समान संख्या एक हजार का मार्जन रखने से, एक ओर दश हजार तर्पण की दशांश संख्या सुसंगत होगी और दूसरी ओर एक हजार मार्जन संख्या की दशांश भूत 100 ब्रह्मभोजन संख्या भी सुसंगत बनेगी। **(ग) मार्जन का क्रम** - जप, तर्पण, होम, [मार्जन], ब्रह्मभोजन, सुवासिनीपूजा और दान। यह क्रम सर्व ऋचोपासना में रखा जाए। **(घ)** यहाँ सुवासिनी-संख्या की दशांश-संख्या में सवत्सा गोदान है। **(ङ)** जब तक उस उस स्वतंत्र ऋचोपासना का मूलपाठ न मिले तब तक प्रथम ऋचा की पद्धति अनुसार चलें।]

(2) द्वितीय ऋचा

[ऋचं द्वितीयां श्रीसूक्ते प्रतिसायं सहस्रकम्। प्रजपेन् नियताहारः प्रत्यक्षर - सहस्रकम्॥ त्रयस्त्रिंशद्दिने रात्रौ स्वप्ने लक्ष्मीः प्रसीदति। शांति-कर्मादिकं सर्वं प्रागुक्तवदुपाचरेत्॥ अविघ्नेन जपन् सिद्ध्येद् यदि लक्ष्मीप्रसादतः। अनपायां श्रियं याति हिरण्यं गोनरादिकान्॥ अनपाया भवेल्लक्ष्मीस्तस्य जन्मनि नान्यथा। [इति - मंत्रकल्पार्णवे, श्री. वि. पृ. 5]।

फल - सुवर्ण, गाएँ, सेवकगण आदि संपत्ति आजीवन एवं अविनाशी बनी रहती है।

ध्यान - चतुरंग-बलोपेतां धनधान्य-सुखेश्वरीम्। अश्वारूढामहं वन्दे राजलक्ष्मीं हिरण्मयीम् - [इति चिद्विलासवृत्तौ, श्री. वि. पृ. 5]।

जप - इस ऋचा के 33 अक्षर होने के कारण '**प्रत्यक्षर-सहस्रकम्**' के नियमानुसार 33 हजार जप करने हैं। प्रत्येक सायंकाल में एक एक हजार जप 33 दिन तक किया जाए। अन्तिम रात्रि को स्वप्न में लक्ष्मी देवी प्रसन्नता

प्रकट करेगी । (जब तक प्रसन्नता न दीखे तब तक तैतीस तैतीस दिनों के मण्डल [अनुष्ठान] चालू रखें ।)

[**वसु.** - यहाँ होमादि अंगों का उल्लेख नहीं है । इस लिए प्रथम ऋचा की पद्धति अनुसार चले । जप के बाद शान्ति-कर्म करना है । शान्ति-कर्म का निरूपण पंद्रहवी ऋचा में (पृ. 217) किया गया है ।]

(3) तृतीय ऋचा

[श्रीसूक्ते तु तृतीयर्चः श्रीबीजेन समायकम् । न्यासं कृत्वा जपेन् नित्यं प्रातः प्रातः सहस्रकम् ॥ आद्वादशाब्दात् सिद्धिः स्याद् अन्यद् दुर्गाविधानवत् । मंत्र-सिद्धौ भवेद् राजा शत्रून् जित्वा लभेच्छ्रियम् [इति मंत्रकल्पार्णवे, श्री. वि.पृ. 6]

फल - शत्रुओं को पराजित करके लक्ष्मीप्राप्ति और राज्यप्राप्ति [चुनाव में विजय एवं मंत्रीपदप्राप्ति] होती है ।

न्यास - श्रीं ह्रीं से न्यास करें । [जैसे ॐ श्रीं ह्रीं हृदयाय नमः ।]

जप - यह बारह वर्षों का सुदीर्घ अनुष्ठान है, जिस में प्रत्येक प्रातःकाल में इस ऋचा के एक हजार जप करने हैं । शेष अंग दुर्गाविधान की तरह करने हैं । [**वसु.** - जब तक मंत्रकल्पार्णव-प्रोक्त दुर्गाविधान न मिले, तब तक प्रथम ऋचा की दशांश पद्धति एवं क्रम के अनुसार चलना है । इस ऋचा के 31 अक्षर होने के कारण 31 दिन का एक मण्डल बनेगा, जिस में 31,000 जप, (310 मार्जन), दान आदि करें । फिर् तुरंत ही अगले मण्डल का प्रारंभ करें। आयुष्य का निश्चय न होने के कारण यह पद्धति युक्तिसंगत है । यदि स्वप्न में लक्ष्मीजी प्रसन्न भी हो जाए, तब भी बारह वर्षों तक पूर्वसंकल्प अनुसार अनुष्ठान चलाना है ।]

(4) चतुर्थी ऋचा

[ऋचं चतुर्थीं श्रीसूक्ते प्रजपेद् अष्टलक्षकम् । सहस्रं प्रत्यहं जप्त्वा त्रिसाहस्रं भृगोर्दिने ॥ राकायां पंचसाहस्रं क्षीराहारो जितेन्द्रियः । पलाश-समिधा होमः पयसा गोघृतेन च ॥ तर्पणाशीति-साहस्रं होमश्चाष्टसहस्रकः । ब्राह्मणाष्टशती पूज्या श्रीवाग्बीजयुतं न्यसेत् ॥ संपत्-सारस्वत-प्राप्तिर्भविष्यति न संशयः । आपं च पुरुषं सिद्धौ नात्र कार्या विचारणा इति ॥ **श्रीं ऐं** इति सपल्लवन्यासः । ध्यानं-

वरम...कांचित् - इति सूक्तार्थ-रत्नाकरे अनुष्ठान-प्रकरणे, श्री.वि.पृ. 7]
[**वसु.** — 'आपं च पुरुषं सिद्धौ' का अर्थ स्पष्ट नहीं है ।]

फल - संपत्ति एवं विद्या की प्राप्ति ।

न्यास - पल्लव पद्धति से [अर्थात् न्यासमंत्र के अंत में] **श्रीं ऐं** लगाकर न्यास करें ।

ध्यान - वरमभय-शुक-पुस्तक-करकलितां कमलमध्यगां कलये । कमलां सस्मित-वदनां कनकावर्णस्थितां कांचित् ॥ [ढुण्ढि. में वरदाभय. पाठ है, जो अधिक अच्छा है । '**कनकावर्ण**' शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है ।]

जप - जितेन्द्रिय होकर क्षीर का आहार लेकर आठ लाख जप करना है । [**वसु.** — अमरकोश में क्षीर के दो अर्थ हैं - जल और **दूध** । यहाँ **दूध** अर्थ समझना युक्तिसंगत है ।] प्रति शुक्रवार तीन हजार, प्रति पूर्णिमा को 5 हजार और शेष दिनों में प्रतिदिन एक हजार जप करने हैं । [इस पद्धति से करीब 19-20 मास लगेंगे ।]

तर्पण - 80 हजार हैं ।

होम - पलाश समिध्, दूध और गोघृत से 8 हजार आहुतियाँ हैं । [**वसु.**- भगवान् आद्य जगद्‌गुरुजी ने बताई पद्धति अनुसार (प्रपंच. 12-48; 49) पलाश समिध की 2666; दूध की 2667 और गोघृत की 2667 आहुतियों से 8 हजार की संख्या संपन्न होगी ।]

ब्रह्मभोजन - 800 ब्राह्मण ।

[**वसु.** - (क) 8000 मार्जन, 800 ब्रह्मभोजन, 80 सुवासिनीपूजा एवं दान आदि होंगे । (ख) पूर्णिमा का अधिक महत्त्व रात्रिकाल में जप-कर्म का सूचन करता है । (ग) भगवान् आद्य जगद्‌गुरुजी ने बताई इस ऋचा की स्वतंत्र उपासना 'समग्र श्रीसूक्त का उपयोग' विभाग में दी गई है - पृ. 186 ।].

(5) पंचमी ऋचा

[श्रीसूक्ते प्रथमे वर्गे प्रजपेत् पंचमीम् ऋचम् । मायाबीजेन विन्यस्य भक्तितो भुवनेश्वरीम् ॥ अक्षीणभासां.....विनश्यतु ॥ प्रत्यहं त्वेकसाहस्रं गोष्ठस्थः प्रजपेद् ऋचम् । अखण्डदीपं प्रज्वाल्य गोघृतेन जितेन्द्रियः ॥ प्रत्यक्षरत्रिसाहस्रजपान्

मुच्येत संकटैः । मण्डलैश्च त्रिभिः पूर्णैर्दारिद्र्यान् मुच्यते ध्रुवम् ॥ दीक्षितश्च तिलैर्हुत्वा विरजाम् अंग-देवताम् । आमिक्षाशी धनं प्राप्य भूमिस्थं राजवंदितः ॥ संग्रामे विजयं प्राप्य चान्द्रीं गतिमवाप्नुयात् । अहस्सु प्रजपेत् सौरीं दक्षिणोत्तर-मार्गगाम् ॥ तिलैः श्वेतैः सहाज्येन जुहुयात् पावके स्वके । जपाद् दशांशं संतर्प्य गंधकर्पूर-वारिभिः ॥ होमं कृत्वा दशांशं च पूजयेच्च सुवासिनीः । कमलैरर्चयेद् देवीं गोभ्यो घासं प्रदापयेत् ॥ एतत् पुण्य-प्रभावेण दरिद्रोपि धनी भवेत् ॥ 'ह्रीं'-इत्यादि षडंगन्यासः। ध्यानम् -आकाश.... हमिति [भागधेय-शृषणम् श्रीवि. पृ. 8 । ढुण्ढि. में भागधेयभूषणम् पाठ है ।]। [**वसु.** — इस ऋचा के **शरणमहं** दो पदों में (पृथ्वीधर भाष्य के अनुसार) उत्तर भारतीय विद्वद्गण **अहम्** पद को प्रक्षिप्त नहीं मानते हैं, जब कि दाक्षिणात्य पाठ में **अहम्** पद नहीं है, [हमने 'अहम्' पद को रखना उचित समझा है ।]

फल - संकटनाश होकर इह लोक में राजसन्मान, संग्राम में [चुनाव, कोर्ट आदि में भी] विजय एवं भूमिस्थ धन की प्राप्ति और परलोक में चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है । इस अनुष्ठानजन्य पुण्य के प्रभाव से दरिद्र मनुष्य भी धनवान् बन जाता है । [**वसु.** — पृथ्वीधर भाष्य के अनुसार इस अनुष्ठान से उपासक के घर में स्थित अलक्ष्मी [बडी बहन] को घर से बाहर निकाला जाता है, इस लिए लक्ष्मीप्राप्ति के लिए 'क्षुत्पिपासा.' अनुष्ठान के पश्चात् इस ऋचा का भी अनुष्ठान संपन्न करके, इच्छित ऋचा का अनुष्ठान शुरू करें ।]

अनुष्ठान के विशेष नियम - दीक्षा लेकर विरजा देवताओं को तिलाहुतियाँ दें । जितेन्द्रिय बन कर अनुष्ठान करें । गोघृत का अखंड दीपक रखे । गायों को घास खिलाएँ । आमिक्षा का आहार ले । [**वसु.** — (क) फोडे हुए दूध को आमिक्षा कहते हैं - [आमिक्षा स्फुटितं दुग्धम् इति महीधर-भाष्ये, वा.सं. 3-20; । [ख] 'दक्षिणोत्तरमार्गगाम्' और 'विरजाम् अंगदेवताम्' का अर्थ स्पष्ट नहीं है । संभव है, यहाँ संन्यास दीक्षा वाला विरजाहोम हो । निर्णयसिन्धु में [पृ. 965] पापमुक्ति के लिए विरजा मंत्रों से होम का विधान है । धर्म-सिन्धु के अनुसार [पृ. 777] विरजा मंत्रों के 19 देवता हैं । विद्वद्गण 'विरजा-मंग-देवताम्' का निर्णय करे ।]

न्यास - मायाबीज [ह्रीं] से न्यास करे, [जैसे कि, ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः ।]

ध्यान - आकाशपद्माकर-चन्द्रबिम्बप्लवोल्लसन्तीं परिपूर्णकान्तिम् ।
पद्मस्थितां पद्मकरां प्रपद्ये लक्ष्मीम् अलक्ष्मीविनिवृत्तयेऽहम् ॥

पूजा - [अन्य उपचारों के उपरांत] खास करके कमलों से भगवती लक्ष्मी की पूजा करे ।

प्रार्थना - [भजामि श्रद्धया युक्तो] भक्तितो भुवनेश्वरीम् । अक्षीणभासां चन्द्राख्यां ज्वलन्तीं यशसा श्रियम् ॥ देवैर्जुष्टामुदारां च पद्मिनीमीं भजाम्यहम् । त्वां वृणे त्वत्प्रसादेन ममालक्ष्मीविनश्यतु ॥

जप - गोष्ठ [गोनिवास] में बैठ कर प्रतिदिन एक हजार जप करे । इस ऋचा [हमारे पाठवाली] में 45 अक्षर हैं । प्रति अक्षर तीन हजार के हिसाब से [45x3-135 हजार] एक लाख पैंतीस हजार जप का एक मण्डल बनेगा। ऐसे तीन मण्डल करने से दरिद्रता का विनाश निश्चित रूप से होता है । दिन में सौरी ऋचा का जप करे, अर्थात् 'चन्द्रां' की जगह 'सूर्यां' का ऊह करके [सूर्यां प्रभासां.....] जप करे । इसका अर्थ यह हुआ कि 'चन्द्रां' पदवाली ऋचा का जप रात्रिकाल में ही हो सकता है ।

तर्पण - चंदन और खाने के कर्पूर से मिश्रित जल से जप दशांश [13,500] तर्पण किया जाए ।

होम - तर्पण-दशांश संख्या में [1350] गोघृत के साथ श्वेत तिलों की आहुतियाँ स्वशाखोक्त अग्नि में दी जाएँ । [**वसु.** - यहाँ घृताक्त तिल होम की बात नहीं है । ऐसा हो सकता है कि, आज्याहुतियाँ और तिलाहुतियाँ एक साथ दी जाए । विद्वद्गण इस का निर्णय करे, क्यों कि यहाँ 'च' भी नहीं है ।]

सुवासिनीपूजा — यहाँ सुवासिनीपूजा का विधान है, परंतु संख्या का उल्लेख नहीं है ।

[**वसु.** — (क) होम के बाद 1350 मार्जन, एवं दान आदि करे । (ख) इस अनुष्ठान में भुवनेश्वरी-स्वरूपा लक्ष्मी की उपासना होने के कारण भुवनेश्वरी उपासक अपनी उपासना में इस ऋचोपासना का भी अंतर्भाव करे । (ग) अलक्ष्मी का विनाश करने के लिए इस ऋचा के तीन मण्डल अवश्य करे ।]

(6) षष्ठी ऋचा

[(क) द्वितीय वर्गे प्रथमाम् ऋचं जपेत् प्रीणाति बाला तरुणारुणश्रीः । यस्यास्तपोयोगबलेन बिल्वफलान्यलक्ष्मीं शमयन्ति वै नृणाम् ॥ तनुमध्यां महालक्ष्मीं बाला-त्रिपुर-सुन्दरीम् । त्रिबिल्वपत्रैः सम्पूज्य सहस्रं प्रजपेद् ऋचम् ॥ त्रिष्टुप्

शिवाक्षरा यस्माच्छिवलक्षं जपं चरेत् । बिल्वस्य हविषा होम आज्यहोमश्च शस्यते ॥ ऐश्वर्येणार्चयेद् देवीं बिल्वपत्रैर्हरिद्रया । रुद्रलक्षप्रदीपैश्च नीराजनविधिं चरेत् ॥ पक्व-बिल्वफलाहारः सततं नियतव्रतः । शान्ति कृत्वा विधानेन जगदंबाप्रसादतः ॥ अलक्ष्मीं परिभूयाथ महालक्ष्मीं स्थिरां लभेत् इति ॥ ऐं क्लीं सौः, ऐं ह्रीं श्रीं इति बीजषट्केन अनुलोमविलोमपरिवर्तनेन षट्त्रिंशन् न्यासाः ॥ ध्यानम् - उद्यदा... परिहारिणीम् ॥ अस्य मंत्रस्य विधिवद् एकादश-लक्ष-जपात् सारस्वत-सिद्धिः । चतुश्चत्वारिंशल्लक्षजपान्महदैश्वर्य-भोगभाग्याभिवृद्धिः । तावत् पारायणमात्रेणापि सभक्तिकेन तदुचितफलसिद्धिरिति तत्त्वम् । पचदशाक्षर्यां षष्ठो हकारः षष्ठीमिमां ऋचं लक्षयति । षष्ठ्याः गायत्र्याः प्रणवार्थाभिव्यंजकत्वेन हार्दाज्ञाननिवृत्ति-द्वारा मोक्षदायकत्वं च सिद्धमिति फलितम् [इति सौभाग्यसंजीवने, श्री.वि.पृ. 9-10 ॥]

(ख) शिवलिंगार्चनो.....विष्णवे ॥ श्रीवृक्ष इति विख्यातो विल्वद्रुर्देवपूजितः । त्रिगुणैस्त्रिदलैः पत्रैस्त्रिमूर्ति-प्रीतिदायकः ॥ त्रयीमयोऽयं विख्यातो....। पूज्यन्ते बिल्व-तरवः श्रीवृक्षा इति नारद ॥ फलानि श्रीतपोयोगाद् यस्यालक्ष्मीनिरासने । लक्ष्मीप्राप्तौ पटीयांसि सेव्यन्ते पुण्यशालिभिः । ज्ञानप्रदमिमं वृक्षं दारिद्र्य-परिहारकम् । श्रीप्रियं योऽर्चयेद् बिल्वं स नरो भाग्यवान् भवेत् ॥ श्रीयंत्रं बिल्वपत्रैस्तु शिवलिंगमथापि वा । योऽर्चयेदन्वहं भक्त्या पुरुषार्थान् समश्नुते ॥ इत्यादि ॥ कालिदासकृत.... पाणिभिः [इति - स्कांदे सनत्कुमार-संहितायां बिल्वमाहात्म्ये । श्री.वि.पृ. 10] ॥

(ग) आदित्यवर्णे..... बालारूपमत्र सूचितं भवति । वनस्पति.... वचनात् । तत्रत्य बिल्वफलस्नानाशनादिकम् अलक्ष्मीपरिहारकं भवतु इति भावः [इति सारस्वतसिद्धौ, श्री. वि. पृ. 9]

फल - अलक्ष्मी का विनाश होकर स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । विद्याप्राप्ति, भाग्यवृद्धि [सर्वपुरुषार्थ-प्राप्ति] ज्ञान-प्राप्ति और हृदयगत अज्ञान की निवृत्ति होकर मोक्ष-प्राप्ति भी होती है ।

विशेष नियम - व्रत के [शास्त्र संमत] धर्मों का पालन करते हुए, पके बिल्व फलों का आहार ले । [यह न हो सके तो बिल्व-फल का शरबत पी सकते हैं ।]

न्यास - ऐं क्लीं सौः, ऐं ह्रीं श्रीं, बीजों को अनुलोमविलोम परिवर्तित करके 36 न्यास करे । [वसु. -(क) यहाँ 36 न्यासों की स्पष्टता एवं न्यास पद्धति

नहीं बताई है। (ख) ऐं क्लीं सौः बालामंत्र है। यहाँ बालास्वरूपा लक्ष्मी की उपासना होने से न्यास में बालमंत्र का उपयोग आवश्यक है। ऐं ह्रीं श्रीं बीज श्रीक्रम में मंत्रादौ रखने का विधान है - सर्वेषां मंत्राणामादौ त्रितारी-संयोगः। त्रितारी वाङ्माया-कमलाः - परशु. 3-8]

ध्यान - उद्यदादित्य-संकाशां बिल्वकाननमध्यगाम्।
तनुमध्यां श्रियं ध्यायेद् अलक्ष्मीपरिहारिणीम्॥

पूजन - महालक्ष्मी के पूजन पश्चात् बिल्व-फल और बिल्व-वृक्ष का भी पूजन करे। पूजन में त्रिदल बिल्व-पत्रों एवं हलदी को अर्पण करना अनिवार्य है। यह पूजा राजा की तरह ऐश्वर्यपूर्ण होनी चाहिए। [तभी पूर्णफल मिलेगा।] आरती ग्यारह लाख दीपकों से करे। [**वसु.** - अनुष्ठानकाल में एक सौ ग्यारह अथवा ग्यारह दीपकों की त्रिकाल आरती करने से एक मास में अनुक्रम से करीब दश हजार या एक हजार की संख्या बन सकती है।] भक्तिभाव से श्रीयंत्र अथवा शिवलिंग की बिल्व-पत्रों से पूजा करने से चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं।

जप - ग्यारह लाख जप और तद्दशांश तर्पण आदि सर्व अंग संपन्न करने से यह मंत्र सिद्ध होता है। इस के बाद ही काम्यप्रयोग कर सकते हैं, जैसे कि, (क) ग्यारह लाख के अनुष्ठान से विद्याप्राप्ति होती है। (ख) 44 लाख के अनुष्ठान से महाऐश्वर्य एवं महाभाग्य की प्राप्ति होती है। (ग) सतत जप से [प्रतिदिन कम से कम एक हजार] हृदय का अज्ञान दूर होकर ज्ञानप्राप्ति द्वारा मोक्ष मिलता है। इतना ही नहीं, विविध कामनाऐं भी पूर्ण होती है।

होम - बिल्व की हवि और गोघृत से होम करे। [**वसु.** — आधी आहुतियाँ बिल्व-हवि से और आधी आहुतियाँ गोघृत से दे। बिल्व-हवि का अर्थ बिल्व फल और बिल्व समिधा हो सकता है।]

[**वसु.** — (क) शान्तिकर्म संपन्न करके अनुष्ठान करने का विधान है, परंतु शान्तिकर्म के अंग बताए नहीं हैं। (ख) सर्वत्र तर्पण आदि शेष अंगों को सम्पन्न करना अनिवार्य है जैसे कि, ग्यारह लाख जप हो तो एक लाख दश हजार तर्पण, ग्यारह हजार आहुतियाँ, [ग्यारह हजार मार्जन], 1100 ब्रह्मभोजन और 110 सुवासिनियों की पूजा एवं दान आदि अंग, राजा की तरह ऐश्वर्यपूर्ण किये जाए।

(ग) बिल्व फल में अलक्ष्मी को भगाने की एवं लक्ष्मी-प्राप्ति कराने की निपुणता है। बिल्ववृक्ष दरिद्रता का विनाश करके भाग्यवान् बनाता है। यह वृक्ष ज्ञानप्रद भी है। (घ) यहाँ बाला का संबंध होने के कारण बाला-उपासक इस ऋचा का भी जप आदि करे। (ङ) इस ऋचा का संबंध लक्षणा द्वारा पंचदशी मंत्र के छठे वर्ण हकार के साथ बताया गया होने से पंचदशी का उपासक इस ऋचा का भी जप आदि करे।]

[7] सप्तमी ऋचा

[अनुष्टुभर्चं श्रीसूक्ते सप्तमीं प्रजपेद् बुधः। द्वात्रिंशल्लक्षपर्याप्तौ सिद्धिं प्राप्नोति नान्यथा॥ कुबेराद्यास्तस्य देवाः प्रत्यक्षाः स्युर्न संशयः। चिन्तामण्यादि-रत्नानि नवापि निधयस्तथा॥ वशे तस्य भविष्यन्ति सिद्धमंत्रस्य योगिनः। भूतप्रेतपिशाचादि -ग्रहपीडा-निवारणम्॥ प्रयतः प्रजपेन्मंत्रं रात्रिकाले विशेषतः। दुर्वाभिर्बिल्वपत्रैश्च सकुशैश्च कुशेशयैः॥ सहरिद्राक्षतयवैस्तण्डुलैश्च समौक्तिकैः। कुंकुमैरर्चयेद् देवीं प्रसूनैश्च विशेषतः॥ केतकी-कुंद-मंदारैस्तुलसी-दमनादिभिः। लक्ष्मीनाम्नां सहस्रेण श्रीबीजसहितेन च॥ श्रीयंत्रं पूजयेन् नित्यं नित्यकर्माविरोधतः। प्रजपेत् तुल्यगायत्रीं पुरश्चरणदीक्षितः॥ सपाशांकुशमायां च सहाकर्षण-पल्लवम्। स्वाहान्तं च नमोन्तं च श्रीमंत्रं ऋचि योजयेत्॥ सप्रवालाक्षमालाकस्त्रिसंध्यं नियतो जपेत्। धूपयेद् यक्षधूपैश्च घृतदीपैश्च भासयेत्। द्राक्षाफलं च खर्जुरं रंभा-क्षीरेक्षुसंयुतम्। मध्वाज्यदाडिमी-चूतनारिकेलान् समर्पयेत्॥ सुवासिनीः समभ्यर्च्य स्तुत्वान्यैः स्तोत्रपाठकैः। हुत्वापामार्गसमिधो घृताहुतिपुरःसरः॥ कट्वम्ल-लवणादीनि त्यकत्वा नियतभुग् व्रती॥ सार्धद्विवत्सरे सिद्धिं प्राप्नुयान् नात्र संशयः इति॥ आं ह्रीं क्रों, ऐं श्रीं ह्रीं, आं ह्रीं क्रों इति बीजनवकं प्रतिन्यासं योजयेत्। अस्य मंत्रस्य..... सिद्धये इति श्रीरत्नकोशे, श्री.वि.पृ. 11-12]

फल - (क) आण्डवल्ली (श्री वि. पृ.11) के अनुसार लक्ष्मीप्राप्ति के लिए कुबेर अधिकृत हैं। लक्ष्मीदेवी जिस पर कृपा करती है, उसके पीछे कुबेरजी दौडते रहते हैं। [अर्थात् धन, ऐश्वर्य, आदि अपने आप आ जाते हैं।] कीर्ति, पुष्टि, समृद्धि, विजय, आरोग्य आदि लक्ष्मीजी की सेविकाएँ हैं। क्षीर-सागर से उत्पन्न हुआ चिन्तामणि भी लक्ष्मीजी का आश्रित है। (ख) श्रीरत्नकोश के अनुसार कुबेर आदि देव प्रत्यक्ष होते हैं। चिन्तामणि आदि रत्न, एवं नवनिधि वश में हो जाते हैं और भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह, आदि की पीडा दूर होती है।

विशेष नियम - अनुष्ठानकाल में व्रत रख कर, ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पूर्ण पालन करे। संयमी बन कर मर्यादित [हविष्य] अन्न ले। तीखा [कटु], खट्टा एवं नमकीन आहार न ले।

विशेष विनियोग - [**वसु.** — समग्र श्रीसूक्त की उपासना में पूर्ववत् विनियोग करे, परंतु जब केवल इसी एक ही ऋचा का अनुष्ठान करना हो तो इस तरह विनियोग करे।] -अस्य श्री [उपैतु... मे इति] मंत्रस्य कुबेर ऋषिः, मणिमालिनी-लक्ष्मीर्देवता अनुष्टुप् छन्दः, श्रीं ब्लूं क्लीं बीजानि.... प्राप्तये जपे (पूजायां, होमे, तर्पणे, मार्जने) विनियोगः ।]

न्यास - [ऋष्यादि न्यास करके] करादि, हृदयादि न्यास में आं ह्रीं क्रों, ऐं श्रीं ह्रीं, आं ह्रीं क्रों इन नौ बीजों को लेना है। [**वसु.** — जैसे कि ॐ, आं ह्रीं क्रों, ऐं श्रीं ह्रीं, आं ह्रीं क्रों अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि। यहाँ आं ह्रीं क्रों आत्ममंत्र है, जो प्राणप्रतिष्ठामंत्र में आदि में रहता है। यह त्र्यक्षरात्मक मंत्र वशीकरण मंत्र है - शारदा. 4-81, पृ. 151, और 9-82, पृ. 259] यहाँ ऐं श्रीं ह्रीं मंत्र को आत्ममंत्र का संपुट दिया गया है।]

ध्यान - राजराजेश्वरीं लक्ष्मीं वरदां मणिमालिनीम् ।
देवीं देवप्रियां कीर्तिं वन्दे काम्यार्थ-सिद्धये ॥

पूजा - लक्ष्मीपूजा में केसर [कुंकुम], दूर्वा, बिल्व पत्रों, कुशों के साथ कमलों से, हलदी के साथ अक्षत एवं यवों से, और मोतियों के साथ तण्डुलों से अर्चन करे। केतकी [गुजराती में केवडा], कुन्द [माध्य, गुजराती में मोगरो], अर्कपुष्प [मन्दार], तुलसी, दमन [हिन्दीमें दवना और गुजरातीमें नागदमनी], आदि पुष्पों को अर्पण करे। राल [यक्ष] का धूप और गोघृत का दीपक करे। द्राक्ष, शहद, गोघृत, अनार [दाडिम], आम, नारियल और ईख, दूध एवं केले के साथ खजूर, अर्पण करे।

श्रीयंत्र की पूजा - अपने नित्यकर्म सम्यक् रूप से संपन्न कर लेने के पश्चात् ही प्रतिदिन श्रीयंत्र की पूजा लक्ष्मीसहस्त्रनामों से करे। इन नामों में [प्रत्येक नाम के पूर्व में] 'श्रीं' बीज जोडा जाए। जैसे ॐ [ऐं ह्रीं] श्रीं लक्ष्म्यै नमः।

[**वसु.** — अक्षत और तण्डुल का भेद- (क) **अक्षत** = हाथों से छिलके निकाले गए, दोनों तरफ नोक वाले और शुद्धजल से धोए हुए चावल। [पूजा

में अक्षत का उपयोग होता है ।] (ख) **तण्डुल** = धान से छिलके निकाले गए चावल। (शस्यं क्षेत्रगतं प्राहुः सतुषं धान्य उच्यते। निस्तुषः तण्डुलः प्रोक्तः स्विन्नमन्नमुदाहृतम् - इति)]

जप - जितेन्द्रिय बन कर ढाई वर्षों में प्रवाल की माला से 32 लाख जप संपन्न करे। जप-कर्म तीनों संध्याकाल में होना अनिवार्य है, फिर भी रात्रि में अधिकाधिक जप करने का विधान है। प्रतिदिन जितना ऋचाजप हो, उतनी संख्या में गायत्री जप भी करे। [**वसु.** - यहाँ गायत्री का अर्थ लक्ष्मीगायत्री समझना है। ॐ महालक्ष्म्यै विद्महे, महाश्रियै धीमहि। तन्नः श्रीः प्रचोदयात्- श्रीविद्या. श्वास 8, पृ. 153। अन्य गायत्रीमंत्र अष्टमी ऋचा में दिये हैं।]

उपास्य मंत्र - [पल्लव पद्धति से] अर्थात् इस ऋचा के अन्त में आं [पाश]; क्रों [अंकुश][- राघव., शा. 9=82, पृ. 259]; ह्रीं [माया] और आकर्षणबीज [?] के अन्त में स्वाहा और नमः जोडने हैं। [**वसु.** - (क) यदि **श्रीं** का भी संपुट दिया जाए तो अधिक फलप्रद होगा, अपनी गुरुपरंपरा अनुसार चले। (ख) जैसे ॐ। [श्रीं]॥ उपैतु....ददातु मे॥ [श्रीं]॥ आं क्रों ह्रीं आकर्षण बीज [?], नमः अथवा स्वाहा॥ (ग) आकर्षण बीज श्रीरत्नकोश में खोजा जाए। (घ) प्रायः '**स्वाहा**' और '**नमः**' एक साथ संयुक्त नहीं होते हैं, इस लिए इसकी व्यवस्था ऐसी हो सकती है कि, होम में स्वाहान्त, और पूजा में नमः-अन्त मंत्र। तर्पण में पुरश्चर्यार्णव के अनुसार 'शक्तिमंत्र में स्वाहा भी अथवा नमः भी लग सकता है'-पुरश्च. पृ. 546। जप में **नमः** रखना अधिक युक्तिसंगत है।]

होम - गोघृत की और अपामार्ग [गुजराती में अंघाडी] की आहुतियाँ दे। [**वसु.** - संख्या-निर्देश नहीं है। गोघृत की आधी आहुतियाँ देकर अपामार्ग की आधी आहुतियाँ दी जाए। दो दो लाख के 16 मण्डल करने में अधिक सुविधा रहेगी॥ जैसे एक लाख ऋचा जप और एक लाख गायत्री जप के एक मण्डल में जपान्ते तर्पण [दश हजार], मार्जन [1000], ब्रह्मभोजन [100] और सुवासिनी की [10] संख्या रहेगी। गायत्री में भी ये ही अंग करने हैं। केवल होम में भिन्नता है, जैसे - (क) प्रथम ऋचा की पद्धति अनुसार गायत्री होम 1000 और ऋचा होम 1000 रहेगा। (ख) अष्टमी ऋचा पद्धति अनुसार गायत्री होम जप-दशांश [दश हजार] और ऋचा होम जप-शतांश 1000 रह सकता है। शेष अंग दोनों में समान हैं। विद्वद्गण निर्णय करे।]

सुवासिनीपूजा - सुवासिनियों की पूजा करके स्तोत्रपाठ [अवश्य] करे ।

[8] अष्टमी ऋचा

[प्रजपेद् विधिना नित्यं श्रीसूक्ते चर्चमष्टमीम् । प्रत्यक्षरसहस्रं च गायत्रीमपि तावतीम् ॥ श्रीगायत्रीदशांशं तु लक्ष्मीमंत्रशतांशकम् । अनिष्टपरिहारार्थे मंत्रोयं परिकीर्तितः ॥ दौर्भाग्यं शमयेदेव दुर्लिपिं परिमार्जयेत् । वीरासनसमासीनः अग्निहोत्रपुरःस्थितः ॥ फलाशी प्रजपेन् मंत्रं भक्त्या रुद्राक्षमालया । तिलहोमं प्रकुर्वीत विरजामपि हावयेत् ॥ घृतेन जुहुयाल्लक्ष्मीं दौर्भाग्यं तस्य नश्यति । सौभाग्यं जायते तस्य नात्र कार्या विचारणा । **'रं ह्रीं श्रीं ह्रीं रं'** इति बीजपंचकेन समंत्रांग-न्यासः ॥ ध्यानम्-अज्ञान.... श्रियमिति- लक्ष्मीयामले, श्री.वि.पृ.13]

फल - अनिष्टशमन, दौर्भाग्यविनाश, और विधाता के दुर्भाग्यपूर्ण लेख में परिवर्तन होकर [दुर्लिपिं परिमार्जयेत्] सुभाग्य की प्राप्ति होती है ।

नियम - फलों का आहार करके, वीरासन में स्थित होकर, होमाग्नि के सन्मुख, रुद्राक्ष माला से भक्तिपूर्वक जप करें ।

न्यास - **'रं ह्रीं श्रीं ह्रीं रं'** इन पाँच बीजों को न्यास-मंत्र में जोडकर करादि-हृदयादि-अंगन्यास करे । [**वसु.** - (क) यहाँ **श्रीं** बीज को **'रं ह्रीं'** का अनुलोमविलोम संपुट दिया गया है । (ख) इन पाँच बीजों को कहाँ लगाना है । इसकी सूचना न होने के कारण इन बीजों को न्यास-मंत्र के पूर्व में लगाना युक्तिसंगत रहेगा ।]

ध्यान —

(क) अज्ञान-पातक-तमस्तततितीव्ररश्मिं दौर्भाग्य-भूधरविदारण-वज्रमीडे ।
रोगार्ति-घोरफणि-मर्दन-पक्षिराजं लक्ष्मीपदद्वयमनर्थहरं सुखार्थी ॥

(ख) खड्गं सवातचक्रं च कमलं वरमेव च ।
करैश्चतुर्भिर्बिभ्राणां ध्यायेच् चन्द्राननां श्रियम् ॥

[**वसु.** — प्रथम श्लोक में लक्ष्मी-चरणों का और द्वितीय श्लोक में चन्द्रमुखी चतुर्भुजा महालक्ष्मी का ध्यान है ।]

जप - इस ऋचा के 32 अक्षर होने के कारण 'प्रत्यक्षरसहस्रं' के हिसाब से 32 हजार ऋचा जप और 32 हजार गायत्री-जप अग्निहोत्र के सन्मुख करे ।

[**वसु.** — श्रीगायत्री के विविध पाठभेद इस तरह हैं -

[क] (1) ॐ महालक्ष्म्यै च विद्महे, सर्वशक्त्यै च धीमहि ।
तन्नो देवी प्रचोदयात् - देवी अथर्वशीर्ष - (12) ॥

[ख] (2) ॐ महालक्ष्म्यै विद्महे, महाश्रियै धीमहि । तन्नः श्रीः प्रचोदयात्- [महालक्ष्मीपदं प्रोच्य विद्महे तदनन्तरम् । महाश्रियै पदं चोक्त्वा धीमहीति पदं वदेत् । तन्नः शब्दाच्छ्रीपदं च ततो दद्यात् प्रचोदयात् - इति तंत्रान्तरे -पुरश्च. पृ. 507]

[ग] (3) ॐ महादेव्यै च विद्महे, विष्णु पत्न्यै च धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥

(4) ॐ महादेवी च विद्महे, विष्णुपत्नी च धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥

(5) ॐ महालक्ष्म्यै च विद्महे, महाश्रियै च धीमहि । तन्नः श्रीः प्रचोदयात् - [मंत्रमहार्णव, पृ. 28; परंतु वहाँ तीनों मंत्रों का मूल नहीं बताया है ।]

[घ] (6) ॐ श्रीविद्यायै विद्महे, रत्नेश्वर्यै धीमहि । तन्नो देवी प्रयोदयात् ॥

(7) ॐ सिद्धलक्ष्म्यै " " " । " " " ॥

(8) ॐ श्रीविद्यायै " महाश्रियै " । तन्नः श्रीः " ॥

(9) ॐ महालक्ष्म्यै " " " । " " " ॥

(10) ॐ साम्राज्यलक्ष्म्यै " जयंकर्यै " । " " " ॥

(11) ॐ लक्ष्म्यै देव्यै " श्रीदेव्यै " । " " " ॥

- श्रीविद्या., श्वास 8, पृ. 153 [**वसु.** — इन गायत्री-मंत्रों में नं. 2, 5, और 8 से 11 अधिक बलवान् प्रतीत होते हैं । मंत्रीपद के लिए नं. 10 का उपयोग उचित हैं ।]

होम - श्रीगायत्री से 3200 तिलाहुतियाँ देकर, धर्मसिन्धु-प्रोक्त [पृ. 777] विरजाहोम करे । बाद में ऋचा से 320 घृताहुतियाँ प्रदान करे ।

वीरासन - पू. श्री पद्मपादाचार्यगुरुजी ने वीरासन का लक्षण बताया है - एकपादमधः कृत्वा विन्यस्योरौ तथेतरम् । ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमुदाहृतम् - [प्रपंच. 19-18 का विवरण, पृ. 227] ।

[**वसु.** — (क) अग्निहोत्रपुरःस्थितः की व्यवस्था ऐसी हो सकती है कि, नित्य-होम सम्पन्न करके, उस अग्नि के सन्मुख अनुष्ठान किया जाए ।

[ख] श्रीसूक्त के अनुष्ठान के प्रारंभ में अलक्ष्मी विनाशक ऋचाओं का अनुष्ठान किया जाए । इस अनुभूत ऋचा की सहायता अवश्य ली जाए ।]

[9] नवमी ऋचा

[ऋचमानुष्टुभीं गन्धद्वारामिति जपेच्छ्रियः । षष्ठ्युत्तरशतानां तु सहस्राणां च संख्यया । पद्माक्षमालया पद्मासनस्थः सह पार्थिवम् । बीजं विन्यस्य मंत्रेण श्रीबीजेन च तज्जपेत् ॥ केसरीचन्द्र-कस्तूरी- श्रीखण्डाद्यैर्मनोहरैः । गंधद्रव्यैस्समभ्यर्च्य स्थण्डिले श्रियमर्चयेत् ॥ गोवृन्दानुगतां ध्यात्वा सुरभिं सस्यमालिनीम् । पृथुलां प्राणीनामीशां दुर्धर्षां श्रियमर्चयेत् ॥ कृषिफलप्रदः धनधान्यपशुसमृद्धिकरः पुण्यगन्धप्रदः महत्त्वापादकः प्रभुत्वसाधकश्च मंत्रो'यम्- (इति वैखानस-विद्यायाम् - श्री. वि. पृ. 14) । ढुण्ढिराज में 'केसरा-चन्द्र' पाठ है ।]

फल - वैखानसविद्या के अनुसार कृषि-वृद्धि, धन-धान्य-पशुओं की समृद्धि, पुण्यगंध-प्राप्ति [पवित्र सुगन्ध] एवं सत्ताप्राप्ति के लिए और महामानव एवं अग्रणी बनने के लिए, इस ऋचा का प्रयोग अवश्य किया जाए ।

न्यास और जप - [वसु.— **'सह पार्थिवं....... तज्जपेत्'** विधान का अर्थवैविध्य इस प्रकार हैं - पार्थिव [भू] बीज ग्लौं है- [मं. महो. 1-189; पृ. 12] (1) मंत्र के साथ पार्थिव बीज को जोडकर न्यास करना है और मंत्र के साथ श्रीं बीज जोड कर जप करना है, जैसे कि, **'ग्लौं गन्धद्वारां.....श्रियम्'** से न्यास और **'श्रीं'** गन्धद्वारां. से जप करना है । (2) न्यास पद्धति उपर्युक्त है । जप पद्धति में दोनों बीजों के साथ ऋचा का जप है, जैसे कि, (क) ग्लौं गन्धद्वारां... श्रियम्, श्रीं । अथवा (ख) ग्लौं श्रीं गन्धद्वारां. (ग) अथवा श्रीं ग्लौं गन्धद्वारां. (घ) अथवा गन्धद्वारां श्रियम्, श्रींग्लौं । विद्वद्गण निर्णय करे ।]

जपसंख्या - 'षष्ट्युत्तर.......संख्या' विधान का अर्थ 160 हज़ार [अर्थात् एक लाख साठ हजार] होगा । पद्मासन में बैठ कर कमलगंठा की माला से जप करें ।

ध्यान - **गोवृन्दा..... श्रियमर्चयेत्** ॥ अर्थात् गायों के पीछे पीछे चलती हुई, धान्य की मालावाली, सर्व प्राणियों की स्वामिनी, दुर्धर्ष (अपराजेय) सुरभि (गाय) रूप लक्ष्मी का ध्यान करते हुए इस ऋचा का अनुष्ठान किया जाए ।

पूजा - केसरीचन्द्र [चन्द्र=कर्पूर], कस्तूरी, श्रीखण्ड [सुखड का चन्दन] आदि सुगन्धवाले मनोहर द्रव्यों से पूजा करें । [केसरीचन्द्र का अर्थ स्पष्ट नहीं है, कदाचित् कर्पूरयुक्त केसर ऐसा अर्थ हो सके ।] मिट्टी-निर्मित [स्थण्डिल] के उपर लक्ष्मी (की मूर्ति अथवा श्रीसूक्त-यंत्र) की पूजा करें। [**वसु.** — श्रीरहस्य के अनुसार भूमि लक्ष्मी का अंश है [- श्रीर्भू नीला रमा दुर्गा सीता सत्या च भामिनी । रुक्मिणी-तुलसी-राधास्सर्वा लक्ष्म्यंश-संभवाः इति श्रीरहस्ये, पृथ्वी. श्री. वि. पृ. 13]

[10] दशमी ऋचा

[मनसः काममित्याद्यां श्रीसूक्ते दशमीमृचम् । मनोवाङ्नियतो नित्यमष्टलक्षजपं चरेत् ॥ वाक्सिद्धिर्भोगसिद्धिश्च भोग्यलाभो भवेद् धृवम् ॥ ॐ मैं लं वं श्रीमिति सपल्लवं न्यासः । ध्यानम्-तां ध्यायेत्.... क्रियाम् इति मंत्रकल्पार्णवे - श्री.वि.पृ. 14]

फल - वाक्सिद्धि, भोगप्राप्ति और भोग्यवस्तुलाभ के लिए यह अनुष्ठान है ।

न्यास - '**ॐ मैं लं वं श्रीं**' को पल्लव-पद्धति से जोडना है । पल्लव-पद्धति में मंत्रान्ते संयोजन होता है । [जैसे कि, न्यास मंत्र के अन्त में ॐ मैं लं वं श्रीं हृदयाय नमः आदि । ढण्ढि. में भी '**मैं**' बीज मुद्रित है । यह बीज प्रसिद्ध नहीं है ।]

ध्यान - तां ध्यायेत् सत्यसंकल्पां लक्ष्मीं क्षीरोदनप्रियाम् ।
ख्यातां सर्वेषु भूतेषु तत्तज्ज्ञानबलक्रियाम् ॥

जप - आठ लाख जप है । प्रतिदिन [दिनरात] मनःसंयम और वाणी-संयम अनिवार्य है । [**वसु.** - यदि पूरे अनुष्ठान-काल में निर्विचार काष्ठमौन रखा जाए तो वाक्सिद्धि निश्चित है । इस में मन-वचन-कर्म में सात्त्विकता एवं सच्चाई अनिवार्य है ।]

[11] ग्यारहवी ऋचा

[कर्दमेनेत्यादिकां तु श्रीसूक्तैकादशीम् ऋचम् । गां सवत्सां सम्पूज्य जपेदक्षरलक्षकम् ॥ वं श्रीं वं इति न्यासः ॥ ध्यानम्- सवत्सा....मालिनी ॥ मंत्रसिद्धौ तु चिराविच्छिन्नवंशपरंपराभिवृद्धिः अखण्डैश्वर्यलाभश्च भवति ॥ संतान-

सौभाग्यप्रदोयं मंत्रः । पद्माक्षमालया गोष्ठे प्रजपेत् । बालेभ्यः पयो दद्याद् बालिकाभ्यश्च प्रत्यहं सुवासिनीम् अर्चयेत् सपुत्रामिति मंत्रकल्पार्णवे - श्री.वि.पृ. 15] [ढुण्ढि. में 'श्रीं वं' इतिन्यासः' ऐसा पाठ है । [अर्थात् न्यासमंत्र के दो पक्ष हैं । इन में 'वंश्रींवं' पाठ अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है ।]

फल - [मंत्रसिद्धि के बाद किये गए काम्य] अनुष्ठान से सौभाग्य, संतान, चिरकाल तक अविच्छिन्न वंशपरंपरा और अखण्ड ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। [**वसु.** - तंत्र का अनिवार्य सिद्धान्त है कि, सभी अनुष्ठानों में मंत्र को सिद्ध करने के बाद ही काम्य प्रयोग हो सकते हैं ।]

न्यास - '**वं श्रीं वं**' से न्यास करना है, जैसे कि '**वं श्रीं वं अंगुष्ठाभ्यां नमः**'

ध्यान - सवत्सा गौरिव प्रीता कर्दमेन तथेन्दिरा ।
कल्याणी मद्गृहे नित्यं निवसेत् पद्ममालिनी ॥

पूजा - (प्रतिदिन) नित्यपूजा के बाद (1) सवत्सा गाय की पूजा करके जप का प्रारंभ किया जाए । (2) प्रतिदिन सपुत्रा सुवासिनी का [वस्त्र, अलंकार, भोजन आदि से] अर्चन करना है और बटुक-कुमारिकाओं को [बादाम, केसर आदि से युक्त गाय का] दूध पिलाना है ।

जप - इस ऋचा के 32 अक्षर होने से 32 लाख जप का अनुष्ठान है । गाय बांधने की जगह [गोष्ठ] में बैठ कर कमलगंठा की माला से जप करे ।

[**वसु.** — (1) प्रतिदिन समान संख्या में जप करें । (2) प्रथम ऋचा के प्रयोग अनुसार एक लाख का एक, ऐसे 32 अनुष्ठान करने में सरलता रहेगी । 10 सुवासिनियों, 10 बटुकों और 10 कुमारिकाओं की पूजा की जाए । यह एक अनुष्ठान हुआ । सुवासिनी सपुत्रा होनी चाहिए । (यदि उसके एक भी पुत्र की मृत्यु न हुई हो, तो अधिक अच्छा रहेगा ।) बटुक-कुमारिकाओं की उम्र 2 से 10 वर्ष के मध्य की होनी चाहिए । (प्रतिदिन गाय को गुड-रोटी खिलाने का फल अवश्य मिलता है । स्वयं अनुभव करें ।)]

[12] बारहवी ऋचा

[यदग्रे आप..... [अद्भ्यः पृथिव्यादिकं जातम्] जायते लीयते यत्र जगत् तज्जलमीरितम् ॥ तज्जला.... परमाणवः । [आपः] जगद्भावाय संबद्धास्तद्धानौ

स्याज्जगल्लयः । तस्मादुपासको देवीं प्रार्थयेद् अप्स्वरूपिणीम् ॥ ...... ॥ लक्ष्म्या-स्त्रिवर्ग-रूपायाः प्राप्तिः कामनिबन्धना ॥ तस्माच् चिक्लीतनामानं लक्ष्मीपुत्रं हि दुर्जयम् । कामदेवं समाराध्य यत्नतः प्राप्नुयाच्-छ्रियम् ॥ लक्ष्मीः प्रयत्न-साध्या हि यत्नः काम-समुद्भवः ॥..... ॥ चिक्लीत श्रीसुत.... नमो नमः ॥.... चन्द्रमा ऋषिरेतस्य देवता त्वमृतेश्वरी । चिक्लीत-माता श्रीच्छन्दोनुष्टुब् वं बीजमुच्यते । चतुःषष्टि सहस्राणि प्रजपेन् मंत्रसिद्धये । नद्यास्समुद्रगामिन्यास्तीरे बिल्वतरोस्तटे । जलकुंभं समभ्यर्च्य चेष्टिं चाभीष्टकां चरेत् । यच्च याजुषशाखायामुक्तम् आरुणकेतुके । तेन तंत्रेण सहितं स्वशाखोक्त-विधिं चरेत् । प्रपादानं प्रकुर्वीत दद्यात् पानीयमेव च । सुवासिनीभ्यो विप्रेभ्यस्तदपत्येभ्य एव च । भूताप्यायनतो देवी तुष्यति श्रीर्हरिप्रिया । तस्यान्नं **भोगजातं** च तदिच्छासमकालिकम् । हितं मृष्टं समृद्धं च शुद्धं यावदपेक्षितम् । तत्कुटुम्बस्य पर्याप्तं तदाश्रितजनस्य च । तदावासे तत्कुले च महालक्ष्मीः स्थिरा भवेत् इति- [सूक्तार्थ-संग्रहे, श्री.वि.पृ. 16] । [ढण्ढि. में 'तस्यान्नं **भोग्यजातं** पाठ है ।]

जलस्वरूपा नारायणी - सूक्तार्थ-संग्रह के अनुसार श्रीहरि का अयन जल है और उनकी स्वाभाविकी शक्ति नारायणी है । जल से पृथ्वी, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, नर आदि सर्व उत्पन्न हुए हैं । जल को जीव, जीवरस, एवं दिव्य अमृत कहते हैं । जल शब्द में दो वर्ण हैं -(1) **ज** = जिससे जगत् उत्पन्न होता है । (2) **ल** = जिसमें जगत् विलीन होता है । जायते लीयते यत्र जगत् इति जलम् । इस लिए जलस्वरूपिणी नारायणी की उपासना आवश्यक है । [**वसु.**- नवरात्र आदि में पूर्ण-कलश-जल स्वरूपा दुर्गा देवी का यजन होता है । संभव है कि, यंत्र एवं मूर्तिपूजा के पहले के समय में जल में देवी की पूजा होती थी, ऐसा अनुमान है । वर्तमानकाल में भी यज्ञों में वर्धनी-कलश-जल में अस्त्रदेवी की पूजा, ग्रहस्थापन में ईशानस्थ वरुण-कलश-जल में सांगरुद्रजप और मध्यपीठ में जलपूर्ण कलश के उपर प्रधान देवता का यंत्र या मूर्ति की पूजा करने की परंपरा चल रही है । कलश-जल की उपस्थिति में पुण्याहवाचन कर्म होता है और गृह एवं मण्डप में प्रवेश के समय सजल कलश को हाथ में रखने का विधान है ।]

लक्ष्मीप्रीति में चिक्लीत की सहायता - धर्मलक्ष्मी, अर्थलक्ष्मी और कामलक्ष्मी की प्राप्ति का संबंध काम के साथ है । यह काम चिक्लीत है, जो लक्ष्मीमाता

के स्तनों से उत्पन्न हुआ है। अतः लक्ष्मीपुत्र काम (चिक्लीत) की आराधना द्वारा प्रयत्नपूर्वक लक्ष्मीदेवी को प्राप्त करें, क्यों कि (प्रिय पुत्र) चिक्लीत के पीछे पीछे (उसकी) माता लक्ष्मी को आना ही पडता है , इस लिए लक्ष्मीप्राप्ति के लिए चिक्लीत को प्रार्थना करके प्रसन्न करना आवश्यक है।

चिक्लीत को प्रार्थना - [**वसु.** — प्रतिदिन लक्ष्मी-उपासना के अंत में चिक्लीत-प्रार्थना और लक्ष्मी-प्रार्थना करना जरूरी है। अनुभव अवश्य करें।] ''चिक्लीत श्रीसुत स्वामिन् चिरं निवस मद्गृहे। मत्कुले सुचिरं तिष्ठ मच्चित्ते सन्निधिं कुरु ॥ त्वदागमनमात्रेण त्वन्माता त्वाम् अनुव्रजेत्। त्वयि प्रीतिपरा सा हि तव-च्छन्दोनुवर्तिनी ॥ श्रीदेवी तां मम गृहे चिरं वासय मातरम्। नमोस्तु तुभ्यं चिक्लीत श्रीदेव्यै च नमो नमः ॥''

फल - लक्ष्मीपुत्र चिक्लीत-काम की सहायता द्वारा इस ऋचा की उपासना से स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और काम के प्रहारों से बचे हुए श्रोत्रिय को ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

विनियोग - [**वसु.** — समग्र श्रीसूक्त की उपासना में पारंपरिक विनियोग किया जाए, परंतु जब केवल इस ऋचा की उपासना करनी हो तब सूक्तार्थ-संग्रह मान्य विनियोग किया जाए। जैसे कि - अस्याः आपः स्रजन्तु...... कुले, इति ऋचः चन्द्रमा ऋषिः, चिक्लीत-माता अमृतेश्वरी श्रीर्देवता, अनुष्टुप् छंदः, वं बीजम्.... प्राप्तये पूजायां (जपे, होमे, तर्पणे, मार्जने च) विनियोगः।]

न्यास - (ऋष्यादि न्यास करके करादि-हृदयादि करें)

ध्यान - सूते नरांश्च या आपः ता यदस्यायनं हरेः। तस्य स्वाभाविकी शक्तिर्देवी नारायणी स्मृता ॥ अद्भ्यो हि पृथिवी जाता अग्निरप्यभवत् तथा। वायुरर्को ह्यपां वत्सश्चन्द्रमाः सर्वमप्यथ ॥ जीवं जीवरसं दिव्यम् अमृतं जलमुच्यते। जायते लीयते यत्र जगत् तज्जलमीरितम् ॥ तज्जलासि च शान्तात्मा चिरं जलमुपासते।

पूजा - समुद्र को मिलनेवाली नदी के तट पर [अर्थात् रण में मिलनेवाली नदी के तटपर नहीं], बिल्व वृक्ष के नीचे, जल-कुंभ की विधिवत् स्थापना करके, जलस्वरूपा लक्ष्मी का अर्चन करके [अर्थात् लक्ष्मी-मूर्ति या यंत्र की स्थापना यहाँ नहीं है।] यजुर्वेद में आरुण-केतुक-प्रोक्त इष्टि, स्वशाखानुसार

करके, लक्ष्मी माता को प्रार्थना करें। **लक्ष्मी प्रार्थना** – [अप्सु प्रतिष्ठितः स्नेहः तेनैव परमाणवः । जगद्भावाय संबद्धाः तद्धानौ स्याज्जगल्लयः ॥ तस्माद् उपासको देवीं प्रार्थयेद् अप्स्वरूपिणीम् ।] भोग्य-द्रव्याणि सर्वाणि मम स्निग्धानि मातृका। सृजतु श्रीरूपां देवी भोग-भावाय भामिनी ॥

जप - मंत्र को सिद्ध करने के लिए इस ऋचा का 64 हजार जप का विधान है। [प्रथम ऋचा की उपासना पद्धति अनुसार तर्पणादि सर्व अंग संपन्न करने के बाद काम्य प्रयोग करें।] [**वसु.** – यहाँ 64 ब्राह्मणों का भोजन और 7 सुवासिनियों की पूजा है। इन ब्राह्मणों एवं सुवासिनियों को, उनके पुत्र-पौत्रादि एवं आश्रितों को अपनी अपनी इच्छानुसार तुरंत पर्याप्त मात्रा में हितकारी, शुद्ध एवं उत्कृष्ट कक्षा का अन्न एवं भोग्य पदार्थों का दान करें। उनके लिए जल की भी व्यवस्था करें [इस के अलावा मार्ग में फिल्टर्ड शीतल जल की प्याउँ (प्रपा) बिठाएँ ।] इस तरह प्राणियों की पुष्टि करने से नारायणी सन्तुष्ट होती है।]

[13-14] 13 और 14 वी ऋचाएँ

[**वसु.** - यद्यपि श्रीतत्त्व में **सूर्यां.** वाली ऋचा के बाद **चन्द्रां.** वाली ऋचा का क्रम है, परंतु इस पुस्तक में [हमने] प्रायः विद्यारण्य-भाष्यानुसारी क्रम का स्वीकार किया है, इस लिए यहाँ **चन्द्रां.** वाली ऋचा के बाद **सूर्यां.** वाली ऋचा की उपासना बतानी पडी है।]

[13] आर्द्रां पुष्करिणीं चन्द्रां.... आवह ॥

[मैत्र्यादिवृत्तिभि.... जपेन्निशि ॥ आरभ्य शुक्लपंचम्याम् आस्वेव दश-रात्रिषु । प्राप्तैकोत्तर-वृद्ध्यैव जपेद् व्रतपरायणः ॥ द्वात्रिंशन्मासपर्यन्तं पुरश्चरणमुच्यते । चन्द्रमण्डलमालक्ष्य लक्ष्मीं श्रीललिताम्बिकाम् ॥ सिद्धौ तु सार्वभौमत्वं वशीकरणमेव च। पूर्णानन्द-प्रतिष्ठां च कीर्तिभोगं महद्धनम् ॥ प्राप्यान्ते चन्द्र-सायुज्यं प्राप्नोत्येव न संशयः [-इति श्रीतत्त्वे - श्री. वि. पृ. 18] ।

फल - इहलोक में सार्वभौमसत्ता (प्रधानमंत्रीपद आदि), संपूर्ण आनंद [अर्थात् शोक-उद्वेग आदि का अभाव], अपरिमित धन, [सर्व प्रकार के उत्कृष्ट] भोग एवं कीर्ति की प्राप्ति होती है और परलोक में चन्द्र-सायुज्य मिलता है। [इसके द्वारा वशीकरण कभी भी नहीं करना।]

ध्यान - मेत्र्यादिवृत्तिभिश्चार्द्रां विराजः करुणां श्रियम् । दयार्द्रां वेत्रहस्तां च व्रतदण्डस्वरूपिणीम् । पिंगलाभां प्रसन्नास्यां पद्ममालाधरां तथा ॥ चन्द्रस्थां चन्द्ररूपां च चन्द्रां चन्द्रधरां तथा । हिरण्मयीं महालक्ष्मीम् [**वसु.** — ऋचमेतां जपेन्निशि की जगह '**भजामि परमेश्वरीम्**' बोल सकते हैं ।]

पूजा - चन्द्रबिम्ब में चन्द्ररूपा श्रीललिताम्बिका की पूजा का प्रत्यक्षश्रवण होने से वह अनिवार्य है । [**वसु.** — यदि स्नानादि उपचार करने हैं, तो चांदी के चन्द्रबिम्ब की पूजा कर सकते हैं, परंतु वह भी आकाशस्थ चन्द्रबिम्बकी पूजा के बाद ही करें । जप-कर्म चन्द्रबिम्ब में दृष्टि रख कर ही करें ।]

जप - यह अनुष्ठान 32 मास का है । प्रत्येक मास की शुक्ल पंचमी से दश रात्रि तक प्रत्येक रात्रि में एकोत्तर-वृद्धि-पद्धति से जप करना है । [**वसु.** — **एकोत्तर वृद्धि** = नवरात्र में एकोत्तर-वृद्धि से दुर्गापाठ करने का विधान रुद्रयामल में हैं- [पुरश्च. पृ. 959] - [जैसे प्रतिपदा को एक पाठ, द्वितीया को दो पाठ । इस तरह मूल संख्या के निश्चित युनिट को पूर्व पूर्व की रात्रि की संख्या में जोडते रहना है ।]

जप संख्या - [**वसु.** — **चन्द्रां** और **सूर्यां.** दोनों ऋचाओं के अनुष्ठान में जप संख्या नहीं बताई है । केवल **सूर्यां.** वाली ऋचोपासना में 100 सुवासिनियों के अर्चन का निर्देश-मात्र है, अन्य अंगों का निर्देश नहीं है । इस संख्या के आधार से जप संख्या का अनुमान हो सकता है, जैसे कि प्रथम ऋचा की उपासना-पद्धति अनुसार सुवासिनी पूजा पाँचवा अंग है । यहाँ दशांशवृद्धि से गिनती करने से दश लाख की संख्या मिलती है । अथवा पाँचवी ऋचा की उपासना-पद्धति अनुसार सुवासिनी पूजा चौथा अंग प्रतीत होता है, इस लिए यहाँ एक लाख की संख्या भी हो सकती है । विद्वद्गण इसका निश्चय करे।

एक लाख वाले पक्ष का स्वीकार करने से 32 मास में 32 लाख की संख्या बनेगी, जो प्रत्यक्षर-लक्ष की पद्धति से सुसंगत तो होगी, परंतु व्यवहार में संगत नहीं हो सकती, क्यों कि दश रात्रियों में कुल मिला कर एक लाख की संख्या सम्पन्न करने के लिए मूलसंख्या 1800 रखनी पडेगी, परिणामस्वरूप दसवी रात्रि में एकोत्तर-वृद्धि पद्धति से 18 हजार की संख्या बनेगी । एक लाख की संख्या बनाने के लिए दसवीं रात्रि की संख्या में एक हजार जप अधिक करने पडेंगे [अर्थात् 19 हजार जप होंगे ।] इस अनुष्ठान में जपकर्म रात्रि में

ही करने का विधान होने के कारण रात्रिकाल में 19 हजार जप होना अशक्य है, क्योंकि एक हजार जप करने में करीब 70 मिनट का समय लगता है। इस हिसाब से 19 हजार के लिए 20 से 22 घंटे लग जाएँगे, परिणामस्वरूप रात्रिकालिक जपवाली अनिवार्य शर्त का भंग होगा।

इस परिस्थिति में एक हजार की मूल संख्या निर्धारित करना व्यवहारतः युक्तिसंगत रहेगा। एक हजार की मूल संख्या को एकोत्तर पद्धति से बढ़ाते रहने पर दस रात्रियों की जप संख्या इस तरह बनेगी, जैसे- (1) 1000, (2) 2000, (3) 3000, (4) 4000, (5) 5000, (6) 6000, (7) 7000, (8) 8000, (9) 9000 और (10) 10,000। कुल 55 हजार का एक मण्डल होगा। ऐसे 32 मासों में 32 मण्डल से 17 लाख साठ हजार जप संख्या बनेगी। इस ऋचा के 32 अक्षर हैं। प्रत्यक्षर आधे लाख के हिसाब से 16 लाख होंगे। इस से अधिक संख्या में कोई विसंगति भी नहीं है, फिर भी 16 लाख ही जप करने हैं, तो उस हिसाब से मूल संख्या निर्धारित कर सकते हैं। अपनी गुरुपरंपरा अनुसार चलें।

प्रत्येक मण्डल में प्रथम ऋचा की पद्धति अनुसार सभी अंग संपन्न करें। इस अनुष्ठान में प्रारंभ की तिथि बताई गई है। दशवीं रात्रि में जो तिथि पडे उसकी चिन्ता नहीं करना, क्योंकि तिथि में वृद्धि-क्षय हो सकता है।]

[14] आर्द्रां यः करिणीं.... सूर्यां...... आवह ॥ –

[ममकारो मदश्चेति वर्तेते पार्श्वयोर्द्वयोः। देवते गजरूपिण्यौ श्रीदेवीम् अभिषिंचतः। तयोः शुण्डाग्रयोर्भात आशा-प्रीत्याह्वयावुभौ। सुवर्णकलशौ ताभ्यां तृप्तिपूर्णाम्भसान्वहम् ॥ हृत्पद्मवासिनी देवी चिद्रूपिण्यभिषिच्यते। देहे गृहात्मके विष्टेत् सहानन्देन विष्णुना ॥ एतावान् गजलक्ष्म्यास्तु विभूतेर्विस्तरो ध्रुवः। तां स्मरेत्.... म आवह ॥ ऋचम् एतां जपेन् नित्यं पश्यन्नर्कं दिवा द्विजः ॥ पद्माकरे तटाके वा प्रत्यहं त्रिसहस्रकम्। मंडलत्रयपर्यन्तं व्रत-दीक्षापरायणः ॥ सुवासिनीशतं पूज्यं सालंकारं सदक्षिणम्। सिद्धौ गजान्तरैश्वर्यम् आरोग्यं भाग्यमेव च ॥ सर्वार्थसिद्धिम् अंते तु सूर्यसायुज्यमाप्नुयात् - इति श्रीतत्त्वे, श्री. वि. पृ. 18]

फल - इह लोक में गजान्त-ऐश्वर्य, आरोग्य, भाग्यवृद्धि एवं सर्व अर्थों की सिद्धि की प्राप्ति होती है और परलोक में सूर्य-सायुज्य मिलता है।

ध्यान - इस उपासना में गजलक्ष्मी का ध्यान करें - जैसे कि, दो हाथी हैं, जिन में एक ममत्वरूप है और द्वितीय हाथी मदरूप है । दोनों की शुंडा में एक एक सुवर्ण कलश है । इस में एक आशारूप है और दूसरा प्रीतिरूप है। दोनों कलश तृप्तिरूप जल से परिपूर्ण हैं । देहरूप मंदिर में भक्त के हृदय-कमल में आनन्दमय भगवान् विष्णु के साथ चिद्रूपिणी भगवती गजलक्ष्मी विराजमान है । [यहाँ चित् और आनन्द दो लक्षण प्राप्त हो गए हैं । इस चित्र की भावना रखते हुए आगे के ध्यानश्लोक पढें - तां स्मरेद् अभिषेकार्द्रां पुष्टिदां पुष्टिरूपिणीम्। रुक्माभां स्वप्नधीगम्यां सुवर्णां स्वर्णमालिनीम्। सूर्याम् ऐश्वर्यरूपां च सावित्रीं सूर्यरूपिणीम् ॥ आत्मसंज्ञां च चिद्रूपां ज्ञानदृष्टिस्वरूपिणीम् । चक्षुःप्रकाशदां चैव हिरण्यप्रचुरां तथा। स्वर्णात्मनाविर्भूतां च जातवेदो म आवह॥

जप - बहुत कमलवाले सरोवर के अथवा तालाब के तट पर प्रतिदिन तीन हजार जप सूर्यबिम्ब की ओर दृष्टि रखते हुए, दिनकाल में ही करें ।

[**वसु.** - (क) सूर्यबिम्ब की ओर दृष्टि रखने से आँखें खराब होने लगे, तो सूर्यबिम्ब की ओर बैठ कर, आँखें बंद करके जप करें । [ख] अनुष्ठान का प्रारंभ करने से पहले दीक्षा लेकर व्रत ग्रहण करें । यहाँ जप-संख्या का निर्देश नहीं है । केवल सुवासिनियों की 100 संख्या का ही निर्देश है । इसके आधार पर आगे चन्द्रां. वाली ऋचा में की हुई स्पष्टता अनुसार एक मण्डल दश लाख या एक लाख का हो सकता है । इन दोनों पक्षों में यहाँ [सूर्यां. में] दश लाखवाला पक्ष अधिक बलवान् है, क्योंकि यहाँ तीन मण्डल करने का विधान होने के कारण 30 लाख की संख्या भी संपन्न हो सकती है । यदि प्रत्यक्षर लक्ष के हिसाब से 32 लाख जप करने हैं, तो तीसरे मण्डल में दो लाख जप अधिक किये जाए।]

सुवासिनीपूजा - 100 सुवासिनियों की पूजा अलंकार एवं दक्षिणा सहित करना अनिवार्य है । तर्पण, होम, [मार्जन], ब्रह्मभोजन (दशांश पद्धति से) करे।]

[15] पंद्रहवी ऋचा

[पंचदश्याः ऋचः कुबेर ऋषिः, प्रस्तारपंक्तिश्छंदः । 'ह्रीं श्रीं ह्रीं' इति बीजानि। द्विधा विभक्तमंत्रेण सबीजत्रयेण पल्लवेन त्रिवारम् अनुलोमविलोम-परिवर्तनतः

षोढा न्यासाः । ध्यानम् - ध्यायेल्लक्ष्मीं.... भूतिधात्रीम् । मंत्रोयं धान्यराशेरुपरि पद्माक्षमालया तुलसीकाष्ठमालया वा प्रत्यहम् अष्टोत्तरत्रिसहस्त्रप्रकारेण सहस्त्रदिवसजपात् सिद्धो भवति । व्याघ्राजिने महेन्द्रनीलाक्षमालया पंचलक्षजपाच् -छत्रून् जयति । वस्त्रासने दर्भास्तरणे वा रुद्राक्षमालया नवलक्षजपाद् विद्यां प्राप्नोति । वेत्रासने सुवर्णाक्षमालया कोटिजपाद् राज्यं प्राप्नुयात् । ऐहिक सर्वकाम-प्रदोयं मंत्रः । अर्थतस्तु एषा द्वितीयाम् ऋचम् अनुकरोति । अन्यद् अन्यत्रोक्तम् एव इति समानम् - इति मंत्रकल्पार्णवे, श्री. वि. पृ. 19] ।

फल - शत्रु-पराजय, विद्या, राज्य एवं ऐहिक सर्व कामनाओं की प्राप्ति के लिए इसके भिन्न भिन्न काम्य प्रयोग बताए गए हैं ।

विनियोग - यदि समग्र श्रीसूक्त की उपासना हो, तो आनन्दादि ऋषि आदि पारंपरिक विनियोग किया जाए । परंतु केवल इस ऋचा की उपासना हो, तो निम्न प्रकार से विनियोग करें, जैसे कि - अस्याः श्री **'तां म आवह.... पुरुषानहम्'** इति ऋचः कुबेर-ऋषिः, श्रीः अग्निश्च देवते, प्रस्तारपंक्तिः छंदः, ह्रीं श्रीं ह्रीं इति बीजानि ..... प्राप्तये जपे (होमे, पूजायां वा) विनियोगः ।

न्यास - ऋष्यादि न्यास करके करादि-हृदयादि न्यास करें । जैसे कि -

(1)	तां म आवह ..... गामिनीम्,	ह्रीं श्रीं ह्रीं	अंगुष्ठाभ्यां नमः ।	हृदयाय नमः ।
(2)	यस्यां हिरण्यं ..... पुरुषानहम्,	"	तर्जनीभ्यां " ।	शिरसे स्वाहा।
(3)	" ..... "	"	मध्यमाभ्यां " ।	शिखायै वषट्।
(4)	तां म आवह ..... गामिनीम्,	"	अनामिकाभ्यां "।	कवचाय हुम् ।
(5)	" ..... "	"	कनिष्ठिकाभ्यां "।	नेत्रत्रयाय वौषट्।
(6)	यस्यां हिरण्यं ..... पुरुषानहम्	"	करतल-करपृष्ठाभ्यां " ।	अस्त्राय फट् ।

[**वसु.** -- जहाँ षडंग न्यास-मंत्र नहीं बताए हैं, वहाँ इस पद्धति से अथवा प्रथम ऋचा के पृथ्वी. भाष्यानुसार उस ऋचा के 6 विभाग करके षडंग न्यास कर सकते हैं ।]

ध्यान - ध्यायेल्लक्ष्मीं प्रहसितमुखीं राज्यसिंहासनस्थां
मुद्राशक्तिं सकल-विनुतां सर्व-संसेव्यमानाम् ।
अग्नौ पूज्याम् अखिलजननीं हेमवर्णां हिरण्याम्
भाग्योपेतां भुवनसुखदां भार्गवीं भूतिधात्रीम् ॥

जप - धान [सतुषं धान्यमुच्यते] [गुजराती में डांगर] की राशि के उपर बैठ कर कमलगंठे की या तुलसी की माला से प्रतिदिन 3008 जप, एक हजार दिनों तक करने से [अर्थात् 30 लाख जप से] मंत्र सिद्ध होता है। मंत्र को सिद्ध करने के बाद ही काम्य प्रयोग करें, जैसे कि, (1) शत्रु पराजय करने के लिए व्याघ्र-चर्म के आसन उपर बैठ कर महेन्द्रनील [एक प्रकार का रत्न] की माला से पाँच लाख जप करें। (2) विद्याप्राप्ति के लिए वस्त्र या दर्भ के आसन उपर बैठ कर रुद्राक्ष की माला से नौ लाख जप करें। (3) राज्यप्राप्ति (मंत्रीपद) के लिए वेत्रासन [गुज. में नेतर का आसन] के उपर बैठ कर सुवर्ण की माला से एक करोड जप करने हैं। संक्षेप में कहा जाए तो इस मंत्र की उपासना से सभी प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। [**वसु.** – वस्त्र की अपेक्षा दर्भ का आसन अधिक अच्छा है। प्रथम ऋचा में एक लाख के हिसाब से दी गई तर्पणादि की संख्या एवं क्रम के अनुसार पाँच लाख, नौ लाख की गिनती कर लें। **(16) यः शुचि. ऋचाः पृ.183 पर है।**]

***

6 शान्ति कर्म

यद्यपि बहुत कम [2, 6 आदि] ऋचाओं में शान्तिकर्म का विधान है, फिर भी सभी अनुष्ठान के पहले शान्तिकर्म करने से शीघ्र फलप्राप्ति होती है। जब तक मूल-ग्रंथ प्रोक्त-शान्तिकर्म न मिले, तब तक सहस्रकलश-स्नपन-विधि-प्रोक्त शान्तिकर्म [प्रतिष्ठेन्दु, पृ 12 से 14] किया जाए, जिस का क्रम इस तरह है -

शान्तिकर्म - ऋत्विग्वरणान्त कर्म करके उस देवमंत्र की आज्य से या अशक्ति हो तो तिल से 1008; परं मृत्यो. 108; अघोरेभ्यो. 108; त्र्यम्बकं 108; यद्ग्रामे. [वा.सं. 20-17] से 108 आहुतियाँ देकर व्याहृति से तिल की 108 आहुतियाँ दे। होम के समय प्रधान-देवमंत्र का जप कमसे कम 1008 करे। [**वसु.** - ग्रहयज्ञ करे तो अधिक फल है। शान्तिकर्म करके अलक्ष्मीविनाशक

ऋचोपासना [5 से 8; इन में 8वी अनिवार्य है ।] करके श्रीसूक्तोपासना करने से फलप्राप्ति निश्चित है । यह अनुभूत प्रयोग है ।]

***

7 भगवान् श्री आद्यजगद्गुरुवर्य प्रोक्त 32 श्रीमंत्र

[**सूचना** - (क) यहाँ दिये गए 32 श्रीमंत्र पू.श्री आद्यजगद्गुरुवर्य-रचित प्रपंच. - [12=56 से 60, पृ. 167]; सारसंग्रह - [उद्धृत श्रीविद्या. श्वास 22, पृ. 133] और ऋग्वेदीय सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषत् - [उद्धृत श्री.वि.पृ. 22] के अनुसार हैं । (ख) सरलता के लिए श्रीनामों को चतुर्थ्यन्त किया है ।]

[क] पू. श्री जगद्गुरुवर्य-प्रोक्त श्रीमंत्र — (1) श्रियै, (2) लक्ष्म्यै, (3) वरदायै, (4) विष्णुपत्न्यै, (5) वसुप्रदायै, (6) हिरण्यरूपायै, (7) स्वर्णमालिन्यै, (8) रजतस्रजायै, (9) सुवर्णगृहायै [पाठान्तर - सुवर्णप्रभायै], (10) स्वर्णप्राकारायै, (11) पद्मवासिन्यै, (12) पद्महस्तायै, (13) पद्मप्रियायै, (14) मुक्तालंकारायै, (15) सूर्यायै, (16) चन्द्रायै, (17) बिल्वप्रियायै, (18) ईश्वर्यै, (19) भुक्त्यै, (20) प्रमुक्त्यै, (21) विभूत्यै, (22) ऋद्ध्यै, (23) समृद्ध्यै, (24) तुष्ट्यै, (25) पुष्ट्यै, (26) धनदायै, (27) धनेश्वर्यै, (28) शुद्धायै [पाठान्तर-श्रद्धायै], (29) संभोगिन्यै, (30) भोगदात्र्यै, (31) धात्रे और (32) विधात्रे ।

पठान्तर - उपर्युक्त नामों की तुलना में अन्य दो ग्रंथों में प्राप्त पाठान्तर, क्रमभेद और देवता-भेद इस प्रकार हैं -

(1) सौभाग्य. उपनिषद् में - (9) स्वर्णप्रभायै, (15) चन्द्रायै, (16) सूर्यायै, (20) मुक्त्यै, (24) कृष्ट्यै, (28) श्रद्धायै, (29) भोगिन्यै, (30) भोगदायै, (31) सावित्र्यै, (३२) धात्र्यै ।

(2) सारसंग्रह में - (5) वसुदायै, (15) सूर्यकायै, (17) विश्वप्रियायै [पाठा. बिल्वप्रियायै], (21) विभ्वै या विभवे [पाठा. भूत्यै], (22) वृद्ध्यै [पाठा. ऋद्ध्यै], (27) भुवनेश्यै, (29) योगिन्यै, (30) भोगदायै, (31) धात्र्यै, (32) विधात्र्यै ।

[**वसु.** – यहाँ तुष्टि, कृष्टि आदि में देवता-भिन्नत्व है। सूर्या-चन्द्रा आदि में क्रम-भेद है। वसुप्रदा, वसुदा आदि में पाठभेद है, परंतु अर्थभेद नहीं हैं।]

[ख] **मंत्रस्वरूप** - उपर्युक्त तीनों ग्रंथों में ये मंत्र प्रणवादि-नमोन्त बताए हैं जैसे कि, ॐ श्रियै नमः। [**वसु.** - इन मंत्रों के आगे **श्रीं ह्रीं** लगाने से [लक्ष्मी. 50-85] ये मंत्र अधिक फलप्रद बन जाते हैं जैसे कि श्रीं ह्रीं ॐ श्रियै नमः।]

[ग] **इन मंत्रों की कक्षा** - पू. श्री आद्यगुरुदेव ने इन को श्रीमंत्र कहा है - [एताः श्रीदेव्याः ये मंत्राः- प्रपंच. 12-60; और सौभाग्य.] इस लिए इन की कक्षा ऊँची है, जब कि सारसंग्रह में इन को शक्तियाँ कहा है - [शक्तयः समुदीरिताः], इस लिए इनकी कक्षा नीची है। [**वसु.** – इन को श्रीमंत्र मानना अधिक युक्तिसंगत है।]

[घ] **इन मंत्रों का उपयोग** - इन श्रीमंत्रों के तीन उपयोग बताए हैं - (1) प्रपंच. और सारसंग्रह में इन मंत्रों से बलिदान देने का विधान है, जैसे (श्रीं ह्रीं) ॐ वरदायै नमः, श्रीः एष ते बलिर्नमः - श्रीविद्या.; (2) प्रपंच. में इन से तर्पण भी करने को कहा है और (3) सौभाग्य. में इन के अनुष्ठान बताए हैं, **अनुष्ठान** - अंगन्यास और पीठ [=यंत्र] एकाक्षरी (श्रीं) मंत्रानुसार करके प्रत्येक मंत्र का (अ) एक लाख जप; (आ) जप दशांश तर्पण (10,000); (इ) जप शतांश होम (1000); और जप सहस्रांश (100) ब्रह्मभोजन है - सौभाग्य.। यद्यपि यहाँ मार्जन, सुवासिनीपूजा एवं दान का उल्लेख नहीं है, फिर भी उन्हें अवश्य करें। श्रीविद्या. में [पृ. 121] एकाक्षर मंत्रोपासना का क्रम जप, होम, तर्पण, [मार्जन], ब्रह्मभोजनान्त है, इस लिए यहाँ मार्जन [1000] ब्रह्मभोजन के पूर्व में किया जाए।

सिद्धि - निष्काम भक्त को ही सिद्धि मिलती है - [निष्कामानामेव श्रीविद्यासिद्धिः, न कदापि सकामानाम् इति - सौभाग्य.]

[**वसु.** – (क) **अर्चन** - इन 32 मंत्रों से श्री का अर्चन आवरणपूजा से पहले किया जाए। (अंगपूजा या पुष्पार्चनादि हो सकता है।) (ख) सारसंग्रह के मतानुसार ये शक्तिमंत्र हैं, इस लिए 'प्रधानतर्पणान्ते च सन्तर्प्या शक्तयस्त्विमाः' इस नियमानुसार श्रीमाता का तर्पण करके, इनके श्रीचरणों में 32 शक्तियों का तर्पण करे। (ग) इन मंत्रों से होम कर सकते हैं।]

8 लक्ष्मीतंत्र प्रोक्त 53 श्रीमंत्र

लक्ष्मीतंत्र में [50=41 से 203] श्रीसूक्त की ऋचाओंमें प्राप्त नाममंत्र इस प्रकार हैं - [यहाँ मंत्रान्ते दिये गए अंक लक्ष्मीतंत्र के श्लोक-क्रमांक हैं।]

प्रथम ऋचा - **(1)** ॐ हिरण्यवर्णायै नमः (41)। **(2)** ॐ हरिण्यै नमः (47)। **(3)** ॐ सुवर्णस्रजे नमः (50)। **(4)** ॐ रजतस्रजे नमः (52)। **(5)** ॐ चन्द्रायै नमः (56-57)। **(6)** ॐ हिरण्मय्यै नमः (60)। **(7)** ॐ लक्ष्म्यै नमः (67-68)। [ऐसे ही निम्न मंत्रों की आदि में ॐ और अंत में नमः रखा जाए]

द्वितीया - **(8)**. अनपगामिन्यै. (74) ।

तृतीया - **(9)** अश्वपूर्वायै. (75-76)। **(10)** रथमध्यायै. (77)। **(11)** हस्तिनादविनादिन्यै. (77)। **(12)** श्रियै. (83)। **(13)** मायै. (89)। **(14)** देव्यै. (90)।

चतुर्थी - **(15)** कायै. (93)। **(16)** सोस्मितायै. (95)। **(17)** हिरण्यप्राकारायै. (97)। **(18)** आर्द्रायै. (99)। **(19)** ज्वलन्त्यै. (101)। **(20)** तृप्तायै. (103)। **(21)** तर्पयन्त्यै. (110)। **(22)** पद्मे स्थितायै. (111-12)। **(23)** पद्मवर्णायै. (114) ।

पंचमी - **(24)** चन्द्रायै. (116)। **(25)** प्रभासायै. (120)। **(26)** यशसायै. (123)। **(27)** ज्वलन्त्यै. (125)। **(28)** देवजुष्टायै. (129)। **(29)** उदारायै. (132)। **(30)** तायै (133)। **(31)** पद्मनेम्यै. (135) ।

षष्ठी - **(32)** आदित्यवर्णायै. (142) ।

सप्तमी - **(33)** कीर्त्यै. (145)। **(34)** ऋद्ध्यै. (147) ।

नवमी - **(35)** गन्धद्वारायै. (148)। **(36)** दुराधर्षायै. (153)। **(37)** नित्यपुष्टायै. (155)। **(38)** करीषिण्यै. (158)। **(39)** ईश्वर्यै. (161) ।

दशमी - **(40)** मनसः कामाय. (164)। **(41)** वाच आकूत्यै. (167)। **(42)** सत्याय. (169)। **(43)** पशूनां रूपाय. (172)। **(44)** अन्नस्य यशसे नमः (176) ।

एकादशी - **(45)** मात्रे. (180)। **(46)** पद्ममालिन्यै. (186) ।

त्रयोदशी - (**47**) पुष्करिण्यै. (189)। (**48**) यष्ट्यै. (192)। (**49**) पिंगलायै. (194)।

चतुर्दशी - (**50**) तुष्टये. । [तुष्ट्यै नहीं है] (196)। (**51**) सुवर्णायै. (198)। (**52**) हेममालिन्यै. (200)। और (**53**) सूर्यायै. (203) ।

[**वसु.** — (1) **द्विरुक्ति** - यद्यपि चन्द्रायै और ज्वलन्त्यै मंत्रों में द्विरुक्ति हुई है, फिर भी मंत्रस्वरूप, फल और स्थान आदि में भिन्नता है ।
(2) **अक्षरसंख्या** - लक्ष्मीतंत्र में इन मंत्रों को अक्षर-संख्या द्वारा बाँध दिया होने से वैकल्पिक रूप भी नहीं रखा जाता, जैसे 'ॐ तुष्टये नमः' मंत्र षडक्षर होने के कारण तुष्ट्यै रूप व्याकरण शुद्ध होने पर भी नहीं चल सकता । यहाँ ॐ सहित की वर्णसंख्या है ।
(3) **अनुष्ठान** - लक्ष्मीतंत्र में इन मंत्रों की जप संख्याआदि नहीं बताए हैं, इस लिए सौभाग्य-लक्ष्मी. प्रोक्त 32 मंत्रो की तरह अनुष्ठान का अंगक्रम रखा जाए; जैसे जप एक लाख आदि ।
(4) **संयोजन** - इन मंत्रों की आदि में **श्रीं ह्रीं** रखने से वह अधिक फलप्रद बन जाता है, जैसे कि **'श्रीं ह्रीं ॐ तुष्टये नमः'** ।]

***

9 श्रीविद्यासंवलित श्रीसूक्तोपासना के फल

श्रीसूक्त की प्रत्येक ऋचा के चार पादों में श्रीविद्या के तीन कूट संवलित (मिश्र) करके, की गई प्रत्येक ऋचा की स्वतंत्र उपासना से मिलनेवाले ऋचागत विभिन्न फल इस प्रकार हैं - [**वसु.** — यहाँ श्रीसूक्त-ऋचा के प्रथम पाद के बाद श्रीविद्या का प्रथम कूट, द्वितीय पाद के पश्चात् द्वितीय कूट, तृतीय पाद के बाद तृतीय कूट और अन्त में ऋचा का चतुर्थ पाद होता है ।]

फल- (1) प्रथम ऋचा की ऐसी उपासना से सम्पत्ति मिलती है । इसी तरह (2) पशुप्राप्ति, (3) धान्य., (4) पृथ्वी., (5) सेवकगण., (6) महायश., (7) राजसम्मान., (8) प्रबल धैर्य., (9) अश्व., (10) गज., (11) वस्त्र., (12) पुत्र., (13) रत्न, (14) पृथ्वी., (15) धनैश्वर्य. । -श्रीविद्या. श्वास 11, पृ. 203 [**वसु.** — यहाँ की उपासना-पद्धति प्रत्येक श्रीसूक्तऋचा की स्वतंत्र उपासना के अनुसार (पृ. 188-217) करें ।]

पंचम प्रकरण

[क]

[1] एकाक्षर रमामंत्र [श्रीँ]

अनन्त श्रीविभूषित प.पू. भगवान् आद्यजगद्गुरु-श्रीशंकराचार्य-गुरुवर्य-प्रोक्त श्रीँ मंत्र प्रयोग —

[**वसु.** — इस उपासना निरूपण में (1) पू. श्री आद्यजगद्गुरु रचित प्रपंचसारतंत्र एवं पू. श्री पद्मपाद गुरुजी रचित विवरण - [प्रपंच. 12-1 से 18; पृ. 160-2]; (2) ऋग्वेदीय-सौभाग्यलक्ष्मी-उपनिषद् - [श्री. वि. पृ. 21]; (3) शारदातिलक - [8-1 से 29] एवं राघव व्याख्या - [शा. पृ. 230-34]; सारसंग्रह एवं पू. विद्यारण्ययतिजी - [श्रीविद्या. श्वास. 22, पृ. 120-23] और (4) हिन्दी मंत्रमहार्णव - [त्रयोदशतरंग पृ. 806-10] ग्रंथों का उपयोग किया गया है । मंत्रमहार्णव में शारदातिलक का अनुसरण है ।]

मंत्र - एकाक्षर रमामंत्र श्रीँ है, जिस में श् + र् + ई + अर्धचन्द्र + बिन्दु [नाद] हैं - [पू. विद्यारण्ययतिजी-श्रीविद्या. पृ. 120] । [**वसु.** — अर्धेन्दुबिन्दुक्रमः विचारणीयः । - (देखो पृ. 166-69)] ।

संयोजन - [**वसु.** — (क) श्रीँ मंत्र के पूर्व में मान्य बीज रखने से मंत्र का स्वरूप ही बदल जाता है, जैसे कि - ॐ को पूर्व में [ॐ श्रीँ] रखने से श्रीमाता परमात्मस्वरूपिणी बनती है - [प्रणवादि-योगे तद्देवतानामुपसर्जनत्वं श्रियः सूचितम् । परमात्मस्वरूपिणी श्रीर्देवता इत्यादि प्रकारेण - पद्म. प्रपंच. पृ. 160; राघव. शा. पृ. 231] इस तरह पूर्व में ऐँ आदि बीज रखने से बदलते स्वरूप इस तरह हैं, जैसे कि - धर्मार्थं वाग्भवादित्वम् [ऐँ] । अर्थार्थं लक्ष्मीबीजादित्वम् [श्रीँ]। मोक्षार्थं मायाबीजादित्वम् [ह्रीँ] - [राघव. शा. पृ. 234] अथवा शक्त्यादित्वे [ह्रीँ] शक्ति-स्वरूपिणी-श्रीर्देवता - [राघव. शा. पृ. 231] अर्थात् 'ह्रीँ श्रीँ' मंत्र की देवता शक्ति-स्वरूपिणी-मोक्षप्रदा-श्रीमाता है । [ख] [इस तरह कामार्थं कामबीजादित्व [क्लीँ] भी हो सकता है । इस प्रकार के संयोजन में अपनी मनमानी कभी भी न करें ।] [ग] गुरु से दीक्षा लेकर ही अनुष्ठान शुरू करें (प्रपंच.) ।]

यंत्र - [वसु. — इस ग्रंथ के आरंभ में दिया गया यंत्र **श्रीँ** मंत्र का है। सारसंग्रह के मत में दो अष्टदल हैं - [श्रीविद्या. पृ. 120]। इन दो विकल्पों में हमने एक-अष्टदलात्मक यंत्र को चुना है। इस स्थिति में (क) एक-अष्टदलवाले यंत्र में द्वितीयावरण-पूजा अष्टदलों के भीतर और तृतीयावरण-पूजा अष्टदलाग्रों में की जाए। जबकि (ख) दो अष्टदल वाले यंत्र में अंदर के अष्टदलों में द्वितीयावरण और उसके बाहर के अष्टदलों में तृतीयावरण की पूजा की जाए।]

विनियोग - श्रीँ इति एकाक्षर-रमा-मंत्रस्य भृगुः ऋषिः, निवृच्छंदः, [भोगमोक्षप्रदा - सारसंग्रह] श्रीर्देवता - [प्रपंच.], शं बीजम्, ईं शक्तिः - [पद्म.; राघव.] रं कीलकं - [पू. विद्यारण्यजीयति] ..... प्राप्तये जपे/पूजायां/होमे/तर्पणे/विनियोगः

[वसु. — यहाँ छन्दविषयक तीन पाठान्तर मिलते हैं - (क) प्रपंच. एवं मंत्रमहार्णव में निवृत्-छन्द है; (ख) शारदा. एवं श्रीविद्या.-में [पृ.120-21] निचृद् छन्द है और (ग) सौभाग्यलक्ष्मी. में निचृद्गायत्रीच्छन्द है।]

ऋष्यादिन्यास —

(1) भृगुऋषये नमः - शिरसि।
(2) निवृच्छन्दसे नमः - मुखे।
(3) श्रियै देवतायै नमः - हृदि।
(4) शं बीजाय नमः - गुह्ये।
(5) ईं शक्तये नमः - पादयोः।
(6) रं कीलकाय नमः - नाभौ।

(क) करादि करके हृदयादि न्यास करें —

करादि	हृदयादि	हृदयादि की मुद्राएँ
श्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः।	हृदयाय नमः	तीन उंगलियों से [तर्जनी आदि]।
श्रीं तर्जनीभ्यां नमः।	शिरसे स्वाहा	तर्जनी मध्यमा से।
श्रूं मध्यमाभ्यां नमः।	शिखायै वषट्	अंगूठे से।
श्रैं अनामिकाभ्यां नमः।	कवचाय हुम्	दसों उंगलियों से।
श्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः।	नेत्रत्रयाय वौषट्	तीन उंगलियों से।
श्रः करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः।	अस्त्राय फट्	तीन तालियाँ बजा कर तर्जनी-अंगुष्ठ से दिग्बंध करें- मं. महो.-21-153 से 54;

(ख) राघवजी ने यहाँ दो प्रकार के पंचांग-न्यास भी बताए हैं - [राघव. शा. पृ. 231]

ध्यान - भूयाद् भूयो द्विपद्माभय-वरदकरा तप्तकार्तस्वराभा
शुभ्राभ्राभेभ-युगम-द्वय-करधृतकुंभाद्भिरासिच्यमाना ।
रत्नौघाबद्धमौलिर्विमलतर-दुकूलार्तवालेपनाढ्या
पद्माक्षी पद्मनाभोरसि कृतवसतिः पद्मगा श्रीः श्रिये वः ॥
- प्रपंच. 12-4; सौभाग्य. ।

[**वसु.** — (क) सौभाग्य. में 'नः' पाठ है । इस की संगति ऐसी है कि, अन्य के लिए की जाती उपासना में '**वः**' पाठ और अपने लिए की जाती उपासना में '**नः**' पाठ लिया जाए ।] (ख) शारदा. में 'कान्त्या कांचन'. और (ग) श्रीविद्या. में पद्मारूढा एवं चतुर्भुजां. दो ध्यान-श्लोक हैं, इन में पद्मारूढा. में आयुध-ध्यान है ।]

बाह्यपूजा - मानसपूजा के बाद यंत्रस्थापना एवं पात्रासादन करके पीठपूजा [मण्डूकादि-परतत्त्वान्त] करें । **पीठशक्तियाँ** - स्वाग्रादि-प्रादक्षिण्येन - [श्रीविद्या.] (1) विभूत्यै नमः, (2) उन्नत्यै., (3) कान्त्यै., (4) सृष्ट्यै., (5) कीर्त्यै., (6) सन्नत्यै., (7) व्युष्ट्यै., (8) उत्कृष्ट्यै., (9) मध्ये ऋद्धयै. - [प्रपंच.] ।

[**वसु.** - प्रपंच. की तुलना में पाठान्तर - (अ) (क) सौभाग्य. में (6) स्थितिर्नित्यै. है । यहाँ मुद्रणदोष प्रतीत होता है । (ख) शारदा. में (7) पुष्ट्यै. हैं । (ग) सारसंग्रह में (4) हृष्ट्यै. है । (घ) पू. विद्यारण्ययतिजी ने (2) रत्यै. एवं (4) हृष्ट्यै. बताया है । और (ङ) मंत्रमहार्णव में (2) उन्मन्यै. (7) पुष्ट्यै. है । (आ) इन पीठशक्ति-मंत्रों की आदि में **श्रीँ** बीज रखा जाए - [पद्म.; राघव,। जैसे **श्रीँ विभूत्यै नमः** इत्यादि ।]

पीठमंत्र - [**वसु.** — पीठमंत्र से सिंहासन की पूजा की जाती है, जिस पर देवता विराजमान होता है । पीठमंत्र भिन्न भिन्न होते हैं ।] श्रीँ श्रीदेव्यासनाय नमः - [पद्म] । [**वसु.** — (क) श्रीँ सर्वशक्तिकमलासनाय नमः - [शारदा., सारसंग्रह] । (ख) मध्ये सिंहासनं पूज्यं सर्वशक्तिमयं प्रिये - दक्षिणामूर्तिसंहिता - श्रीविद्या. पृ. 120]

आवरण पूजा - फिर कर्णिका में श्रीमाता नारायणी की आवाहन से पुष्पान्त पूजा के बाद अंगपूजा, पुष्पार्पण, तर्पण आदि सम्पन्न करके, अनुज्ञा लेकर आवरण पूजा करें । [कर्णिकायां यजेच्छ्रियम् - राघव. शा. पृ. 232] ।

(1) प्रथमावरण - यंत्र के केसर भाग में, षडंग न्यास-मंत्रों से हृदयादि षडंगों की पूजा करें, जैसे कि, श्रां हृदयाय नमः, हृदयशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि [तर्प.] नमः ।

(2) द्वितीया. - अष्टदलों में से पूर्वादि चार दिशा के दलों में [देव्याग्रादि - चतुर्दलेषु प्रादक्षिण्येन-शा. श्रीविद्या.] - (1) ॐ वासुदेवाय नमः, वासुदेव श्रीपादुकां पूजयामि [तर्प.] नमः । एवं सर्वत्र । (2) संकर्षणाय., (3) प्रद्युम्नाय. (4) अनिरुद्धाय. ।

ततः देव्याः आग्नेयादि कल्पित-कोणेषु गजान् - (5) दमकाय., (6) सलिलाय. (7) गुग्गुलवे. गुग्गुलुश्री. (8) कुरुण्टकाय. - प्रपंच., शा.; श्रीविद्या. ।

देव्याः दक्षिणे [दक्षिण-दलाग्रे] - (9) वसुधारया सह शंखनिधये. (10) देवी - वामदलाग्रे वसुमत्या सह पद्मनिधये. - [शा. 8-10 से 17; श्रीविद्या.]

(3) तृतीया. - अष्टदलाग्रेषु दूत्यः, देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन - (1) ब(व)लाक्यै नमः बलाकीश्री पादुकां पूजयामि [तर्प.] नमः । एवं सर्वत्र । (2) विमलायै., (3) कमलायै. (4) वनमालिकायै., (5) विभीषिकायै., (6) मालिकायै., (7) शंकर्यै., (8) वसुमालिकायै. - [प्रपंच. 12-10 से 12] [**वसु.** - प्रपंच. की तुलना में पाठान्तर]-(क) शारदा. में (4) नवमालिकायै. एवं (7) शांकर्यै हैं। (ख) सारसंग्रह में (1) बलाकायै. एवं (7) शांकर्यै. हैं। पू. विद्यारण्ययतिजी ने (1) बलाकायै., (4) वनमालायै. एवं (7) शांकर्यै पाठ दिये हैं । (ग) मंत्रमहार्णव में (7) शांकर्यै है।

(4) चतुर्था. - भूपुर में इन्द्रादि ।

(5) पंचमा. - भूपुर से बाहर वज्रादि । [**वसु.** — इन दोनों आवरण के देवता श्रीसूक्त के तृतीयावरण एवं चतुर्थावरण अनुसार हैं -पृ.-7 ।]

[**वसु.** — [1] राघवजी के मत में [क] इन्द्रादि-वज्रादि की पूजा प्रसिद्ध - पूर्वादि में की जाए - 'अत्र प्रसिद्धा एवं पूर्वादयो ग्राह्याः' - [शा. पृ. 163] । [ख] तांत्रिक परंपरा में अनन्त के बाद ब्रह्मा की पूजा है, जब कि पुराण-मत में ब्रह्मा के बाद अनन्त की पूजा है - [अत्र क्वचिद् ब्रह्माणं पूजयित्वा अनन्तं पूजयेदिति क्रमः । स पौराणिक इति ज्ञेयं, न तांत्रिकः, प्रपंचसारादि

बहुतंत्रविरोधात् - राघव. शा. पृ. 163-64] । [2] (क) अनन्त-ब्रह्मपर्यन्तैः पंचमी । चक्र -पद्मान्तिकैः षष्ठी - प्रपंच. 12-34] [ख] पू. विद्यारण्ययतिजी ने पुराण-मत का अनुसरण किया है - श्रीविद्या पृ. 140 । [3] पू. आद्यजगद्‌गुरुजीने इन्द्रादि और वज्रादि को भिन्न भिन्न आवरण में रखा है - [प्रपंच. 12=34; 45], जब कि सौभाग्य. में इन्द्रादिवज्रादि दोनों को चतुर्थावरण में रखा है। [4] बलाकी आदि का क्रमभेद - राघवव्याख्या में निर्दिष्ट नारायणीय मतानुसार श्रीमाता की बलाकी आदि दूतियों में से - पूर्वद्वार में बलाकी, दक्षिण. में वनमालिका, पश्चिम. में विभीषिका और [उत्तर. में] शांकरी हैं । प्रयोगसार में विमला, कमला, मालिका और नवमालिका को कोणों में बताया है - अत्र तु कमला-नवमालिकयोर्व्यत्यासः कल्पान्तरत्वेन समाधेयः - (राघव. शा. पृ. 233)] ।

जप - 12 लाख जप का विधान है - [पाँचों ग्रंथों में] ।

होम - [क] पाँचों ग्रंथों में आहुति संख्या 12 हजार बताई है - [शतांश होमः] । [ख] होमद्रव्य — कमल, अथवा तिल, अथवा बिल्वसमिध्, अथवा तीनों द्रव्य - [प्रपंच. 12-6] । [वसु. — [क] सभी द्रव्यों को त्रिमधुराक्त करें । [ख] त्रिमधुर - पयोमधुघृतेन - [राघव. शा. पृ. 329; सं.भा.पृ.12] अथवा मधु, घी और शर्करा - [मंत्र-महार्णव पृ. 809] । [ग] सारसंग्रह और शारदा. में बिल्व समिध् की जगह बिल्वफल का विधान है । [घ] यदि तीनों द्रव्यों से होम करना हो, तो प्रत्येक द्रव्य की चार चार हजार आहुतियाँ दी जाए - [विद्यारण्ययतिजी और राघव.], परंतु तीनों का मिश्रण करके मिश्रित हवि से 12 हजार आहुतियाँ नहीं दी जाएँ । इस विषय में पू. विद्यारण्ययतिजी स्पष्टता करते हैं कि - त्रिभिरिति एकैकेन सहस्रचतुष्टयं, न तु मिलितैः, तेषां तु द्रव्यान्तरत्वेन त्रिभिः होमासंभवात्,..... मिश्राणां विध्यदर्शनात् च ।..... तर्हि त्रिमधुराक्तं विरुद्धम् इति चेत न, 'सर्वं त्रिमधुरोपेतं होम-द्रव्यम् उदाहृतम्' इति वचनात्, तद्योगस्य पशुपुरोडाशावदानानाम् उपस्तरण-अभिघाराज्ययोगवद् अविरुद्धत्वाद् इति - [श्रीविद्या. पृ. 121] । [ङ] त्रिभिः का द्वितीय अर्थघटन — त्रिभिरिति कमलवासिनी-महालक्ष्मी-श्रीसूक्तैः सकृत् सकृत् हुत्वा पुनः मूलेन होतव्यम् इत्युक्तम् - (पद्म. प्र. पृ. 161 और राघव. शा. पृ. 231)।]

तर्पणादि शेष अंग - [वसु. - (क) आद्यजगद्‌गुरुजी ने जपान्ते होम का

विधान किया है - [जपावसाने..... हुनेत् - प्रपंच. 12-6; शारदा. में भी जपान्ते जुहुयात् - [शा. 8-6] कहा है। राघवजी ऐसी स्पष्टता करते हैं कि, जप और होम के बीच में व्यवधान नहीं होना चाहिए - [अनेन जपाव्यवधानेन..... होमः कार्यः, इत्युक्तं भवति - [राघव. शा. पृ. 231] । [ख] प्रपंच. और शारदा. में तर्पणादि का सूचन नहीं है, परंतु सारसंग्रह में सूचना मिलती है कि- [जुहुयाद् विजितेन्द्रियः। तर्पणादि ततः कुर्याद् द्विजार्चान्तं प्रसन्नधीः -[श्रीविद्या. पृ. 121]] । अर्थात् जप-होम के बाद तर्पण से द्विजार्चन तक के शेष [प्रसिद्ध तीन] अंग करने हैं। जगत्प्रसूतिवाले मंत्र में दशांश-तर्पणादि का विधान है - [श्रीविद्या. पृ. 126] । इसका अतिदेश करके यहाँ होमदशांश [1200] तर्पण, तर्पणदशांश [120] मार्जन और मार्जनदशांश [12] ब्रह्मभोजन समझा जाए। मंत्रमहार्णव में स्पष्ट रूप से कहा है कि, तत्तद्-दशांशेन तर्पण-मार्जन-ब्रह्मभोजनानि च कुर्यात् - पृ. 809 । यहाँ सुवासिनी पूजा भी आवश्यक है। [[ग] **इस अनुष्ठान की वैकल्पिक पद्धति** - सौभाग्य. में केवल जपसंख्यानिर्देश ही है, इसके बाद तुरंत 32 श्रीमंत्रों की अनुष्ठानपद्धति बताई है, जिस में जपदशांश [1,20,000] तर्पण, जपशतांश [12,000] होम और जपसहस्रांश [1200] ब्रह्मभोजन का विधान है। वहाँ सुवासिनीपूजा का सूचन नहीं है, फिर भी तद्दशांश [120] सुवासिनीपूजा की जाए।]

काम्यप्रयोग — उपर्युक्त पद्धति से **'मंत्र को सिद्ध करने के पश्चात् ही काम्यप्रयोग का अधिकार मिलता है'**, ऐसा मान्य तांत्रिकसिद्धान्त है। **(1)** वक्षःस्थल तक के जल में खडे रह कर सूर्यबिम्बस्था श्रीनारायणी का ध्यान करते हुए तीन लाख जप करने से दरिद्रता चली जाती है। पू. पद्मगुरुजी कहते हैं कि, [जपान्ते] **'श्रीँ रत्नगर्भायै नमः'** मंत्र का शतांश [3000] जप करके - [पद्म., राघव.] तर्पणादि [शेष अंग] सम्पन्न करें - पद्म. । सूर्यबिम्बस्था **नारायणी का स्वरूप** — अभयवरदकराभ्यां निधिपात्ररत्नपूर्णकुंभधराभ्यां रक्ता ध्येया - पद्म., राघव.। अथवा नवपावकसंकाशां श्रियं माणिक्यभूषणाम् । निधिपात्र-महारत्नपूर्णकुंभकरद्वयाम् ॥ - राघव. । **(2)** विष्णुमंदिर में बिल्व वृक्ष के मूलभाग में बैठ कर तीन लाख जप करने से [एक ही वर्ष में - प्रपंच] इच्छित धन की प्राप्ति होती है। **(3)** [कुंड में] (क) अशोक वृक्ष की अग्नि में आज्ययुक्त तण्डुल की [लक्षाहुति से] त्रैलोक्य वशीभूत होता है। (ख) खादिर

[खैर] वृक्ष की अग्नि में त्रिमधुराक्त तण्डुलों की लक्षाहुतियों से राजा वश में आता है और कुबेर प्रसन्न होकर लक्ष्मी देता है - [प्रपंच.; शा.; सारसंग्रह] । (ग) जितेन्द्रिय बनकर अर्क [आक] की अग्नि में शुद्ध तण्डुलों की लक्षाहुतियों [नियुतं] से राजपुत्र महान् राज्यलक्ष्मी को पाता है - [शा. सारसंग्रह] । नियुतम् = लक्षम् - [राघव. शा. पृ. 233। **(4)** त्रिमधुर-युक्त कमलों की [नलिनैः] लक्षाहुतियों से दारिद्र्यदोष वाला मनुष्य भी निश्चित रूप से स्थिर लक्ष्मी वाला बनता है - [प्रपंच., सारसंग्रह ।] शारदा. में रक्तकमल का होम बताया है । **(5)** ब्राह्मण स्वगृह में [आंगन में] बिल्व वृक्ष को बोकर, श्रीसूक्त का जप करते हुए, उस वृक्ष को बडा बना कर, उसके पत्रों से, पुष्पों से, फलों से, समिधाओं से, प्रधान शाखाओं से [स्कंधभेदैः] और मूलभागों से होम करें। सभी त्रिमधुरयुक्त होने चाहिए । अनुष्ठानकाल में [बिल्व-मिश्र - सारसंग्रह] हविष्यों का भोजन लें । इससे श्रीनारायणी प्रत्यक्ष होती है और उस उपासक के कुल में कभी भी अलक्ष्मी रहती नहीं - [प्रपंच.; सारसंग्रह]। **(6)** बिल्व वृक्ष की छाया में निवास करके बिल्व-मिश्र हविष्य का भोजन करते हुए, दो वर्षों तक बिल्वफलों की अथवा [अभाव में राघव.] कमलों की आहुतियाँ देने से श्रीनारायणी प्रत्यक्ष होती है - [शा. 8-26;]। राघवजी 1008 आहुतियाँ बताते हैं - [शा. पृ. 234] । **(7)** घृताक्त पायस की और घृत की लक्षाहुतियाँ [नियुतं] देने से लक्ष्मीप्राप्ति होती है - [हविषा घृतसिक्तेन पायसेन ससर्पिषा - [शा. 8-28]। **[वसु.** — राघव ने 'त्रिभिः द्रव्यैः' की बताई हुई आहुति-व्यवस्था अनुसार [शा. पृ. 231] यहाँ प्रत्येक द्रव्य की पचास पचास हजार आहुतियाँ समझी जाए ।]

[2] चतुरक्षर रमामंत्र

[वसु. — यहाँ (क) शारदातिलक [8-30 से 34] एवं राघव-व्याख्या [शा. पृ. 234] और (ख) श्रीविद्यार्णव. में [श्वास 22, पृ. 123] उद्‌धृत श्रीयंत्रसार का उपयोग किया है । हिन्दी मंत्रमहार्णव में [पृ. 810-11] शारदा. का अनुसरण है ।]

मंत्र - इस मंत्र के मुख्यतः दो विकल्प हैं - **(1) ऐँ श्रीँ ह्रीँ क्लीँ** - [शा. 8-30] और **ऐँ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ** - [श्रीयंत्रसार]। **[वसु.** - (क) इन दो परंपराओं

में **ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं** - वाला बीजक्रम अधिक युक्तिसंगत है, क्योंकि - (क) लक्ष्मीतंत्र में **ह्रीं** के बाद **श्रीं** का उत्पत्ति-क्रम है। (ख) परशुराम-कल्पसूत्र में श्रीक्रम में अर्चनमंत्रों की आदि में **'ऐं ह्रीं श्रीं'** रखने का विधान है - [3-8]।
(2) आदिबीजानुसार **देवता का स्वरूप परिवर्तन** - राघवजी कहते हैं कि, आदि में **ऐं** बीज रखने से मंत्रदेवता धर्मस्वरूपिणी श्रीनारायणी है। इस तरह अर्थार्थं लक्ष्मीबीजादित्वम्, मोक्षार्थं मायाबीजादित्वम् - [राघव. शा. पृ. 234; 231]। राघवमत में इन बीजों का क्रम शारदा. अनुसार समझें।]

विनियोग - ऋषि, छन्द और देवता शा.प्रोक्त एकाक्षर मंत्रानुसारी हैं - [पूर्वोक्ता ऋष्याद्याः - राघव. शा. पृ. 234], जैसे कि, अस्य मंत्रस्य भृगुः ऋषिः, निचृच्छन्दः, [सर्वसम्पत्करी कमला देवता - श्रीयंत्रसार], [श्रीं बीजं, ह्रीं शक्तिः - राघव.] ...... प्राप्तये जपे/पूजायां/होमे/तर्पणे/विनियोगः। [**वसु.** - श्रीयंत्रसार में निचृदनुष्टुप् छन्द है।]

ऋष्यादिन्यास - भृगुऋषये नमः शिरसि। निचृच्छन्दसे नमः मुखे। सर्वसम्पत्करी -कमला-देवतायै नमः हृदि। श्रीं बीजाय नमः गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः पादयोः।

ध्यान - माणिक्य-प्रतिमप्रभां हिमनिभैस्तुंगैश्चतुर्भिर्गजैः
हस्ताग्राहितरत्नकुंभसलिलैरासिच्यमानां मुदा।
हस्ताब्जैर्वरदानमम्बुजयुगाभीतीर्दधानां हरेः
कान्तां, कांक्षितपारिजातलतिकां वन्दे सरोजासनाम्॥ - [शा. 8-31]

[**वसु.** – श्रीयंत्रसार में माणिक्याभा. ध्यानश्लोक है। अर्थ में अधिक भिन्नता नहीं है। आयुधध्यान पद्मारूढा. श्लोक में है।]

जप - 12 लाख जप है। अनुष्ठान काल में हविष्य भोजन लें।

होम - रक्तकमलों की 12 हजार आहुतियाँ हैं।

[**वसु.** – यंत्र, करादिहृदयादिन्यास, आवरणदेवता, अनुष्ठान के शेष अंग, और काम्यप्रयोग आदि अवशिष्ट कर्म शा. प्रोक्त एकाक्षर मंत्रानुसार हैं।]

[3]

[3] अ.श्री.वि.प.पू.भगवान् आद्यजगद्गुरु श्री शंकराचार्य गुरुवर्य प्रोक्त-

27 वर्णात्मक महालक्ष्मी मंत्र

[वसु. - (क) पू. श्री आद्यजगद्गुरुरचित प्रपंच. एवं पू. पद्म. गुरुजी रचित विवरण - [प्रपंच. 12-27 से 35, पृ. 164]; (ख) शारदा. एवं राघव. [शा. 8-144 से 60, पृ. 244-46] और (ग) श्रीयंत्रसार एवं पू. विद्यारण्ययतिजी - [श्रीविद्या. श्वास 22, पृ. 128-30]। यहाँ इन ग्रंथों का उपयोग किया है। हिन्दी-मंत्रमहार्णव में -[पृ. 814-18] शारदा. का अनुसरण है ।]

मंत्र - ॐ श्रीँ ह्रीँ श्रीँ कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीँ ह्रीँ श्रीँ महालक्ष्म्यै नमः ।

[वसु. - (क) उपर्युक्त ग्रंथों में आदि में एक प्रणवयुक्त 27 अक्षरात्मक ही मंत्र है । यद्यपि मंत्रहोदधि में श्रीक्रम में लक्ष्मीपंचक में दक्षिण दिशा स्थित महालक्ष्मी का अर्चन-मंत्र दो प्रणवयुक्त (28 अक्षरात्मक) है - [12-51, 52; पृ. 103] । राघवजीने 28 अक्षरात्मक मंत्र को अन्ये कह कर वैकल्पिक बताया है - [अन्ये तु द्विरुक्त्यादौ भेदमुद्धृत्य अष्टाविंशतिवर्णमाहुः - शा. पृ. 244]। इसका अर्थ यह हुआ कि, ये ग्रंथकार 28 वर्णात्मक मंत्र को भी जानते थे, फिर भी उन्होंने यहाँ 27 वर्णात्मक का ही स्वीकार किया है, इस लिए 27 वर्णात्मक मंत्र की ही उपासना की जाए । (ख) श्रीयंत्रसार में '**महालक्ष्मि नमः**' पाठ है। (ग) अस्मिन्नपि मंत्रे प्रणवशक्तिवाक्कामादित्वमिति पद्मपादाचार्याः । पूर्ववद् देवतानाम् उपसर्जनत्वं च - (राघव. शा. पृ. 235)]

विनियोगः - प्रपंच. और शारदा. में इस मंत्र का विनियोग नहीं बताया है, अतः पूर्व के मंत्र का ऋष्यादि यहाँ समझा जाए, जैसे कि 'अस्य मंत्रस्य दक्षऋषिः, विराट् छन्दः, श्रीर्देवता - [प्रपंच. 12-20; और शा. 8-35] श्रीँ बीजम्, ह्रीँ शक्तिः - [पद्म.]..... प्राप्तये जपे/होमे/पूजायां/तर्पणे/विनियोगः । [वसु. — पू. विद्यारण्ययतिजी ने गायत्री छन्द बताया है । मंत्रमहार्णव में ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, श्रीँ बीजम्, नमः शक्तिः - [पृ. 814] है । राघव ने श्रीं बीजं, स्वाहा शक्तिः बताया है ।]

ऋष्यादिन्यासः — दक्ष ऋषये नमः शिरसि । विराट् छन्दसे नमः हृदये । श्रियै देवतायै नमः हृदये । श्रीँ बीजाय नमः गुह्ये। ह्रीँ शक्तये नमः पादयोः । विनियोगाय नमः सर्वांगे ।

करादि न्यास करके हृदयादि न्यास करें -

श्रीँ ह्रीँ श्रीँ	कमले	श्रीँ ह्रीँ श्रीँ	अंगुष्ठाभ्यां	नमः ।	हृदयाय नमः ।
"	कमलालये	"	तर्जनीभ्यां	" ।	शिरसे स्वाहा ।
"	प्रसीद	"	मध्यमाभ्यां	" ।	शिखायै वषट् ।
"	प्रसीद	"	अनामिकाभ्यां	" ।	कवचाय हुम् ।
"	महालक्ष्म्यै	"	कनिष्ठिकाभ्यां	" ।	अस्त्राय फट् ।

[**वसु.** — (क) यहाँ पंचांगन्यास का विधान है, जिसमें नेत्रन्यास वर्जित है । - नेत्रवर्जं हृदयादिषु न्यसेत् - श्रीविद्या. पृ. 129; और पंचांगे नेत्रसन्त्यागो - मं.महो. 21-149 (ख) यद्यपि इस मंत्र की अक्षरगणना में प्रणव सहित ही सत्रह की संख्या संपन्न होती है, फिर भी पंचाङ्गन्यासमंत्र में तीन बीजों का ही संपुट देने का प्रत्यक्षश्रवण तीनों ग्रन्थों में मिलता है ।]

ध्यान - हस्तोद्यद्वसुपात्र-पंकजयुगादर्शा स्फुरन्नूपुरा
ग्रैवेयांगदहार-कंकणमहामौलिर्ज्वलत्कुंडला ।
पद्मस्था परिचारिकापरिवृता शुक्लांगरागांशुका
देवी दिव्यगणार्चिता भवदघ-प्रध्वंसिनी स्याद् रमा ॥ - प्रपंच.-12-29

सिन्दूरारुण-कान्तिमब्जवसतिं सौन्दर्यवारांनिधिं
कोटीरांगद-हार-कुंडलकटीसूत्रादिभिर्भूषिताम् ॥
हस्ताब्जैर्वसुपत्रमब्जयुगलादर्शौ वहन्तीं पराम्
आवीतां परिचारिकाभिरनिशं ध्यायेत् प्रियां शार्ङ्गिणः - [शा. 8-148]
[आयुधध्यानं - दक्षाधस्ताद् वामाधः पर्यन्तम् - राघव. शा. पृ. 244]

बाह्यपूजा - [मानसपूजा, यंत्रस्थापना, पात्रासादन, पीठपूजा के बाद यंत्र की कर्णिका के मध्य में श्रीनारायणी की पुष्पान्त पूजा के पश्चात् अंगपूजा, पुष्पार्पण, तर्पण आदि सम्पन्न करके, अनुज्ञा लेकर आवरणपूजा करें - [कर्णिकायां यजेच्छ्रियम् - राघव. शा. पृ. 232] ।

(1) प्रथमावरणम् - कर्णिका में पंचांगपूजा करे - [कर्णिकायाम् अंगपूजा - राघव. शा. पृ. 244] जैसे कि, श्रीँ ह्रीँ श्रीँ कमले श्रीँ ह्रीँ श्रीँ, हृदयाय नमः, हृदयशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि [तर्प.] नमः आदि ।

(2) द्वितीया. - अष्टदलमूलेषु - [शा. 8-152] अर्थात् केशरेषु - [राघव. शा. पृ. 244] देव्यग्रादि-प्रादक्षिण्येन - [श्रीविद्या.] श्रीधराय नमः, श्रीधर-श्रीपादुकां पूजयामि [तर्प.] नमः । एवं सर्वत्र । हृषीकेशाय., वैकुण्ठाय., विश्वरूपकाय., वासुदेवाय., संकर्षणाय., प्रद्युम्नाय., अनिरुद्धाय. ।

(3) तृतीया. - [अष्टदलमध्येषु - शा. 8-152] [दिक्पत्रेषु - श्रीविद्या.] अर्थात् देव्यग्रादि-प्रादक्षिण्येन पूर्वादिदिक्षु - **(क)** भारत्यै नमः, भारतीश्रीपादूकां पूजयामि [तर्प.] नमः । एवं सर्वत्र । पार्वत्यै. चान्द्र्यै., शच्यै. । **(ख)** आग्ने - यादिकोणेषु [प्रादक्षिण्येन] - [श्रीविद्या.], **गजाः** — दमकाय. सलिलाय., गुग्गुलवे., कुरुण्टकाय. ।

(4) चतुर्थी - [महाश्रियः अष्टौ बाणाः] देव्यग्रादि-प्रादक्षिण्येन पूर्ववत् - अनुरागाय. विसंवादाय., विजयाय., वल्लभाय., मदाय., हर्षाय, बलाय., तेजसे नमः, तेजः श्रीपादुकां. । [**वसु.** - शा. में संवादाय पाठ है, [8-153] ।

(5) पंचमा. - भूपुरान्तः इन्द्रादयः [इसमें अनन्ताय. के बाद ब्रह्मणे.]

(6) षष्ठा. - भूपुराद्बहिः वज्रादयः । [चक्राय., पद्माय. इति क्रमः ।]

- (देखो पृ. 7)

[**वसु. — आवरणों की संख्या** — प्रपंच. में छः आवरण हैं । शारदा. और पू. विद्यारण्ययतिजी ने आवरण-संख्या नहीं बताई है । परंतु पू. विद्या.यतिजी ने स्पष्टता की है कि, दक्षिणामूर्ति-संहिता के मत में पंचावरण हैं, जैसे कि - (अंगैः प्रथमावरणं, भारत्यादिचतसृभिः श्रीधरादिभिश्चतुर्भिश्च द्वितीयम्, अनुरागादिभिस्तृतीयं, ततो लोकेशाः, तद्धेतयश्च इति पंचावरणमुक्तम् - श्रीविद्या. पृ. 129) इसका अर्थ यह हुआ कि, दक्षिणामूर्ति. में भारती आदि 4 और श्रीधर आदि 4 देवताओं का ही स्वीकार है और उसमें भारती आदि के बाद श्रीधर आदि की पूजा का विधान है ।]

जप - एक लाख ।

होम - जपान्ते त्रिमधुरयुक्त बिल्वफलों की दस हजार आहुतियाँ दें ।

[**वसु.** — इसके बाद तद्दशांश पक्ष से तर्पण, मार्जन, ब्रह्मभोजन करें । शेष अनुष्ठानांग एकाक्षर श्रीमंत्रवत् करें ।]

काम्यप्रयोग – (क) प्रपंच. में काम्यप्रयोग नहीं बताए हैं। उन्हों ने कहा है कि इस मंत्र के अनुष्ठान से इहलौकिक समृद्धियाँ और परलोक में विष्णुपद मिलता है। (ख) शारदा और दक्षिणामूर्ति. में बताए काम्यप्रयोग इस प्रकार हैं– (1) चन्दनजल में भीगो कर [अथवा चन्दनाक्त - दक्षिणामूर्ति.] एक लाख कमलों के होम से, बिना युद्ध किए, शत्रू का राज्य मिलता है। (2) इस मंत्र का जप करते हुए राजसभा में जाने से राजसन्मान मिलता है – [शारदा.; दक्षिणामूर्ति.] (3) महासमृद्धि पाने के लिए इस मंत्रजप के साथ श्रीसूक्त का भी जप करते रहें। उपरांत [इस ग्रंथ में बताए] सत्यपालन आदि नियमों का पालन भी अनिवार्यरूप से करें। अर्थात् अनुष्ठान के साथ साथ सात्त्विक आचार, विचार भी अनिवार्य हैं [शा. 8-160 से 67]।

[ख]

कनकधारा स्तोत्रम्

अंगं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती भृंगांगनेव मुकुलाभरणं तमालम्।
अंगीकृता-खिल-विभूतिरपांगलीला मांगल्यदाऽस्तु मम मंगलदेवतायाः ॥1॥

मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः प्रेम-त्रपा-प्रणिहितानि गतागतानि।
मालादृशोर्मधुकरीव महोत्पले या सा मे श्रियं दिशतु सागर-संभवायाः ॥2॥

विश्वामरेन्द्र पद-विभ्रम-दान-दक्षम् आनन्दहेतुरधिकं मुर-विद्विषोऽपि।
ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्धम् इन्दीवरोदर-सहोदरमिन्दिरायाः ॥3॥

आमीलिताक्षमधिगम्य मुदा मुकुन्दम्, आनन्दकन्दमनिमेषमनंगतंत्रम्।
आकेकर-स्थित-कनीनिक-पक्ष्मनेत्रं भूत्यै भवेन्मम भुजंगशयांगनायाः ॥4॥

बाह्वन्तरे मधुजितः श्रित-कौस्तुभेया हारावलीव हरिनीलमयी विभाति।
कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ॥5॥

कालाम्बुदालि- ललितोरसि कैटभारेर्धाराधरे स्फुरति यत् तडिदंगनेव।
मातुः समस्तजगतां महनीयमूर्तिर्भद्राणि मे दिशतु भार्गव-नन्दनायाः ॥6॥

प्राप्तं पदं प्रथमतः खलु यत् प्रभावान् मांगल्यभाजि मधुमाथिनि मन्मथेन।
मय्यापतेत् तदिह मन्थरमीक्षणार्धं मन्दालसं च मकरालय-कन्यकायाः ॥7॥

बालाकवचम्

ऐं वाग्भवं पातु शीर्षं क्लीं कामस्तु तथा हृदि ।
सौः शक्ति-बीजं च पातु नाभौ गुह्ये च पादयोः ॥1॥

ऐं क्लीं सौः वदने पातु बाला मां सर्व-सिद्धये ।
हसकलह्रीँ सौः पातु भैरवी कण्ठ-देशतः ॥2॥

सुन्दरी नाभि-देशेऽव्याच्छीर्षिका सकला सदा ।
भ्रू-नासयोरन्तराले महा-त्रिपुर-सुन्दरी ॥3॥

ललाटे सुभगा पातु भगा मां कण्ठ-देशतः ।
भगा देवी तु हृदये उदरे भग-सर्पिणी ॥4॥

भगमाला नाभि-देशे लिङ्गे पातु मनोभवा ।
गुह्ये पातु महादेवी राजराजेश्वरी शिवा ॥5॥

चैतन्य-रूपिणी पातु पादयोर्जगदम्बिका ।
नारायणी सर्वगात्रे सर्वकार्ये शुभङ्करी ॥6॥

ब्रह्माणी पातु मां पूर्वे दक्षिणे वैष्णवी तथा ।
पश्चिमे पातु वाराही उत्तरे तु महेश्वरी ॥7॥

आग्नेय्यां पातु कौमारी महालक्ष्मीश्च नैर्ऋते ।
वायव्यां पातु चामुण्डा इन्द्राणी पातु चेशके ॥8॥

जले पातु महामाया पृथिव्यां सर्वमङ्गला ।
आकाशे पातु वरदा सर्वतो भुवनेश्वरी ॥9॥

(फलश्रुति)-इदं तु कवचं नाम देवानामपि दुर्लभम् ।
पठेत् प्रातः समुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः ॥10॥

नाधयो व्याधयस्तस्य न भयं च क्वचिद् भवेत् ।
न च मारी-भयं तस्य पातकानां भयं तथा ॥11॥

न दारिद्र्य-वशं गच्छेत् तिष्ठेन्मृत्युवशे न च ।
गच्छेच्छिवपुरे देवि ! सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥12॥

इदं कवचमज्ञात्वा श्रीविद्यां यो जपेच्छिवे !
स नाप्नोति फलं तस्य प्राप्नुयाच्छस्त्र-घातनम् ॥13॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले तन्त्रे भैरवी-भैरव-संवादे श्रीबालात्रिपुर-सुन्दरी कवचम् ॥

उद्धृत : श्रीविद्या-स्तवमञ्जरी पृ. 4

श्रीराज-राजेश्वरी तर्पण-स्तोत्रम्

छन्दः-पाद-युगां निरुक्ति-सुमुखां शिक्षां च जंघा-युगाम्,
ऋग्वेदोरु-युगां यजुस्तु जघनां या सामवेदोदराम् ।
अर्क न्याय-कुचां श्रुति-स्मृति-करां काव्यादि-वेदाननाम्,
वेदान्तामृत-लोचनां भगवती-श्रीराजराजेश्वरीम् ॥1॥

कल्याणायुत-पूर्ण-बिम्ब-वदनां पूर्णेश्वरानन्दिनीम्,
पूर्णां पूर्ण-परां परेश-महिषीं पूर्णामृतास्वादिनीम् ।
सम्पूर्णां परमोत्तमामृतकलां विद्यावतीं भारतीं,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पण-परां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥2॥

एकानेकमनेक-कार्य-विविधां कार्यैकचिद्रूपिणीम्,
चैतन्यात्मक-एकचक्ररचितां चक्राङ्क एकाकिनीम् ।
भावाभाव-विवर्द्धिनीं भयहरां सद्-भक्ति-चिन्तामणिम्,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पण-परां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥3॥

ईशाधीश्वर-योगि-वृन्द-विदितां सानन्दभूतां पराम्,
पश्यन्तीं तनु-मध्यमां विलसतीं श्रीभैरवी-रूपिणीम् ।
आत्मानात्म-विचारिणीं विवरगां विद्यां त्रि-बीज-त्रयीम्,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पण-परां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥4॥

लक्ष्यालक्ष्य-निरीक्षणां निरुपमां रुद्राक्ष-मालाधराम्,
साक्षात् कारण-दक्ष-वंश-कलितां दीर्घाक्षि-दीर्घेश्वरीम् ।
भद्रां भद्र-वरप्रदां भगवतीं भद्रेश्वरीं भद्रिणीम्,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पण-परां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥5॥

ह्रीँ-बीजान्वित-नाद-विन्दु-भरितां ॐकार-नादात्मिकाम्,
ब्रह्मानन्द-घनोदरीं गुणवतीं ज्ञानेश्वरीं ज्ञानदाम् ।
इच्छा-ज्ञान-क्रियावतीं जितवतीं गन्धर्व-संसेविताम्,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पण-परां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥6॥

हर्षोन्मत्त-सुवर्ण-पात्र-भरितां पानोन्नताघूर्णिताम्,
हुङ्कार-प्रिय-शब्द-ब्रह्म-निरतां सारस्वतोल्लासिनीम् ।
सारासार-विचार-चारु-चतुरां वर्णाश्रमाकारिणीम्,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पणपरां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥7॥

सर्व-ज्ञान-कलावतीं स-करुणां सन्नादिनीं नन्दिनीम्,
सर्वान्तर्गत-शालिनीं शिव-तनुं सन्दीपिनीं दीपिनीम् ।
संयोग-प्रिय-रूपिणीं प्रियवतीं प्रीति-प्रतापोन्नताम्,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पणपरां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥8॥

कर्माकर्म-विवर्जितां कुलवतीं कर्मप्रदां कौलिनीम्,
कारुण्यां तनु-बुद्धि-कर्म-निरतां सिन्धुप्रियां शालिनीम् ।
पञ्च-ब्रह्म-सनातनां शव-हृदां ज्ञेयाङ्ग-योगान्विताम्,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पण-परां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥9॥

हस्ते कुम्भ-निभां पयोघर-घरां पीनोन्नतां नौमि ताम्,
हाराद्याभरणां सुरेन्द्र-विनुतां शृङ्गार-पीठालयाम् ।
योन्याकारिणि योनि-मुद्रित-करां नित्यां च वर्णात्मिकां,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पणपरां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥10॥

लक्ष्मी-लक्षण-पूर्ण-भक्ति-वरदां लीला-विनोद-स्थिताम्,
लाक्षा-रञ्जित-पाद-पद्म-युगलां ब्रह्माण्ड-संसेविताम् ।
लोकालोकित-लोक-काम-जननीं लोक-श्रियाङ्क-स्थिताम्,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पणपरां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥11॥

ह्रीँकारायुत-शङ्कर-प्रिय-तनुं श्रीयोगपीठेश्वरीम्,
माङ्गल्यायुत-पङ्कजाभ-नयनां माङ्गल्य-सिद्धि-प्रदाम् ।
तारुण्यां तपसार्चितां तरुणिकां तत्रोद्भवां तत्त्विनीम्,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पणपरां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥12॥

सर्वेशाङ्ग-विहारिणीं स-करुणां सर्वेश्वरीं सर्वगाम्,
सत्यां सर्वमयीं सहस्रदलजां सप्तार्णवोपस्थिताम् ।
संगासंग-विवर्जितां शुभकरीं बालार्क-कोटि-प्रभाम्,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पण-परां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥13॥

कादि-क्षान्त-सुवर्ण-विन्दु-सुतनुं स्वर्णादि-सिंहासिनीम्,
नाना-वर्ण-विचित्र-चित्र-चरितां चातुर्य-चिन्तामणिम् ।
चित्तानन्द-विधायिनीं सुविपुलां रूढत्रयां शेषिकां,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पणपरां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥14॥

लक्ष्मीशादि-विधीन्द्र-चन्द्र-मुकुटामष्टाङ्ग-पीठार्चिताम्,
सूर्येन्द्राग्निमयैक-पीठ-निलयां त्रिस्थां त्रिकोणेश्वरीम् ।

गोप्त्रीं गुर्विणि-गर्विंतां गगनगां गङ्गा-गणेश-प्रियाम्,
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पण-परां श्रीराजराजेश्वरीम् ॥15॥

ह्रीँ-कूटत्रय-रूपिणीं समयिनीं संसारिणीं हंसिनीम् ।
वामाचार-परायणां सुकुलजां बीजावतीं मुद्रिणीम् ।
कामाक्षीं करुणार्द्र-चित्त-चरितां श्रीमन्त्र-मूर्त्यात्मिकाम्
श्रीचक्र-प्रिय-बिन्दु-तर्पणपरां श्रीराज-राजेश्वरीम् ॥16॥

॥ श्रीशङ्कराचार्य-विरचितं श्रीराजराजेश्वरीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥
उद्धृत - श्रीविद्यास्तव-मञ्जरी - पृ.110-12

पाठान्तर

(अ) परशु. में मुद्रित राज. स्तोत्र के पाठान्तर-

[वसु.- (1) कोष्ठ में दिये गए अंग श्लोकांक हैं । (2) (क) = प्रथम पंक्ति; (ख) = द्वितीय पंक्ति; (ग) = तृतीय पंक्ति समझें ।]

(1) प्रथम श्लोक नहीं है ॥ (2) (ख) पूर्णापूर्ण-परा-परेश- ॥ (4) (क) -योगवृन्द-; (ख) श्रीविष्णुसद्रूपिणीम्; (ग) त्रिवरणां; विद्यात्रिबीजत्रयीं ॥ (5) (क) लक्ष्मीलक्ष-; (ख) दीर्घाक्ष-; (ग) मुद्रिणीं ॥ (6) (ग) जितवलीं ॥ (7) (ग) -विचारवाद- ॥ (8) (क) स्वंनादिनीं मादिनीं ॥ (9) (ख) -कर्मविरतां; (ग) - सनातनान्तरगतां ॥ (10) (क) पयोक्त-भरितां; (ख) हीराढ्या-भरणां; सुरेन्द्रवनितां; (ग) योग्याकारिणी-; नित्यामवर्णात्मिकां ॥ (11) (ख) लक्ष्म्या; व्रह्मेन्द्र-; (ग) लोकप्रियाङ्क- ॥ (12) (क) ह्रींकारीं सुतरां करप्रियतनुं; (ख) मांङ्गल्यायत-; (ग) तन्त्र्यर्चितां; नर्तिनीं ॥ (13) (ख) सहस्रदलनां; (ग) संसर्गादिविवर्जिनीं ॥ (15) (क) - मुकुटां षष्ठाङ्ग-पीठार्चितां; (ख) सूर्येन्द्राग्नि-; (ग) गोश्रीगुर्विणी-॥ (16) (क) समयगां; (ख) मुद्रिकां; (ग)- चित्रचरितां इति श्रीविद्यार्चनपद्धतौ-पृ.37; उद्धृत-परशु. द्वितीय परिशिष्टम् - पृ. 585

(आ) राजेश्वरीपंचांग में मुद्रितस्तोत्र के पाठान्तर —

[वसु. — (1) इसका एक ही झेरोक्स पन्ना मिला है। (2) परशु. और राजेश्वरी. में प्रायः समान पाठ हैं, बहुत कम स्थल में ही भिन्न पाठ हैं, जो इस तरह हैं -] (4) (ग) विवरणां ॥ (10) (ख) हाराद्याभरणां सुरेन्द्रवनिता- ॥ (11) (क)-भक्तवरदां ॥ (12) (ग) तंत्रेर्चितां ॥ (13) (ख) सत्यं; (ग) संसर्गाविव वर्जिनीं ॥ (15) (ख) सूर्येन्द्र-; त्रिलोकेश्वरीं; (ग) गोश्रीगुर्विण- ॥ (16) (क) समयसीं ॥ शेषपाठ परशु. अनुसार हैं। (इ) [वसु.— (15) में सूर्येन्द्राग्नि की जगह सूर्येन्द्वग्नि पाठ सुसंगत है, क्योंकि (यहाँ इन तीन देवों का संबंध पीठ के साथ है और पीठ देवताओं में सूर्य, इन्दु (चंद्र) एवं अग्नि मण्डलों का समावेश हुआ है, इन्द्र का नहीं। विद्वद्गण पाठनिर्णय करे।]

लक्ष्मीहृदयम्

[वसु. – लक्ष्मीहृदय के चुने हुए स्तुतिमंत्र यहाँ दिये हैं।
प्रतिदिन पाठ करें। अनुभव हमें लिखें।]

ध्यायेल्लक्ष्मीं प्रहसितमुखीं कोटिबालार्कभासां
विद्युद्वर्णाम्बरवरधरां भूषणाढ्यां सुशोभाम्।
बीजापूरं सरसिजयुगं बिभ्रतीं स्वर्णपात्रे
भर्त्रा युक्तां मुहुरभयदां शश्वदप्यच्युतश्रीः ॥108॥

वन्दे लक्ष्मीं परशिवमयीं शुद्धजाम्बूनदाभां
तेजोरूपां कनकवसनां सर्वभूषोज्ज्वलाङ्गीम्।
बीजापूरं कनककलशं हेमपद्मे दधानाम्
आद्यां शक्तिं सकलजननीं विष्णुवामाङ्कसंस्थाम् ॥2॥

श्रीवैकुण्ठस्थिते लक्ष्मि समागच्छ ममाग्रतः।
नारायणेन सह मां कृपादृष्ट्यावलोकय ॥32॥

रत्नगर्भस्थिते लक्ष्मि परिपूर्णे हिरण्मयि।
समागच्छ समागच्छ तिष्ठस्व पुरतो मम ॥36॥

आविर्भव मनोवेगाच्छीघ्रमागच्छ मे पुरः।
मा वत्स भैरिहेत्युक्त्वा कामं गौरिव रक्ष माम् ॥42॥

अत्रोपविश्य लक्ष्मि त्वं स्थिरा भव हिरण्मयि।
सुस्थिरा भव सम्प्रीत्या प्रसन्ना वरदा भव ॥47॥

समस्तसम्पत्सुखदां महाश्रियं समस्त-सौभाग्यकरीं महाश्रियम्।
समस्त-कल्याणकरीं महाश्रियं भजाम्यहं ज्ञानकरीं महाश्रियम् ॥5॥

समस्तसंपत्सुविराजमाना समस्ततेजःसु विराजमाना।
विष्णुप्रिये त्वं भव दीप्यमाना वाग्देवता मे भवने प्रसन्ना ॥85॥

समस्तविघ्नौघ-विनाशकारिणी समस्तविघ्नोद्धरणे विचक्षणा।
अनन्त-सौभाग्य-सुखप्रदायिनी हिरण्मये मे वदने प्रसन्ना ॥88॥

दारिद्र्य-दुःखौघतमोपहन्त्री त्वत्पादपद्मं मयि सन्निधत्स्व।
दीनार्तिविच्छेदन-हेतुभूतैः कृपाकटाक्षैरभिषिञ्च मां श्रीः ॥8॥

विज्ञानवृद्धिं हृदये कुरु श्रीः सौभाग्यसिद्धिं कुरु मे गृहे श्रीः ।
दयासुपुष्टिं कुरुतां मयि श्रीः सुवर्णवृद्धिं कुरु मे करे श्रीः ॥66॥

न मां त्यजेथाः श्रितकल्पवल्लि सद्भक्ति-चिन्तामणि कामधेनो ।
विश्वस्य मातर्भव सुप्रसन्ना गृहे कलत्रेषु च पुत्रवर्गे ॥67॥

माता पिता त्वं गुरु-सद्गतिः श्रीस्त्वमेव संजीवनहेतुभूता ।
अन्यं न मन्ये जगदेकनाथे त्वमेव सर्वं मम देवी सत्यम् ॥82॥

आद्यादिलक्ष्मीर्भव सुप्रसन्ना विशुद्ध-विज्ञान-सुखैकदोग्ध्रि ।
अज्ञानहन्त्रि त्रिगुणातिरिक्ता प्रज्ञाननेत्रे भव सुप्रसन्ना ॥83॥

आद्यादिविष्णोः स्थिरधर्मपत्नी त्वमम्ब पत्या मम सन्निधेहि ।
आद्यादिलक्ष्मीस्त्वदनुग्रहेण पदे पदे मे निधिदर्शनं स्यात् ॥95॥

जयतु जयतु लक्ष्मीर्लक्षणालंकृताङ्गी जयतु जयतु पद्मा पद्मसद्माभिवन्द्या ।
जयतु जयतु विद्या विष्णुवामाङ्कसंस्था जयतु जयतु सम्यक् सर्वसम्पत्करी श्रीः ॥15॥

जयतु जयतु देवी देवसंघाभिपूज्या जयतु जयतु भद्रा भार्गवी भाग्यरूपा ।
जयतु जयतु नित्या निर्मलज्ञानवेद्या जयतु जयतु सत्या सर्वभूतान्तरस्था ॥16॥

शक्त्यै नमोऽस्तु शशिशेखर-संस्तुतायै रत्यै नमोऽस्तु रजनीकर-सोदरायै ।
भक्त्यै नमोऽस्तु भवसागर-तारकायै मत्यै नमोऽस्तु मधुसूदनवल्लभायै ॥11॥

लक्ष्म्यै नमोऽस्तु शुभलक्षणलक्षितायै सिद्ध्यै नमोऽस्तु शिवसंगसुपूजितायै ।
धृत्यै नमोऽस्त्वमित-दुर्गति भञ्जनायै गत्यै नमोऽस्तु वरसद्गति-दायिकायै । ॥12॥

अम्ब प्रसीद करुणा-सुधयार्द्र-दृष्ट्या मां त्वत्कृपा-द्रविण-गेहमिमं कुरुष्व ।
आलोकन-प्रणयि-हृद्गत-शोक-हन्त्रि त्वत्पाद-पद्मयुगलं प्रणमाम्यहं श्रीः ॥9॥

मा वत्स भैरभयदानकरोऽर्पितस्ते मौलौ ममेति मयि दीनदयानुकम्पे ।
मातः समर्पय मुदा करुणाकटाक्षं मांगल्यबीज-महिमानुसृतं ममान्तः ॥90॥

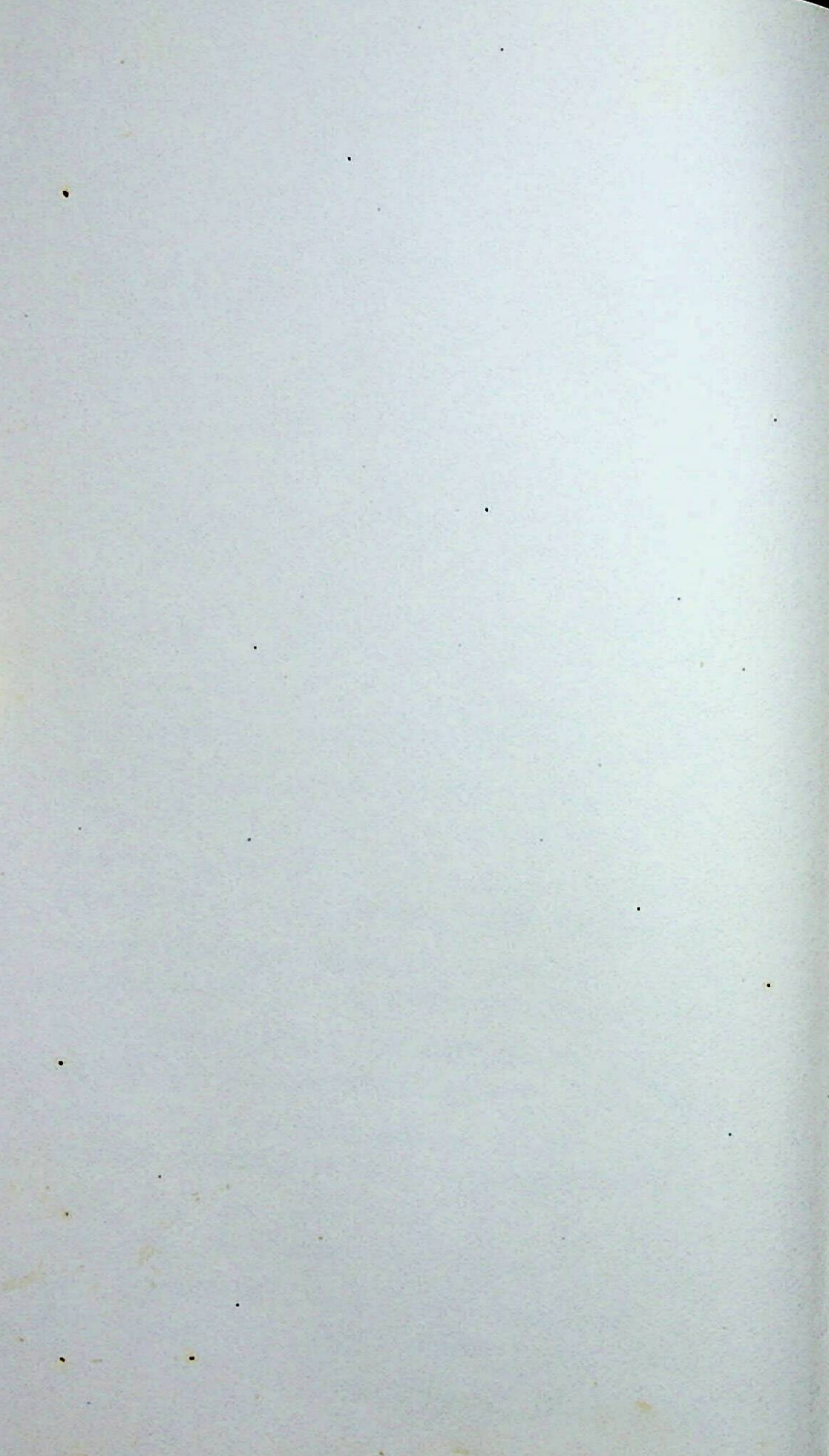
कल्पद्रुमेण मणिना सहिता सुरम्या श्रीस्ते कला मयि रसेन रसायनेन ।
आस्तां यतो मम च दृक्शिरपाणिपाद-स्पृष्टाः सुवर्णवपुषः स्थिरजंगमाः स्युः ॥94॥

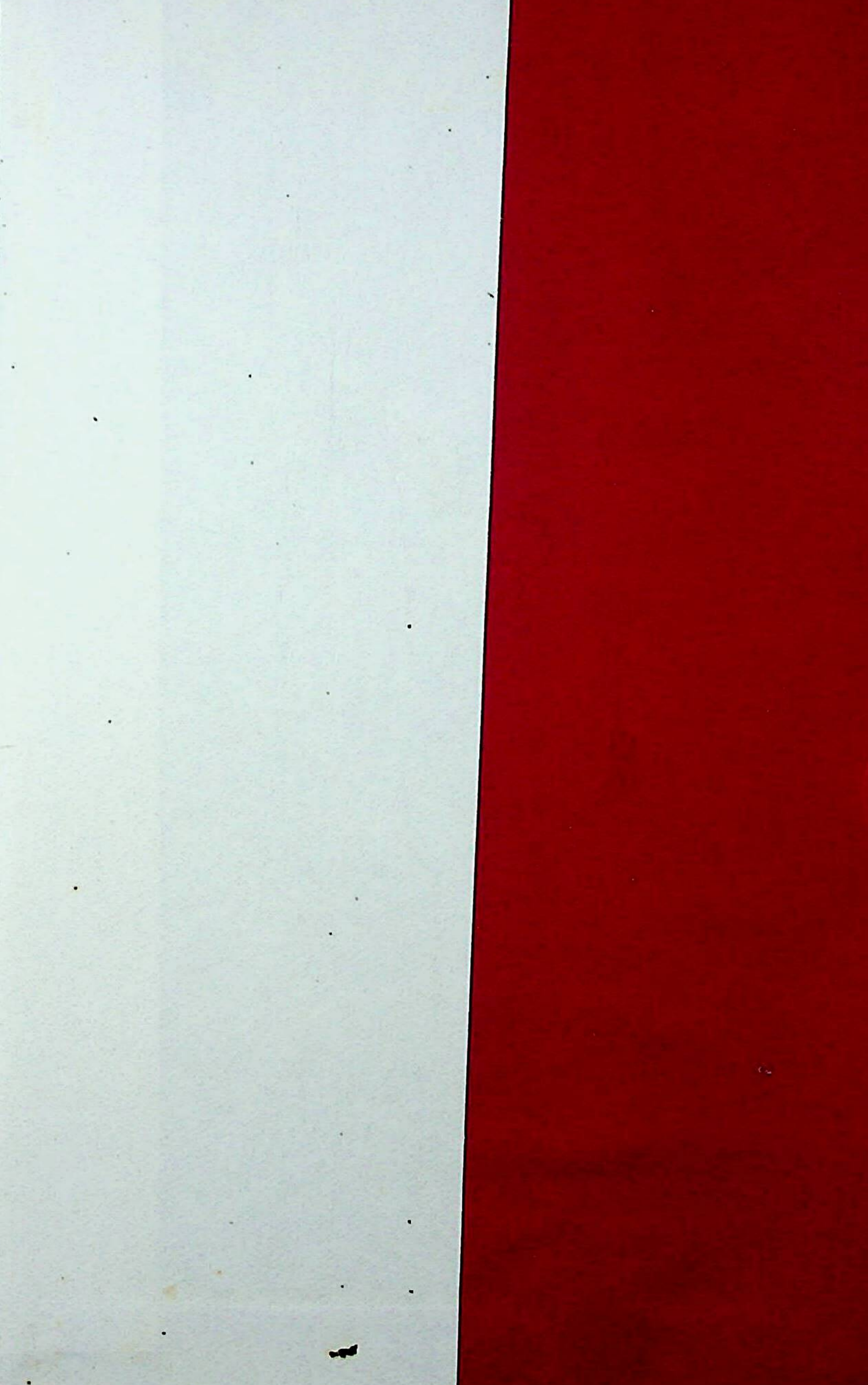
चान्द्री कला यथा शुक्ले वर्धते सा दिने दिने ।
तथा दया ते मय्येव वर्धतामभिवर्धताम् ॥62॥

यथा वैकुण्ठनगरे यथा वै क्षीर-सागरे ।
तथा मद्भवने तिष्ठ स्थिरं श्रीर्विष्णुना सह ॥63॥

उद्धृत-श्रीविद्या. श्वास 22, पृ. 141-46









लेखक परिचय

प्रो. डो. हरिनारायणभाई उमाशंकर पण्ड्या

अध्यक्ष, श्रीगुर्जरविद्वत्परिषद् ।

जन्म दि. : 6-6-1935

माता-पिता : माता-गौरीबा; पिता-उमाशंकर राजाराम पण्ड्या।

[illegible] : [illegible] ढांगरवा; ता. वीरमगाम; जि. अमदावाद (गुजरात)।

[illegible] : [illegible] साहित्यशास्त्री (प्राप्तपारितोषिक); B.A.; M.A.; [illegible] (प्राप्तस्वर्णपदक)। Ph.D. (जैनदर्शन); काव्यतीर्थ।

[illegible] [illegible]) करमसद (गुजरात) में लक्षचण्डी महायाग में (25-1-98) उप[illegible]करण पण्डित-प्रवर पू. श्री बालकृष्णभाई पंचोलीजी ने उस [illegible] देखकर '**याज्ञिकशिरोमणि**' एवं (2) संन्यासाश्रम (अमदावाद) द्वारा आ[illegible] लक्षचण्डी महायाग में (20-10-99) उपस्थित प्रखर भागवत-प्रवक्ता पुण्यश्लोक प्रकाण्ड पण्डितवर्य पू. श्री कृष्णशंकर शास्त्रीजी (भागवत विद्यापीठ-सोला, अमदावाद) ने '**याज्ञिकचूडामणि**' मानद पदवी से विभूषित किया है और (3) गुजरात सरकार ने '**वेद-शास्त्र-पंडित**' सम्मान करनेका निर्णय लिया है।

ग्रन्थ लेखन : इन्टर के अध्ययनकाल में B.A. के लिए भाषाशास्त्रीय ग्रंथ 'गुजराती भाषानुं स्वरूप' (एक भाग) लिखा। कालेज में अध्यापनकाल में अन्य लेखकों के साथ भिन्न भिन्न पुस्तकें लिखीं। 'एनसायक्लोपीडिया ओफ इंडियन फिलोसोफी' महाग्रंथ में नन्दीसूत्र (एक लघु परिचय) निबंध लिखा। संस्कृत अध्यापक मण्डल के अधिवेशनों, ओल इंडिया प्राकृत परिषद्, ओरिएण्टल कोन्फरन्स आदि में शोधपत्र पढ़े। देवपूजा दीपक, उपासना दीपक और श्रीसूक्त-दीपक लिखे।

याज्ञिकी : लक्षचण्डी, अतिरुद्र, महाविष्णुयाग (लक्ष सूक्तान्ताहुतिपक्ष), सूर्ययाग, गणेशयाग, भिन्न भिन्न देवताओं की प्रतिष्ठाएँ, वास्तुयाग, ग्रहमख, शान्तियाँ आदि में आचार्यत्व किया है और पौर्णमासयाग में सर्वाध्यक्षत्व किया है। अस्तु।